4(1) प्रोटीन के कितने भेद हैं। उनके प्राप्ति स्थान एवं उनके अभाव से होने वाली बीमारियों का संक्षिप्त विवरण दें।

जवाब :— भोजन की स्तर उपयोगिता है? कार्बोहाइड्रेट प्रोटीन एवं वसा के बिना [illegible]

(2) भोजन में और मक्खियों मच्छरों से बचने के लिए आप क्या उपाय करेंगी?

(3) बजट बनाने में किन-किन बातों का ध्यान रखना चाहिए।

1) एक परिवार जिसकी मासिक आय 600 रु० है, जिसमें पति पत्नी तीन स्कूल जाने वाले बच्चे हैं के लिए मासिक बजट बनाइये

[illegible] घर के निर्माण में किन किन बातों पर ध्यान देना आवश्यक है।

सफाई एवं बरतनों की सुरक्षा के लिए [illegible] करेंगी?

[illegible] संबंधित [illegible]

[illegible] के स्थान पर
[illegible] का चुनाव करेंगे? [illegible]
[illegible] में कैसे कराएंगे?

(11) [illegible] के संरक्षण के [illegible]
[illegible] कौन-कौन सी [illegible] हैं?

[illegible] :

(1) [illegible] (2) [illegible] (3) [illegible]
(4) [illegible] और [illegible] (6) [illegible]
(7) [illegible] की सफाई (8) [illegible] (9) [illegible] (10) [illegible]
(11) पारिवारिक [illegible] का महत्व (12) [illegible] (13) [illegible]
(14) [illegible] (15) [illegible] (16) [illegible]



उदर के अन्दर आमाशय, पक्वाशय, छोटी आँत, बड़ी आँत, यकृत, प्लीहा, वृक्क इत्यादि हैं।

(iv) ऊर्ध्व शाखाएँ—धड़ के ऊपर वाले हिस्से से दो शाखाएँ लगी हुई हैं। इन्हें दायीं और बायीं शाखा कहते हैं। ऊर्ध्व शाखा के ऊपरी भाग को बाहु और निचले भाग को अग्रबाहु कहा जाता है। अग्रबाहु और बाहु के संधिस्थल को केहुनी कहते हैं। अग्रबाहु के नीचे मणिबंध तथा हाथ है। प्रत्येक हाथ में एक अँगूठा और चार अँगुलियाँ रहती हैं।

(v) निम्न या अधोशाखा—साधारण बोलचाल में अधोशाखा को पैर कहते हैं। इसका ऊपरी भाग जाँघ कहलाता है। जाँघ के नीचे टाँग है। जाँघ और टाँग का संधिस्थल घुटना कहलाता है। टाँग के निचले हिस्से से पाँव लगा रहता है। इनके (टाँग और पाँव के) संधिस्थल को गुल्फ कहते हैं। हाथ की भाँति पाँवों में भी एक अंगूठा और चार अँगुलियाँ रहती हैं।

प्रश्न ३. मानव-शरीर का गठन कैसे हुआ है? कोशा (Cell) के विषय में क्या जानते हैं?

उत्तर—मानव-शरीर में हाथ, पैर, सिर, वक्ष, उदर इत्यादि भिन्न-भिन्न अंग हैं। प्रत्येक अंग ऊपर में चमड़े से ढका है, चमड़े के नीचे मांसपेशियाँ हैं और सबसे नीचे हड्डियाँ। इसके अलावा शिराएँ, धमनियाँ, स्नायु, रक्त इत्यादि सारे शरीर में फैले हुए हैं। शरीर के सभी अवयवों की रचना की सबसे छोटी इकाई कोशा (कोशिका) है।

कोशा (कोशिका) जीवन की एक इकाई है। जिस प्रकार दीवार की रचना की इकाई ईंट कही जा सकती है, उसी प्रकार कोशा (कोशिका) शरीर की इकाई कही जा सकती है। इन्हीं के समूह से अंग बनता है। प्रत्येक सजीव का शरीर एक से अधिक कोशिकाओं द्वारा निर्मित है।

कोशिका की बनावट—प्रत्येक प्राणि-कोशिका के निम्नलिखित तीन भाग होते हैं—

(i) कोशिका-भित्ति—प्रत्येक कोशिका एक पारदर्शी झिल्ली की बनी

होती है। इस झिल्ली को कोशिका-भित्ति कहते हैं। प्राणि-कोशिका की झिल्ली बहुत ही बारीक होती है। कोशिका-भित्ति द्वारा ही एक कोशिका दूसरी कोशिका से अलग समझी जाती है। हमारे शरीर की सभी प्रकार की कोशिकाओं की भित्ति एक प्रकार की नहीं होती है।

(ii) कोशिका-सार—यह कोशिका अथवा शरीर की मुख्य वस्तु है जिसपर जीवन निर्भर करता है। विभिन्न प्रकार की कोशिकाओं की बाह्य बनावट में अन्तर होते हुए भी सबों में एक प्रकार का ही कोशिका-सार वर्त्तमान रहता है। कोशिका-सार-विहीन कोशिका के अस्तित्व की कल्पना भी नहीं की जा सकती। यह पदार्थ (कोशिका-सार) इतना कोमल होता है कि परीक्षण के लिए विद्वान् लोग इसको जीवित अवस्था में पृथक् नहीं कर पाये हैं। यह एक गाढ़े लसदार पदार्थ की तरह है जिसमें परिस्थितियों के अनुसार अपने को परिवर्तित करने की बहुत अधिक शक्ति होती है। रासायनिक द्रव्यों के प्रयोग करते ही इसकी मृत्यु हो जाती है। मृत्यु के उपरान्त प्राप्त कोशिका-सार की जाँच करने से पता चलता है कि इसमें प्रोटीन-जैसे ही कार्बन, हाइड्रोजन, आक्सीजन इत्यादि तत्त्व हैं।

(iii) कोशिका-मींगी—मींगी कोशिका का जीवांश है। साधारणतः प्रत्येक कोशिका में एक मींगी भी रहती है। किसी-किसी में एक से अधिक मींगी भी रहती हैं। मींगी कोशिका के बीच में रहती है तथा उसके चारों ओर एक आवरण रहता है। मींगी की वृद्धि पर ही कोशिका की वृद्धि निर्भर करती है। यदि मींगी को नष्ट कर दिया जाय तो कोशिका नष्ट हो जायगी। यदि एक कोशिका को इस प्रकार दो भागों में विभक्त किया जाय कि एक भाग में मींगी रहे और दूसरे में मींगी न हो तो थोड़े ही समय में मींगीयुक्त भाग फिर से बढ़कर सम्पूर्ण हो जायगा। किन्तु मींगीरहित भाग गलकर नष्ट हो जायगा। मींगी का भरण-पोषण कोशिका सार से होता है। मींगी के भीतर सूत्र-समूह रहते हैं। इन्हें क्रोमोजोम कहते हैं। क्रोमोजोम में ही माता-पिता के रूप, रंग, आकृति एवं अन्य गुण निहित रहते हैं। संतान में माता-पिता के गुण-दोष के संवाहक मींगी ही होते हैं।

प्रश्न ४. हमलोगों के शरीर में कितने प्रकार की कोशाएँ होती हैं ? उनके कार्यों का वर्णन कीजिए।

उत्तर— मानव-शरीर में निम्नलिखित कोशाएँ पायी जाती हैं—

(क) मांसपेशियाँ बनाने वाली कोशाएँ (Muscle Cells) — इनकी दो जातियाँ हैं — १. धारीदार मांसपेशी वाली कोशाएँ (Striped Muscle Cells), २. बेधारीदार मांसपेशी वाली कोशाएँ (Unstriped Muscle Cells)। पहली जाति की कोशाएँ लम्बी होती हैं इसलिए उन्हें मांस-सूत्र (Muscle Fibre) भी कहते हैं। दूसरी जाति की कोशाएँ छोटी होती हैं तथा उनके सिरे पतले और नुकीले होते हैं।

इनके कार्य — ये अवसर पर सिकुड़ती और फैलती हैं जिससे मांसपेशियाँ सिकुड़ती और फैलती हैं।

(ख) स्नायु बनाने वाली कोशाएँ (Nerve Cells)— इन्हीं कोशाओं से दिमाग-रीढ़ से होकर जाने वाली रस्सी (Spinal Chord) और उससे निकले हुए स्नायु-जाल बने हैं।

इनके कार्य— सोचना-विचारना तथा समाचार भेजना इन्हीं कोशाओं का काम है।

(ग) हड्डी बनाने वाली कोशाएँ (Bone Cells)— ये बहुत छोटी तथा ऊबड़-खाबड़ होती हैं। ये खून की नली के आस-पास रहती हैं।

इनके कार्य— ये चूना तथा अन्य आवश्यक चीजों को इकट्ठा कर हड्डी तैयार करती हैं।

(घ) खून बनाने वाली कोशाएँ (Blood Cells)— ये पानी की तरह एक तरल पदार्थ (Plasma) में तैरती हैं। ये दो प्रकार की होती हैं—लाल और सफेद। लाल कोशाओं की संख्या सफेद कोशाओं की अपेक्षा अधिक होती है।

इनके कार्य— लाल कोशाओं में हवा से आक्सीजन (Oxygen) गैस लेने की ताकत रहती है। सफेद कोशाएँ चौकीदार का काम करती हैं शरीर को बीमारियों से बचाती हैं।

(ङ) बाहरी हिस्सों को ढकने वाली कोशाएँ (Epithelial Cells)— इस प्रकार की कोशाओं से बाहरी हिस्सों को ढकने वाला तन्तु बनता है। बाहरी खाल तथा भोजन की नली के भीतरी भाग इसी तरह की कोशाओं से बने हैं।

इनके कार्य— त्वचा की रक्षा होती है।

प्रश्न ५. तन्तु (Tissues) क्या हैं ? संक्षेप में उन तन्तुओं का वर्णन कीजिए जिनसे मानव-शरीर का निर्माण हुआ है।

उत्तर— शरीर के बाहर और भीतर बहुत-से अलग-अलग अंग हैं जो अपना-अपना विशेष प्रकार का कार्य करते हैं। प्रत्येक अंग अवयव कहलाता है। प्रत्येक अवयव अनेक प्रकार के पदार्थों या सूत्रों से बना हुआ है। इन्हीं पदार्थों या सूत्रों को तन्तु कहते हैं।

दूसरे शब्दों में— कोशिकाओं के समूह का ही नाम तन्तु है। प्राय: एक-जैसे विशिष्ट गुण वाली अनेक कोशिकाओं के संयोग से एक तरह के तन्तु का निर्माण होता है। फलत: जो विशिष्ट गुण संयोगी कोशिकाओं के होते हैं, वे ही गुण तन्तुओं के भी होते हैं। तन्तुओं में कोशिकाएँ विशेष प्रकार के संयोजक पदार्थों द्वारा एक-दूसरे से सम्बद्ध रहती हैं।

निम्नलिखित तन्तुओं से मानव-शरीर की रचना हुई है—

मानव-शरीर

- आच्छादक तन्तु (Epithelial Tissue)
- संयोजक तन्तु (Connective Tissue)
- पेशी तन्तु (Muscular Tissue)
- स्नायु तन्तु (Nervous Tissue)
- विशेष ग्रंथि तन्तु (Gland Tissue)

१. आच्छादक तन्तु (बाहरी हिस्से को ढकने वाले तन्तु)—

विशेषता— (i) यह मुख्यत: पाचन-प्रणाली, श्वास-नली आदि की दीवारों को बनाता है।

(ii) इस तन्तु में एक पतली-सी झिल्ली होती है जिसपर सभी कोशिकाएँ निर्भर रहती हैं। इस झिल्ली को 'आधार झिल्ली' (Basement membrane) कहा जाता है।

(iii) इस तन्तु में कोशिकाओं की संख्या अधिक और अन्तराकोशा स्थान तथा अन्तराकोशा पदार्थ की मात्रा कम रहती है।

खाल का ऊपरी भाग, ओठ और गाल का भीतरी हिस्सा, भोजन की नली का भीतरी भाग तथा दूसरी-दूसरी नलियों के भीतरी भाग इसी तन्तु से बनते हैं।

२. संयोजक तन्तु (जोड़ने वाले तन्तु)—

विशेषता—१. शरीर के एक अंग को दूसरे से जोड़ना। २. 'आधार झिल्ली' (Basement membrane) की अनुपस्थिति। ३. कोशिकाओं की संख्या कम और अन्तराकोश स्थान एवं रस की मात्रा अधिक।

हड्डी, कार्टिलेज (Cartilage)—एक तरह के कड़े मुड़ने वाले तथा फैलने वाले पदार्थ, झिल्लियाँ तथा रक्त संयोजक तन्तु हैं।

३. पेशी तन्तु—१. यह मांस-सूत्र से बना होता है। प्रत्येक मांस-सूत्र मांस-कोशिका है। २. इसमें फैलने और सिकुड़ने का विशेष गुण होता है। ३. इसके सिकुड़ने और फैलने से ही शरीर में गति उत्पन्न होती है। मांस और मांसपेशियाँ इसी से बनी हैं।

४. स्नायु तन्तु—यह स्नायु-कोशिकाओं से बना होता है। स्नायु-संस्थान स्नायु-तन्तु से बना होता है। इस तन्तु का काम बाहरी संवेदनाओं को अनुभव करना तथा उसके अनुसार शरीर को बनाये रखना है।

५. विशेष ग्रंथि तन्तु—हमारे शरीर में नलिकाविहीन या नलिकायुक्त कुछ ऐसी विशेष ग्रंथियाँ हैं जिनकी रचना निश्चित विशेष प्रकार की कोशिकाओं से हुई है। इन कोशिकाओं से विशेष प्रकार के स्राव निकलकर रक्त में मिला करते हैं। ऐसे स्राव को हार्मोन (Hormone) कहते हैं। हार्मोन हमारे शरीर के विकास के लिए उपयोगी तत्त्व है।

अध्याय २

मानव-शरीर के विभिन्न तंत्र (संस्थान)

प्रश्न १. तंत्र (संस्थान) से क्या समझते हैं ? मानव-शरीर को कितने तंत्रों में विभाजित किया गया है ? उनके नाम लिखें तथा प्रत्येक का संक्षिप्त परिचय दें।

उत्तर—शरीर के उद्देश्यों की पूर्त्ति के लिए कुछ अंग एक समूह में इकाई के रूप में मिलकर काम करते हैं। अंगों के ऐसे समूह को तंत्र (संस्थान) कहते हैं। अध्ययन के विचार से मानव-शरीर के अंगों को निम्नलिखित दस प्रमुख तंत्रों में विभाजित किया गया है—

(i) अस्थि-तंत्र— यह अस्थियों का तंत्र है। इस तंत्र में शरीर की सभी अस्थियाँ आती हैं। मानव-शरीर में अस्थियों का ढाँचा उसे एक निश्चित आकृति प्रदान करता है। अस्थियों के सहारे ही हमारा शरीर सीधा रहता है।

(ii) पेशी-तंत्र— शरीर के विभिन्न भागों में स्थित सभी तरह की मांस-पेशियाँ पेशी-तंत्र के अन्तर्गत हैं।

(iii) पाचन-तंत्र— इस तंत्र में आमाशय, आँत, यकृत, क्लोम इत्यादि अंग सम्मिलित हैं जो भोजन को पचाने का काम करते हैं।

(iv) रक्त-संचालन-तंत्र— रक्त-संचालन-तंत्र का दूसरा नाम परिवहन-तंत्र भी है। इसमें हृदय, धमनियाँ और शिराएँ सम्मिलित हैं जो रक्त-संचारण में सहायता देती हैं।

(v) श्वसन-तंत्र—नाक, कंठ, टेंटुआ, श्वास-प्रणाली, फेफड़े इत्यादि श्वसन-तंत्र के अंग हैं। ये श्वास-प्रश्वास की क्रिया में सहायता पहुँचाते हैं।

(vi) उत्सर्जन-तंत्र— इसमें वृक्क, चर्म, यकृत इत्यादि अंग सम्मिलित हैं जो शरीर से विकारों को बाहर निकालते हैं।

(vii) आच्छादक तंत्र— इसके अन्तर्गत विशेषतः चर्म का ही अध्ययन किया जाता है। शरीर के अंगों की रक्षा करना, शरीर के विकारों को पसीने के रूप में बाहर निकालना, विभिन्न प्रकार की अनुभूति प्राप्त कराना चर्म के मुख्य काम हैं।

(viii) निःस्रोत-ग्रंथि-तंत्र— इसके अन्तर्गत पीयूष, चुल्लिका, उपचुल्लिका, उपवृक्क, अण्डाशय इत्यादि नलिकाविहीन ग्रंथियों तथा उनसे निकले हुए हार्मोन का अध्ययन किया जाता है।

(ix) तंत्रिका या स्नायु-तंत्र— इसमें मस्तिष्क, सुषुम्ना तथा अन्य नाड़ियाँ सम्मिलित हैं। ये शरीर के समस्त भागों से सूचनाएं मस्तिष्क को ले जाती हैं तथा मस्तिष्क की आज्ञाएँ भिन्न-भिन्न मांसपेशियों तथा ग्रंथियों को पहुँचाती हैं।

(x) प्रजनन-तंत्र— इसमें पुरुषों के वृषण, शुक्र-प्रणाली, शिश्न तथा स्त्रियों के डिम्बाशय, डिम्ब-प्रणाली, गर्भाशय, योनि इत्यादि अंग सम्मिलित हैं जिनसे संतान उत्पन्न की जाती है।

अध्याय ३

अस्थि-तंत्र

प्रश्न १. मानव-अस्थि-पंजर की विशेषताओं का संक्षिप्त विवरण दीजिए।

उत्तर— मानव-शरीर चर्म से आच्छादित है। चर्म के नीचे मांस और मांस के नीचे अस्थियां (हड्डियां) रहती हैं। अगर शरीर के ऊपर से चमड़े,

मांसपेशियों आदि को सावधानी से हटा लिया जाय तो अस्थि-पंजर (Skeleton) साफ-साफ दिखाई पड़ेगा। अस्थि-पंजर के रूप में हड्डियों का ढाँचा छोटी-बड़ी सभी हड्डियों के मेल से बना है। सम्पूर्ण शरीर में कुल मिलाकर २०६ हड्डियाँ हैं। कुछ लोगों का मत है कि यह संख्या २१२ है। एक नवजात शिशु के अस्थि-पंजर में हड्डियों की संख्या इससे अधिक रहती है। जैसे-जैसे उसकी उम्र बढ़ती जाती है, वैसे-वैसे हड्डियों के टुकड़े आपस में जुड़ते जाते हैं।

अस्थिर-पंजर के गठन की विशेषता के कारण ही मनुष्य अपने शरीर को संतुलित रखने में समर्थ है। यह शरीर को मानव-आकृति प्रदान करता है तथा शरीर के भीतरी अंगों को सुरक्षित रखता है। शरीर की सभी अस्थियाँ (हड्डियाँ) एक समान नहीं हैं। कुछ छोटी होती हैं और कुछ बड़ी। शरीर के विभिन्न अंगों के आवश्यकतानुसार इनके आकार भिन्न-भिन्न रहते हैं। मजबूती के विचार से भी ये भिन्न रहती हैं।

प्रश्न २. मानव-अस्थि-पंजर को कितने भागों में बाँटा जा सकता है? सिर की हड्डियों का संक्षेप में वर्णन कीजिए।

उत्तर— मानव-अस्थि-पंजर को निम्नलिखित खंडों में विभक्त किया जा सकता है—

१. खोपड़ी अर्थात् सिर और चेहरे की हड्डियाँ,

२. धड़ की हड्डियाँ,

३. हाथ की हड्डियाँ,

४. पैर की हड्डियाँ।

हाथ और पैर की हड्डियों को ऊर्ध्व और निम्न शाखाओं की हड्डियाँ भी कहते हैं।

सिर की हड्डियाँ— सिर में एक गोलाकार अस्थि-समूह है जो खोपड़ी कहलाता है। इसके दो भाग हैं— मस्तिष्क-कोष्ठ और चेहरा।

मस्तिष्क-कोष्ठ - मस्तिष्क-कोष्ठ के भीतर मस्तिष्क सुरक्षित रहता है। यह आठ हड्डियों से बना है। ये सभी आपस में इस तरह जुड़ी रहती हैं कि इन्हें जल्दी अलग करना मुश्किल है। मस्तिष्क-कोष्ठ में निम्नलिखित आठ अस्थियाँ हैं—

ललाटास्थि—	१	पाश्चतास्थि—	१
पार्श्वास्थियाँ—	२	जतूकास्थि—	१
शंखास्थियाँ—	२	बहुछिद्रास्थि—	१

चेहरा— निम्नलिखित १४ हड्डियों से चेहरा बना होता है—

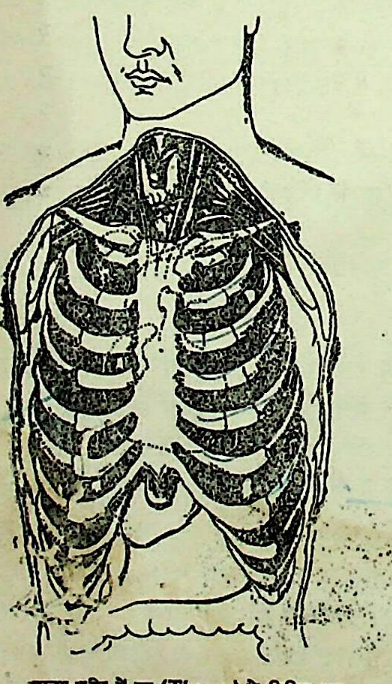
ऊपर के जबड़े की हड्डियाँ—	२
नीचे के जबड़े की हड्डी—	१
गालों की हड्डियाँ—	२
तालू की हड्डियाँ—	२
नाक की हड्डियाँ—	२
स्पंज की तरह हड्डियाँ—	२
आँसू से सम्बन्ध रखने वाली हड्डियाँ	२
नाक के परदे की हड्डी—	१
	कुल १४

इनमें से नीचे के जबड़े की हड्डी को छोड़कर शेष १३ हड्डियाँ आपस में इस प्रकार जुड़ी हैं कि इन्हें जल्दी अलग नहीं किया जा सकता। ऊपर का जबड़ा खोपड़ी से सटा रहता है और नीचे का जबड़ा चल-जोड़ द्वारा खोपड़ी से मिला रहता है। प्रत्येक जबड़े में १६ दाँत के गढ़े बने रहते हैं। ऊपर का जबड़ा खोपड़ी से जुड़ा रहता है इसलिए वह खिसकता नहीं है। यही कारण है कि भोजन को चबाने के लिए हमें नीचे के जबड़े को ही ऊपर नीचे और अगल-बगल घुमाना पड़ता है। नाक के ऊपर का भाग दो हड्डियों से बना रहता है। ये दोनों हड्डियाँ छोटी-छोटी हैं और दोनों आँखों के बीच अवस्थित हैं। इन्हीं दोनों हड्डियों के निकट दो बहुत छोटी-छोटी और कोमल हड्डियाँ हैं

जिन्हें आँसू से सम्बन्ध रखने वाली हड्डियाँ कहते हैं। प्रत्येक नाक के खाने में स्पंज की तरह एक-एक हड्डी रहती है। इन्हीं दोनों को अलग करने वाली हड्डी को नाक के पर्दे वाली हड्डी कहते हैं। इन हड्डियों के अतिरिक्त खोपड़ी के अन्दर और भी सात हड्डियाँ हैं। ये निम्नलिखित हैं— प्रत्येक कान में तीन-तीन छोटी-छोटी हड्डियाँ और एक कंठ में।

प्रश्न ३. वक्षस्थल की अस्थियों (हड्डियों) का संक्षिप्त विवरण दीजिए।

उत्तर— गले से लेकर उदर तक के भाग को वक्षस्थल कहते हैं। वक्षस्थल के गड्ढे में दिल, खून की नलियाँ, टेंटुआ तथा उनकी शाखाएँ, भोजन की नली और फेफड़ा सम्मिलित हैं।



मानव-शरीर में उर (Thorax) के विभिन्न भाग

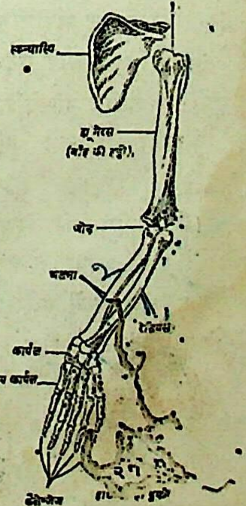
वक्षस्थल अस्थियों का बना हुआ एक पिंजरे-जैसा है। यह ऊपर से तंग और नीचे से चौड़ा होता है। छाती के पिंजड़े में कुल ३७ हड्डियाँ हैं, जिनमें १२ मोहरे में, २४ पसलियों में और एक छाती की हड्डी है। छाती के हर-एक मोहरे से दो पसलियाँ जुटी रहती हैं। इसमें हर एक तरफ की दस पसलियाँ छाती की हड्डी से मिली रहती हैं—सात वास्तविक रूप से छाती से मिली रहती हैं और तीन कार्टिलेज के द्वारा ७वीं पसली से मिली रहती हैं। हर एक तरफ की दो पसलियाँ छाती की

हड्डी तक नहीं पहुँचतीं। ये बहुत छोटी होती हैं, इन्हें तैरने वाली पसलियाँ कहते हैं।

पसलियों के बीच मांसपेशियाँ हैं। साँस लेते समय ये पेशियाँ सिकुड़ती और फैलती हैं जिससे हड्डियों का पिंजड़ा फैलता है और सिकुड़ता है। इसमें फेफड़ा और दिल दो नाजुक और कीमती भाग सुरक्षित रहते हैं। साथ-ही-साथ पेट के अवयवों का भी बचाव होता है।

प्रश्न ४. हाथ और पैर की हड्डियों का संक्षिप्त विवरण दीजिए।

उत्तर—हाथ की हड्डियाँ—प्रत्येक कंधे पर स्थित एक चौड़ी हड्डी होती है जिसे स्कन्धास्थि (Scapula) कहते हैं। स्कन्धास्थि से केहुनी तक एक हड्डी है जिसे बाँह की हड्डी (Humerus) कहते हैं। केहुनी से कलाई तक दो हड्डियाँ हैं। बाहर वाला छोटी परन्तु मोटी हड्डी को अर्थात् अँगूठे की ओर वाली हड्डी को Radius और भीतर वाली लम्बी हड्डी को Ulna कहते हैं।

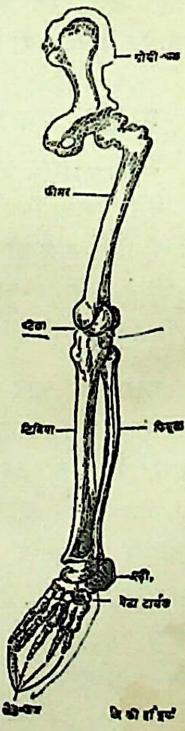


कलाई में चार छोटी-छोटी हड्डियों की दो पंक्तियाँ हैं। इन्हें Carpals कहते हैं। हथेली में पाँच लम्बी हड्डियाँ हैं जिन्हें Metacarpels कहते हैं। इसके बाद अँगूठे में दो और अन्य चार उँगलियों में तीन-तीन हड्डियाँ होती हैं। इन चौदह हड्डियों को Phalanges कहते हैं। इस प्रकार हाथ में Humerus से लेकर Phalanges तक ३० हड्डियाँ रहती हैं।

पैर की हड्डियाँ—मोटे तौर पर हाथ और पैर की हड्डियों की बनावट एक ही तरह की है। जाँघ की हड्डी एक ही होती है जिसे फीमर (Femer) कहते हैं। घुटने से एड़ी

तक दो हड्डियाँ होती हैं। इनमें सामने वाली हड्डी को टिबिया (Tibia) और पीछे की पतली हड्डी को फिब्रुला (Fibula) कहते हैं। जाँघ और घुटने के जोड़ पर एक तिकोनी पतली चपटी अस्थि रहती है। इसे पटेला (Patella) कहते हैं।

एड़ी में सात छोटी हड्डियाँ रहती हैं। इन्हें Tarsals कहते हैं। तलवे में पाँच लम्बी हड्डियाँ रहती हैं। इन्हें Metatarsals कहते हैं। हाथ की उँगलियों की तरह पैरों के उँगलियों में भी (अँगूठे में दो और अन्य चार उँगलियों में तीन-तीन) चौदह हड्डियाँ रहती हैं। इस तरह पैर में भी ३० हड्डियाँ होती हैं।



प्रश्न ५. शरीर में हड्डियों के क्या काम हैं ?

उत्तर—हड्डियों के निम्नलिखित कार्य हैं—

(i) ये हमारे शरीर को सीधा रखती हैं जिससे शरीर के ढाँचे में कोई गड़बड़ी नहीं होती। बिना हड्डियों का शरीर मांसपेशियों का केवल लोथड़ा-सा दीखता। उसमें शक्ति का संचालन भी नहीं होता।

(ii) हड्डियों के मेल से कई जगह कोष्ठ बन गये हैं जिनमें शरीर के कई कोमल अंग सुरक्षित हैं; जैसे (क) खोपड़ी में मस्तिष्क, (ख) छाती के कोष्ठ में दिल और फेफड़े।

(iii) शरीर में गति पैदा करना भी हड्डियों का काम है। हड्डियों से जुड़ी हुई मांसपेशियों के फैलने और सिकुड़ने से यह क्रिया होती है।

(iv) खोखली हड्डियाँ होती हैं जिनके अन्दर मज्जा रहती है जो रक्तकण पैदा करती है।

(v) हड्डियाँ हमारे शरीर के कोमल भागों—हृदय, मस्तिष्क, फेफड़ा इत्यादि—की रक्षा करती हैं।

(vi) बहुत-सी हड्डियाँ लीवर का काम करती हैं और इसी कारण हम चल सकते हैं।

(vii) मांसपेशियों के लिए हड्डियाँ स्थिर आधार का काम करती हैं।

(viii) हड्डियाँ शरीर में ऐक्य लाती हैं और उसे संगठित बनाती हैं।

प्रश्न ६. हड्डियों के क्या काम हैं ? इनकी बाहरी और भीतरी बनावट का संक्षिप्त विवरण दीजिए।

उत्तर—पहले भाग के लिए ऊपर के प्रश्न ५ का उत्तर देख।

किसी ताजी हड्डी का ऊपर वाला भाग एक प्रकार की चिमड़ी आच्छादक झिल्ली द्वारा आवेष्टित रहता है। उसे अस्थ्यावरण (Percosteum) कहते हैं। इस झिल्ली में रक्त-केशिकाएँ जाल-सी फैली हैं। अनुवीक्षण यंत्र से देखने पर हड्डियों में अनेक छिद्र नजर आते हैं। इन्हीं छिद्रों द्वारा रक्त-केशिकाएँ हड्डियों के खोखले भाग में चली जाती हैं जिनसे हड्डियों के तन्तुओं का भरण-पोषण होता है तथा उनके वाह्याकार में वृद्धि होती है।

अब यदि हड्डी को लम्बाई में काटकर जाँच की जाय तो इसका मध्य भाग नली-जैसा खोखला दिखाई पड़ेगा जिसमें हलके पीले रंग का अर्द्ध-तरल द्रव दिखाई पड़ेगा। इसे पीत मज्जा कहते हैं। मज्जा में वसा और रक्त-कणों की प्रधानता रहती है। इनमें तन्त्रिकाएँ भी जाल की तरह फैली रहती हैं। यह खोखला भाग एक समान हड्डी के एक छोर से दूसरे छोर तक नहीं है। पोल के दोनों छोरों पर छिद्रिष्ठ अस्थि (Canallons) भाग नजर आयेंगे। इस भाग में भी मज्जा रहती है। लेकिन यह मज्जा अपेक्षाकृत अधिक लाल रंग की होती है। इसे हम रक्तिम मज्जा (Red-marrow) कहते हैं। हड्डियों के इसी भाग से रक्त के लाल कणों की उत्पत्ति होती है तथा हड्डियों की लम्बाई में वृद्धि होती है। इस प्रकार रक्तिम मज्जा में अपेक्षाकृत अधिक रक्त-केशिकाएँ होती हैं। रक्त के लाल कण बनते समय रक्त-केशिकाओं के दोनों सिरे बन्द

हो जाते हैं। रक्त के लाल कणों के बनने पर इन केशिकाओं के मुँह फिर खुल जाते हैं और बने हुए लाल कण रक्त-प्रणाली में मिल जाते हैं। अतः, अस्थियों की रक्तिम मज्जा रक्त के लाल कणों का उद्गम-स्थान है।

अध्याय ४

मांसपेशी-तंत्र

प्रश्न १. मांस-पेशियों से क्या समझती हैं ? इनके कौन-कौन-से काम हैं ?

उत्तर— मानव-शरीर के बाहरा आवरण चमड़े को यदि हटा दिया जाय तो जो भाग दिखाई पड़ेगा, उसे ही मांसपेशियाँ कहते हैं। हमारा सारा शरीर मांस से ढँका हुआ है। चमड़े के नीचे मांस के लोथड़े और उसके नीचे हड्डियाँ हैं। उन्हीं मांस के लोथड़ों, विशेकर टुकड़ों को मांसपेशियाँ कहते हैं। पेशियाँ शरीर के बाहरी और भीतरी दोनों हिस्से में हैं। शरीर की तौल का लगभग आधा भाग पेशियों का ही है। हमारे शरीर में जितना भी रक्त है, उसका करीब एक-चौथाई पेशियों में ही वर्त्तमान रहता है।

पेशियों के काम— (i) ये हड्डियों में गति पैदा करती हैं। इनके सिकुड़ने और फैलने से हड्डियाँ सटती और अलग होती हैं जिसके फलस्वरूप मनुष्य चल सकता है अथवा कोई भी कार्य कर सकता।

(ii) ये हमारे शरीर को ढककर इसे अति सुन्दर बना देती हैं। इनके बिना मनुष्य का शरीर अस्थि-पिंजर का एक भयंकर ढाँचा होता।

(iii) ये हमारे शरीर को ताप और शक्ति प्रदान करने में सहायता करती हैं। श्वेतसार और चर्बी के लिए ये गोदाम का काम करती हैं।

[illegible] की पेशियाँ भोजन पचाती हैं, दिल की पेशियाँ रक्त-संचालन करती हैं तथा फेफड़ों और पसलियों की पेशियाँ साँस लेने में मदद करती हैं।

(v) ये शरीर के विभिन्न अंगों में गति लाती हैं तथा संधियों की रक्षा करती हैं।

प्रश्न २. मांसपेशियाँ कितने प्रकार की हैं? प्रत्येक का संक्षिप्त विवरण दीजिए।

उत्तर—मांसपेशियाँ निम्नलिखित प्रकार की होती हैं—

(क) काम के विचार से पेशियों के भेद—

पेशियाँ

इच्छाधीन | स्वाधीन

(i) इच्छाधीन पेशियाँ—इच्छाधीन पेशियाँ वे हैं जिन्हें हम इच्छानुसार फैला और सिकुड़ा सकते हैं। ये पेशियाँ हमारे वश की हैं। ये इच्छानुसार हमारा काम करती हैं। हम हाथ मोड़ना चाहते हैं, तो हाथ मोड़ लेते हैं। इच्छाधीन पेशियाँ साधारणतः शरीर के ऊपरवाले भाग में रहती हैं। इच्छाधीन पेशियाँ अस्थियों से जुड़ी रहती हैं। हाथ, पैर, आँख, बाँह इत्यादि की मांसपेशियाँ इसी प्रकार की हैं। मांस के रेशे से बनी होने के कारण इन्हें धारी वाली मांसपेशियाँ भी कहते हैं।

(ii) स्वाधीन पेशियाँ—हमारे शरीर के भीतर कुछ ऐसे भी काम होते रहते हैं जिनपर हम नियंत्रण नहीं रख सकते हैं। ये काम आप ही आप हुआ करते हैं। साँस लेना, भोजन पचाने के लिए आँतों में गति का होना, रक्त का संचालित होना इत्यादि क्रियाएँ हमारी इच्छा के अधीन नहीं हैं। ये क्रियाएँ एक विशेष प्रकार की पेशियों द्वारा संचालित होती हैं। ऐसी पेशियों को स्वाधीन पेशियाँ कहते हैं। साधारणतः स्वाधीन पेशियाँ शरीर के भीतरी भाग जैसे दिल, आमाशय, वृक्क इत्यादि में पायी जाती हैं। इन मांसपेशियों में धारियाँ नहीं रहतीं।

(ख) बनावट के विचार से पेशियों के भेद—

पेशियाँ

रैखिक | अरैखिक | हार्दिक

(i) रैखिक पेशियाँ— इच्छाधीन मांस-पेशियों की बनावट पर यदि हम ध्यान दें तो यह साफ मालूम पड़ता है कि इनमें धारियाँ हैं। ऐसी पेशियों को रैखिक पेशियाँ कहते हैं।

(ii) अरैखिक पेशियाँ -स्वाधीन पेशियाँ चिकनी तथा धारीविहीन है। धारीविहीन पेशियों को अरैखिक पेशियाँ कहते हैं।

(iii) हार्दिक या हृदय पेशियाँ —दिल की पेशी के स्वाधीन होने पर भी इसकी बनावट अन्य स्वाधीन पेशियों की बनावट से भिन्न है। इसकी बनावट ऐच्छिक रैखिक पेशियों से मिलती-जुलती है। लेकिन अणुवीक्षण यन्त्र से देखने पर इनकी कोशिकाओं में शाखाएँ निकली हुई दिखाई पड़ती हैं। साथ ही, इनमें विशेष प्रकार की धारियाँ दृष्टिगत होती हैं। इन पेशियों की अपनी विशेषता है। ये शीघ्र थकती नहीं हैं। इस तरह ये स्वाधीन पेशियों-जैसी हैं। ऐसी पेशी को हृदयपेशी कहते हैं।

नोट – रैखिक पेशियों को छोड़कर अन्य दो प्रकार की मांसपेशियाँ स्वाधीन ही हैं। रैखिक पेशियाँ इच्छाधीन पेशियों के ही अन्तर्गत आती हैं।

प्रश्न ३. निम्नलिखित से क्या समझती हैं—
सन्धिबन्ध, कण्डरा और उपास्थि ?

उत्तर— सन्धिबन्ध (Ligaments)— हमारे अस्थि-पंजर में २०६ अस्थियाँ और अनेक सन्धि हैं। स्थानविशेष पर दो या दो से अधिक अस्थियाँ सफेद, [illegible] लचीले, सजीव सौत्रिक बन्धनों से बँधी हैं। इन्हें हम सन्धिबन्ध (Ligaments) कहते हैं। ये सौत्रिक बन्धन लचीले और फैलने

वाले हैं, जिसके कारण एक अस्थि दूसरी अस्थि के साथ बँधी रहने पर भी गतिशील होती है।

कण्डरा (Tendon)— सौत्रिक बन्धनों के अतिरिक्त जोड़ों पर मांस-पेशियाँ भी अस्थियों से एक-दूसरे प्रकार के सफेद बन्धन द्वारा मजबूती से जकड़ी हुई पायी जाती हैं। इसे कण्डरा (Tendon) कहते हैं।

उपास्थि (Cartilage)— यह सफेद, लचीला, पारदर्शी पदार्थ है। हमारे कान का बाहरी भाग, नाक के पर्दे का निचला भाग आदि उपास्थि के ही बने हैं।

अपने लचीलेपन के कारण दो अस्थियों के बीच का कार्टिलेज अस्थियों को धक्कों से बचाता है, श्वास-नली तथा स्वर-यंत्र को फैलाये रहता है और अस्थियों के बीच होने वाले घर्षण को कम करता है। भ्रूण-अवस्था में कंकाल का अधिक भाग उपास्थि का बना होता है, जो समयानुकल अस्थियों में परिवर्तित हो जाता है।

प्रश्न ४. सन्धि (Joints) जोड़ क्या हैं? उनके कितने भेद हैं? प्रत्येक का संक्षिप्त परिचय दीजिए।

उत्तर— सन्धि क्या हैं—दो या दो से अधिक अस्थियों (हड्डियों) के उपास्थियुक्त सिरे जहाँ पर मिलते हैं, उस स्थान को सधि कहते हैं।

सन्धि के भेद—

- सन्धि
  - अचल सन्धि
  - चल सन्धि
    - गेंद-गड्ढा सन्धि
    - चूलदार सन्धि
    - कीलदार सन्धि
    - फिसलने वाली सन्धि
  - अर्द्धचल सन्धि

नोट—सन्धि को जोड़ भी कहते हैं।

(क) अचल सन्धि— इस प्रकार की सन्धियों में गति नहीं होती, इस सन्धि में एक हड्डी दूसरी हड्डी से महीन आरा की तरह दाँत द्वारा जुड़ी रहती

है। एक हड्डी के दाँत दूसरी हड्डी के गड्ढे में इस तरह फिट रहते हैं कि हड्डियाँ टस-से-मस नहीं हो सकतीं। इस सन्धि का उदाहरण खोपड़ी की हड्डियों का जोड़ है। खोपड़ी की इन्हीं जोड़ों को अज्ञान से लोग कर्म या भाग्य-रेखा मानते हैं।

(ख) चल-सन्धि — चल-सन्धि में दो या दो से अधिक हड्डियाँ सन्धि-स्थान पर हिल-डोल सकती हैं। चल-सन्धि के निम्नलिखित भेद हैं—

(i) गेंद-गड्ढा सन्धि— इस प्रकार की सन्धि में एक लम्बी हड्डी का गोल सिरा दूसरी हड्डी के गोल गड्ढे में टिका रहता है। कंधे और कूल्हे पर की सन्धि इसके उदाहरण हैं। यह सन्धि ऐसी होती है कि आपस में मिली हुई हड्डियाँ अच्छी तरह हिलायी-डुलायी तथा घुमायी जा सकती हैं। इसे घुंडीदार सन्धि भी कहते हैं। अँगरेजी में इसे बॉल एंड साकेट ज्वाइण्ट (Ball and socket joint) कहते हैं।

(ii) चूलदार सन्धि— चूलदार सन्धि में जुड़ी हुई हड्डियाँ आगे-पीछे खास दिशा में घुमायी जा सकती हैं। केहुनी, घुटनों और उँगलियों की सन्धियाँ इसी तरह की हैं। शरीर में इस तरह की सन्धियाँ अधिक संख्या में हैं। वे आगे-पीछे तो मुड़ सकती हैं, पर दायें से बायें और बायें से दायें नहीं मोड़ी जा सकतीं और न हिलायी ही जा सकती हैं।

(iii) कीलदार सन्धि— कीलदार सन्धि में एक हड्डी कील का काम करती है और उस पर दूसरी हड्डी घूमती है। रीढ़ के पहले और दूसरे मोहरे का जोड़ जिसके सहारे खोपड़ी इधर से उधर घूमती है, ऐसी ही है।

(iv) फिसलनेवाली सन्धि— जिस सन्धि पर एक हड्डी दूसरी के ऊपर कार्टिलेज की गद्दी बीच में रहने के कारण थोड़ा फिसलती है, वह फिसलने वाली सन्धि है। कलाई की हड्डियों और रीढ़ के मोहरों को आपस में मिला रहना इसी तरह की सन्धि के उदाहरण हैं।

(ग) अर्द्ध चल सन्धि— इस सन्धि में दोनों ओर की हड्डियों के बीच कार्टिलेज की एक परत रहती है और यहाँ सीमित मात्रा में गति सम्भव है। कंधे पर इस प्रकार के कुछ जोड़ रहते हैं।

पाचन-तंत्र

प्रश्न १. पाचन-क्रिया से क्या समझती हैं ? भोजन के पचने में किन-किन अवयवों की आवश्यकता होती है ?

उत्तर—पाचन-क्रिया—पाचन का अर्थ है खाये हुए भोजन को अत्यन्त सूक्ष्म कणों में विभक्त करने के पश्चात् पाचक रसों की क्रिया द्वारा उसको उस रूप में परिवर्तित कर देना जिसमें वे रक्त द्वारा शोषित हो सकें। लेकिन जिस रूप में हम भोजन करते हैं, उस रूप में शरीर की मांसपेशियाँ या अन्य तन्तु उसे ग्रहण कर उसका आत्मीयकरण नहीं कर पाते हैं। इसके लिए किसी विशेष क्रिया का सम्पादन करना पड़ता है। अतः वह क्रिया जिसके द्वारा सभी प्रकार के खाद्य पदार्थों को तोड़-फोड़कर सरल पदार्थों में इस तरह बदल दिया जाता है कि वह रक्त में मिलकर सारे शरीर में भ्रमण कर सके, पाचन-क्रिया कहलाता है। हमलोग जो कुछ भोजन करते हैं, वह तब तक शरीर के लिए लाभदायक नहीं हो सकता जब तक पानी में घुलनशील होकर खून में नहीं मिल जाता है। अतः जिस क्रिया से खायी हुई वस्तुओं से पानी में घुलनशील रस तैयार हो, उसे पाचन-क्रिया कहते हैं। इस प्रकार बना हुआ रस पानी में घुलकर रक्त में जाता है और रक्त उसे शरीर के विभिन्न अंगों में पहुँचा देता है।

पाचन-क्रिया के अवयव—पाचन-क्रिया मुँह से आरम्भ होती है और बड़ी आँत तक चली जाती है। भोजन का पचना, पचे हुए पदार्थों का शोषित होना और बचे हुए भाग का बाहर निकल जाना पाचन-क्रिया में ही सम्मिलित हैं।

भोजन पचाने में निम्नलिखित अवयव काम करते हैं–(i) मुँह (Mouth), (ii) भोजन नली (Oesophagus), (iii) आमाशय (Stomach), (iv) पक्वाशय (Duodenum), (v) छोटी आँत (Small Intestine), (vi) बड़ी आँत (Large Intestine), (vii) यकृत (Liver) एवं (viii) क्लोम (Pancreas)।

प्रश्न २. पाचन-प्रणाली (Alimentary canal) से क्या समझते हैं? इसके क्या कार्य हैं? इसके विभिन्न अंगों का संक्षिप्त परिचय दीजिए।

उत्तर— पाचन-प्रणाली— पाचन-प्रणाली एक लम्बी नली है जो मुँह से मल-द्वार तक जाती है। वयस्क मनुष्यों में यह प्रणाली करीब तीस फुट लम्बी होती है। इसका व्यास भिन्न-भिन्न भागों में अलग-अलग रहता है। इस नली में कई पाचक ग्रंथियाँ भी सम्मिलित हैं जो अपना स्राव छोड़कर पाचन-क्रिया में सहायता पहुँचाती हैं।

पाचन-प्रणाली के कार्य— भोजन का पचना, पचे हुए पदार्थ का शोषित होना और बचे हुए भाग को शरीर के बाहर निकाल देना इस प्रणाली के काम हैं।

पाचन-प्रणाली के अंग— पाचन-प्रणाली के निम्नलिखित अंग हैं—

(i) मुख-गह्वर (Buccal cavity)— मुख-गह्वर में भोजन दाँतों द्वारा चबाया जाता है और वह छोटे-छोटे टुकड़ों में बदल जाता है। इसमें अवस्थित लार-ग्रंथियों से लार निकलती है जिससे भोजन नरम और लसीला हो जाता है। लार कुछ हद तक श्वेतसार को शर्करा में भी बदल देता है।

(ii) भोजन की नली— पाचन-प्रणाली का सबसे तंग भाग भोजन की नली है। यह लगभग १५ इंच लम्बी मांस की बनी हुई एक नलिका है जो ग्रसनिका से आरम्भ होकर आमाशय तक चली जाती है। यह छल्लीदार तथा लम्बी-लम्बी मांसपेशियों की बनी होती है। निगला हुआ भोजन जब भोजन-नली के ऊपरी भाग में पहुँचता है तो छल्लीदार पेशियों के संकुचन के कारण भोजन

नीचे की ओर धकेल दिया जाता है। ऊपर के बाद वाली छल्ली फैलकर इसे ग्रहण करती है, पुनः इसके संकुचन और बाद वाली छल्ली के प्रसार के कारण भोजन नीचे की ओर चला जाता है। इस तरह निगले हुए भोजन का आगे बढ़ना इस नली में कुंचक गति (Peristalsis) का परिणाम होता है। इस गति में ग्रास (निगला हुआ भोजन) के पीछे की नली के भाग की पेशियाँ संकोच करती हैं और ग्रास के आगे का भाग विस्तृत होता जाता है। नली के आदि से अंत तक ऐसा ही होता है और निगला हुआ भोजन स्वाधीन पेशियों की मदद से आप-ही-आप आमाशय में पहुँच जाता है।

(iii) आमाशय (Stomach)— यह एक थैला जैसा है। आमाशय की भीतरी दीवाल में अनेक छोटी ग्रंथियाँ पायी जाती हैं जिनसे एक पाचक-रस निकलता है, इसे गैस्ट्रिक जूस (Gastric juice) कहते हैं।

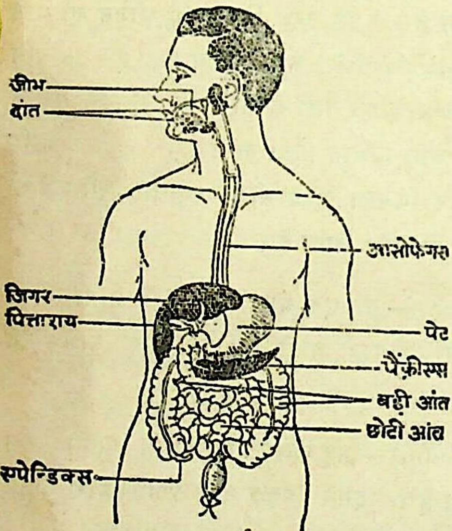
(iv) पक्वाशय (Duodenum)— यह छोटी आँत का ही पहला भाग है। यह १२" लम्बा होता है। इसमें यकृत (Liver) और क्लोम (Pancreas) की नलियाँ आकर खुलती हैं।

(v) छोटी आँत (Small intestine)— छोटी आँत की लम्बाई लगभग २० फुट होती है। भोजन को पचने में काफी समय लगता है। इसलिए भोजन को भोजन-नली में अधिक समय तक टिकना आवश्यक है। अतः छोटी आँत बहुत लम्बी होती है और इसमें अनेक घुमाव होते हैं।

(vi) बड़ी आँत— पाचन-क्रिया के बाद जो भोजन नहीं पच पाता है, वह बड़ी आँत में जाता है। यहाँ कोई पाचक रस तैयार नहीं होता। यहाँ जल और लवण का शोषण होता है। इस भाग की लम्बाई करीब ६ फुट होती है। बड़ी आँत के अन्तिम भाग को मलाशय (Rectum) कहते हैं। पचा हुआ खाना यहीं इकट्ठा होता है और मलद्वार द्वारा बाहर चला जाता है।

प्रश्न ३. हमारा भोजन किस प्रकार पचता है ? समझाकर लिखिए।

उत्तर— भोजन का पचना, पाचन-प्रणाली के कई भागों में होता है।



ज्योंही भोजन मुँह में पहुँचता है त्योंही दाँत और जीभ दोनों अपना-अपना काम करने लग जाते हैं। दाँत का काम है—भोजन को काटना, कुचलना और उसे भली-भाँति पीसना। जीभ भोजन को कुचलने, पीसने, निगलने एवं स्वाद लेने इत्यादि यांत्रिक (Mechanical) क्रियाओं में मदद देती है। साथ-साथ भोजन ज्यों-ज्यों दाँत से कुचलाता या पीसता रहता है, त्यों-त्यों ही मुँह-स्थित लाला-ग्रन्थियों (Salivary Glands) से लार (Saliva) निकल कर इससे मिलती रहती है जिससे भोजन के श्वेतसार का कुछ भाग पच जाता है। जब भोजन बारीक पिसकर मुलायम हो जाता है, तब जीभ की मदद से वह भोजन की नली में धकेल दिया जाता है। भोजन की नली के बार-बार सिकुड़ने से भोजन नीचे की ओर उतरता है और आमाशय में पहुँच जाता है। आमाशय की दीवाल से एक विशेष प्रकार का आमाशय-रस (Gastric juice) निकलता है। आमाशय की पेशियों के संकुचन और प्रसार के कारण भोजन इसके भीतर उलटता-पुलटता रहता है जिससे भोजन रस से भली-भाँति मिल जाता है। भोजन का कुछ भाग तो मुँह में ही पच जाता है और कुछ भाग आमाशय में। अब भोजन नीचे उतरने के योग्य हो जाता है। अब भोजन पक्वाशय (Duodenum) में पहुँचता है। यहाँ यकृत (Liver) और क्लोम (Pancreas) से आये हुए रस इससे मिलते हैं। इन

सारे रसों के प्रभाव से भोजन पच जाता है और उसके बाद आँत में चला जाता है। आँत में छोटे-छोटे उभारों में पचे हुए भोजन का शोषण होता है। आँत में भी मांसपेशियों के फैलने-सिकुड़ने की क्रिया होती है जिससे भोजन का मन्थन होता रहता है। भोजन का व्यर्थ अंश बड़ी आँत में जाता है, जहाँ पानी के बड़े अंश का शोषण हो जाता है और व्यर्थ पदार्थ मलद्वार से निकल जाता है।

प्रश्न ४. आमाशय की बनावट संक्षेप में लिखें।

उत्तर— आमाशय पाचन-प्रणाली का मुख्य अंग है। साधारण बोलचाल में इसे 'पेट' कहते हैं। इसकी आकृति मशक जैसी होती है। यह मांस का एक थैला है जो शरीर में बायीं ओर हृदय के नीचे उदर में स्थित है। इसकी लम्बाई दाहिनी ओर से बायीं ओर लगभग दस इंच और चौड़ाई करीब चार इंच है। इसमें दो रास्ते हैं—एक भोजन के आने का और दूसरा पचे हुए भोजन के नीचे उतरने का। भोजन के आने का मार्ग हृदय के पास है, जो 'हृदय-द्वार' कहलाता है। पचे हुए भोजन को छोटी आँत में जाने का मार्ग इसके निचले भाग में दाहिनी तरफ है। इस छिद्र को अँगरेजी में पायलोरस (Pylorus) कहते हैं। आमाशय की दीवार तीन तहों से बनी होती है। सबसे ऊपरी तह चिकनी कोट-सी होती है। मध्य तह में तीन प्रकार की मांसपेशियों के सूत्र हैं तथा भीतरी तह श्लैष्मिक झिल्ली की रहती है जिसमें अनेक गिल्टियाँ और रक्त-नालियाँ भरी रहती हैं। इन गिल्टियों से एक प्रकार का रस निकलता है जिसे आमाशयिक रस कहते हैं। इसमें नमक का तेजाब, पेप्सीन, रेनिन तथा लाइपेज नाम की खमीरें रहती हैं जो पाचन-क्रिया में सहायता करती हैं।

प्रश्न ५. आमाशय (Stomach) के कार्यों का वर्णन कीजिए।

उत्तर— आमाशय के निम्नलिखित कार्य हैं—

(i) आमाशय निगाल से भोजन ग्रहण करता है और कुछ काल के लिए भोजन के गुदाम का काम करता है।

(ii) सभी भोजन आमाशय की पेशियों द्वारा पिस कर द्रवावस्था में परिवर्तित हो जाते हैं।

(iii) भोजन में हाइड्रोक्लोरिक अम्ल मिल जाता है जो अनेक प्रकार के कीटाणुओं को मार देता है।

(iv) आमाशय-रस में उपस्थित पेप्सीन नामक विकर प्रोटीनों को पेप्टोनों में बदल देता है।

(v) आमाशय-रस में उपस्थित रेनिन नामक विकर दूध को दही में जमा कर कैसीन मुक्त करता है।

(vi) आमाशय-रस में उपस्थित लाइपेज नामक विकर वसा का पाचन आरम्भ करता है।

(vii) आमाशय-रस में एक अनेमिया-नाशक विकर भी रहता है।

(viii) आमाशय का तरल भोजन पक्वाशय में अल्प मात्रा में जाता रहता है। इस प्रकार आमाशय आंत्रिक पाचन के लिए भोजन तैयार कर देता है।

प्रश्न ५. आमाशय रस की वनावट और उसके कार्यों का वर्णन कीजिए।

उत्तर— आमाशय-रस की बनावट— यह 1002—6 वि० गु० वाला स्वच्छ द्रव है। इसमें निम्नलिखित पदार्थ पाये जाते हैं—

(i) मुक्त लवणाम्ल—0·2%,

(ii) सम्पूर्ण अम्ल—0·4%,

(iii) पेप्सिन,

(vi) रेनिन,

(v) लाइपेज,

(vi) म्यूसिन,

(vii) कास्ल के स्राव (Intrinsic factor of Castle),

(viii) सोडियम, पोटासियम तथा कैलसियम के क्लोराइड—0·2%,

(ix) कैलसियम, मैगनीसियम तथा लोहा के फास्फेट—0·1%,

(x) बैक्टीरिमा (Bacteria) प्राधनन: E. coli, Staphylococci तथा जो Septococci रक्त-नाशक नहीं होते हैं,

(xi) जल।

आमाशय-रस के कार्य—

(i) इसमें बैक्टीरिया को मारने की शक्ति है। यह उन्हें आगे बढ़ने से रोकता है एवं खाद्य-पदार्थों को सड़ने से बचाता है।

(ii) लवणाम्ल— चीनी (Sucrose) को आंशिक रूप से ग्लूकोज तथा फ्रूक्टोज में बदलता है एवं प्रोटीन के पचने की क्रिया में मदद पहुँचाता है।

(iii) रेनिन— इसमें जमाने (Coagulative) की शक्ति होती है। यह केजीनोजन (Caseinogen) को केजिन में बदलता है एवं दूध में उपस्थित कैलसियम के साथ कैलसियम केजीनेट अवक्षेपित करता है।

(iv) प्रोटीन पचाने की क्रिया— लवणाम्ल की उपस्थिति में पेप्सिन (Pepsin) प्रोटीन को पेप्टोन (Peptones) में बदल देता है, निउक्लिओप्रोटीन (Nucleoprotein) को प्रोटीन एवं निउक्लिन में विच्छेदित करता है तथा सेल की अल्बुमिन-निर्मित को गला (Dissolves) देता है।

(v) वसा की पाचन-क्रिया— लाइपेज (Lipase) वसा को वसा-अम्ल (Fatty acid) तथा ग्लिसरीन (Glycerine) में विश्लेपित कर देता है, विशेषकर अब वसा दूध में तरल इमल्सिफायड (Emulsified) अवस्था में रहती है। लेकिन आमाशय में मुक्त अम्ल (Free acid) रहने के कारण यह सीमित (Restricted) होती है।

(vi) कास्ल के स्राव (Intrinsic factor of Castle)— इसका प्रभाव खाद्य पदार्थों पर पड़ता है एवं उनसे लाल रक्त कणों को परिपक्व करने वाले एक तत्त्व का निर्माण करता है।

प्रश्न ६. आमाशय में पाचन-क्रिया कैसे होती है ? समझाकर लिखें।

उत्तर— आमाशय में प्रोटीन की पाचन-क्रिया अधिक मात्रा में होती है। यह क्रिया पेप्सीन तथा नमक के तेजाब द्वारा होती है। जब मुख से चबाया

हुआ भोजन आमाशय में पहुँचता है तो वह उसके बायें भाग में एकत्र होता है। जो भोजन मुख से आता है उसके ग्रास छोटे-छोटे गोले-से होते हैं। यदि वे (ग्रास) इस दशा में रह जायँ तो पाचक रस केवल उनके बाहरी पृष्ठ पर ही क्रिया कर सकता है। पाचन के लिए रस और भोजन के प्रत्येक कण का सम्पर्क आवश्यक है। इस कारण आमाशय में इस प्रकार की कई दिशाओं से गति होती है जिससे भोजन मथ-सा जाता है। फलतः आमाशय में सभी प्रोटीन पेप्टोन्स में बदल जाते हैं। केवल स्वलीरो प्रोटीन तथा प्रोटो अमाइन्स नहीं पचते। श्वेतसार का वह अंश जो मुँह में शक्कर नहीं बन पाता वह आमाशय में छोड़े हुए लार द्वारा शक्कर में बदल जाता है। अर्थात् आमाशय में लार की पाचन-क्रिया आरम्भ होती है। रेनिन नामक पदार्थ खमीर के प्रभाव से दूध-दही के थक्के की तरह बन जाता है जो फिर पेप्सीन तथा नमक के तेजाब द्वारा पच जाता है और खून में मिल जाता है। आमाशय में चर्बी की भी कुछ अंश तक पाचन-क्रिया होती है। यह क्रिया Lipaze तथा पक्वाशय से आये हुए पित्त के द्वारा होती है। पहले लोगों का अनुमान था कि आमाशय में जो चर्बी का कुछ अंश पचता है वह पित्त के ही द्वारा। पर ऐसा देखा गया है कि आमाशय में पित्त का आना बन्द कर देने पर भी चर्बी का थोड़ा भाग पच ही जाता है। अतः आमाशयिक रस से लाइपेज नामक एक खमीर निकलता है जो चर्बी पचाता है। यह चर्बी को ग्लिसरीन तथा वसीय अम्ल (Fatty Acid) में बदल देता है जो खून में मिल जाता है। अतः, आमाशय में श्वेतसार, प्रोटीन तथा चर्बी की भी कुछ अंश तक पाचन-क्रिया होती है। आहार का बहुत अंश आमाशय के पक्वाशयक द्वारा से पक्वाशय में चला जाता है जहाँ क्लोम तथा छोटी आँत की दीवार के रसों का प्रभाव आरम्भ हो जाता है। इसी प्रकार से आमाशय में भोजन की पाचन-क्रिया होती है।

प्रश्न ७. पक्वाशय (Duodenum) में भोजन किस प्रकार पचता है ?

उत्तर— जब आहार-रस पक्वाशय में पहुँचता है तो जिगर से पित्त और

क्लोम से क्लोम-रस आकर मिलते हैं। क्लोम-रस पतला, साफ तथा खारा होता है। पित्त को छोटे-छोटे कणों में बाँट देता है और क्लोम-रस में वर्त्तमान लाइपेज नामक खमीर के प्रभाव से चिकनई, ग्लिसरिन और चिकनई के तेजाब में बदल जाता है। श्वेतसार का बचा हुआ भाग क्लोम-रस में वर्त्तमान आमाईलोप्सिन नामक खमीर के प्रभाव से शक्कर में बदल जाता है। प्रोटीन का बचा हुआ भाग क्लोम-रस में वर्त्तमान ट्रिप्सीन नामक खमीर के प्रभाव से पेप्टोन में तथा अमाइनो एसिड्स में बदल जाता है। आमाशय खटाई के गुण से प्रोटीन को पचाता है, लेकिन क्लोम-रस खारापन के गुण से प्रोटीन को पचाता है। इस प्रकार पक्वाशय में पाचन-क्रिया करीब-करीब खतम हो जाती है।

प्रश्न ८. छोटी आँत की बनावट का संक्षिप्त विवरण दीजिए। छोटी आँत में भोजन में क्या परिवर्त्तन होते हैं ?

अथवा, छोटी आँत में पाचन-क्रिया तथा पचे हुए भोजन के अवशोषण की विधि पर प्रकाश डालिए।

उत्तर—छोटी आँत की बनावट—छोटी आँत एक नलिकाकार अंग है। इसकी कुल लम्बाई २२ फुट है जिसमें पक्वाशय भी सम्मिलित है। इसका व्यास लगभग डेढ़ इंच रहता है। जिस प्रकार सर्प गेंडुलियाँ मार कर बैठता है या रस्सी को लपेट कर उसकी कुंडलियाँ बनायी जाती हैं उसी प्रकार यह भी गुड़मुड़ी रहती है। इसका रंग हलका गुलाबी होता है। यह देखने में चमकीली तथा छूने में चिकनी मालूम पड़ती है।

छोटी आँत की बनावट आमाशय जैसे ही है। इसकी दीवारों में भी तीन तहें हैं। इसके आभ्यन्तर में आमाशय की ही तरह सिकुड़नें पड़ी रहती हैं। परन्तु आमाशय की अपेक्षा ये सिलवटें अधिक गहरी और बड़ी होती हैं और उनपर बारीक-बारीक असंख्य उभार होते हैं जो अंकुर (Villi) कहलाते हैं।

पाचन-क्रिया—छोटी आँत की ग्रंथियों से एक प्रकार का क्षारीय पदार्थ स्रावित होता रहता है। इस स्राव में निम्नलिखित चार प्रकार के खमीर पाये

जाते हैं जिनके प्रभाव से भोजन के विभिन्न अवयव सहज में ही पच जाते हैं।

(i) इरेप्सिन— यह प्रोटीन की पाचन-क्रिया को पूर्ण करता है। इसके प्रभाव से पेपटिड्स (Peptids) एमिनो अम्ल में परिणत हो जाता है। इस प्रकार इरेप्सिन ट्रिपसिन की क्रिया को पूर्ण कर देता है।

(ii) माल्टेज— माल्टेज खमीर के प्रभाव से युग्म शर्करा माल्टोज का, सरल शर्करा ग्लूकोज (Glucose) के रूप में विभाजन हो जाता है। इस प्रकार श्वेतसार पचकर ग्लूकोज के रूप में परिणत हो जाता है। इसी रूप में श्वेतसार आंत की दीवारों द्वारा शोषित होकर रक्त में मिल जाता है।

(iii) लैक्टेज— माल्टेज जैसा ही लैक्टेज भी दुग्ध-शर्करा (Lactose) को ग्लूकोज के रूप में परिवर्तित कर देता है।

(iv) सुक्रेज – सुक्रेज का प्रभाव साधारण चीनी पर पड़ता है। इसके प्रभाव से चीनी-शर्करा-विशेषकर ग्लूकोज के रूप में बदल जाती है।

इस प्रकार पित्त, क्लोम और आंत्र-रसों के सम्मिलित प्रभाव से कार्बोहाइड्रेट, प्रोटीन और वसा-जातीय पदार्थों का क्रमश: ग्लूकोज, एमीनो अम्ल तथा वसीय अम्ल और ग्लिसरिन में परिवर्तन होकर पाचन क्रिया पूर्ण हो जाती है।

छोटी आँतों द्वारा अवशोषण— भोजन को पचाने के अतिरिक्त इसके पचे हुए भागों को शोषित कर लेना भी छोटी आँत का काम है। छोटी आंत में भोजन का पचना करीब-करीब समाप्त हो जाता है। साथ ही, आँत के रस के असर से भोजन पूर्णतया पचकर इस रूप में हो जाता है जिससे यह सहज ही आंत की दीवारों द्वारा खून में खिच जाता है। श्वेतसार और प्रोटीन क्रमश: ग्लूकोज और एमिनो अम्ल के रूप में बदल जाते हैं। वसा-जातीय पदार्थ वसीय अम्ल और ग्लिसरिन में परिणत हो जाते हैं। आँत-रस छोटी आंत के पूरे भाग से निकलता रहता है। इसलिए भोजन का पचना और पचे हुए पदार्थों का शोषित होना तब तक होता रहता है जब तक भोजन-रस छोटी आंत से बड़ी आंत में नहीं पहुँच जाता है। स्वाधीन मांसपेशियों के संकुचन और प्रसार से भोजन बड़ी आंत की ओर बढ़ता जाता है। बड़ी आंत में

पहुँचने के पहले भोजन के पचने लायक भाग करीब-करीब सब पच जाते हैं। केवल इसका बेकार भाग जैसे फलों और सब्जियों के छिलके, रेशे और चोकर इत्यादि बड़ी आँत में चले जाते हैं। 4.1.71

प्रश्न ९. बड़ी आँत की बनावट का संक्षिप्त विवरण दीजिए। बड़ी आँत में भोजन में क्या परिवर्त्तन होता है ?

या, बड़ी आँत में पाचन-क्रिया तथा पचे हुए भोजन के अवशोषण की विधि पर प्रकाश डालिए।

उत्तर— बड़ी आँत पाचन-प्रणाली का अन्तिम हिस्सा है। यह उदर की दाहिनी ओर के निम्न भाग से आरम्भ होती है। छोटी और बड़ी आँतों के सन्धि-स्थल के नीचे एक छोटी नली लगी रहती है जिसका सिरा बन्द रहता है। इसे सीकम कहते हैं। बड़ी आँत की लम्बाई करीब छः फुट और मोटाई करीब तीन इंच होती है। इसका अंतिम मांसल हिस्सा मलाशय तथा बाहरी दरवाजा मलद्वार कहलाता है।

यों तो भोजन का पचना तथा पचे हुए अंशों का शोषित होना करीब-करीब छोटी आँत में ही पूर्णतः समाप्त हो जाता है, फिर भी भोजन के कुछ भाग का पचना और पचे हुए पदार्थों का झिल्ली-स्थित कोशिकाओं द्वारा शोषित होना बड़ी आँत के ऊपर वाले भाग में भी होता है। इनके अतिरिक्त भोजन के अर्द्ध-तरल पदार्थ में से कुछ पानी भी इसके द्वारा सोख लिया जाता है। अपेक्षाकृत ठोस पदार्थ आमाशय के नीचे हिस्से में बचा रह जाता है जिसे हम मल कहते हैं। यह निम्न भाग की मांसपेशियों के सिकुड़ने से आगे की ओर बढ़ते हुए आंत में गुदा-मार्ग से बाहर निकल जाता है।

प्रश्न १०. श्वेतसार (Carbohydrate) किस तरह पचता है, लिखें।

उत्तर – भोजन जब गले के नीचे उतरता है तो उसपर लार का प्रभाव होता रहता है। खारापन का गुण रखने वाली लार श्वेतसार पदार्थ को पचाने

लायक शक्कर बना देती है। भोजन जब आमाशय में पहुँचता है तब भी कुछ देर तक प्रभाव जारी रहता है पर आमाशय का रस के खट्टेपन के कारण खरापन का गुण रखने वाली लार का प्रभाव बन्द हो जाता है और साथ ही श्वेतसार पदार्थों का पचना भी रुक जाता है। श्वेतसार पदार्थ का जितना अंश बन गया वह तो पच ही गया, पर जिस अंश का शक्कर नहीं बना वह आमाशय से नीचे उतर कर छोटी आँत में पचता है। चीनी जातीय द्विशर्करा आमाशयिक अम्ल के प्रभाव से एक-शर्करा में बदल जाता है।

श्वेतसार का जो भाग लार के प्रभाव से बचा रहता है वह क्लोम-रस खमीर अमाईलोप्सिन के प्रभाव से शक्कर में बदल जाता है। अतः श्वेतसार की पाचन-क्रिया समाप्त हो जाती है।

प्रश्न ११. शरीर के लिए वसा (Fat) की क्या आवश्यकता है ? वसा की पाचन-क्रिया और शोषण का वर्णन कीजिए।

उत्तर—वसा का काम शरीर में गर्मी उत्पन्न करना, शरीर को पुष्ट बनाना, गढ़ों को भरा रखना तथा शरीर के कोमल अंगों को जैसे आँत, गुर्दे आदि को सर्दी और गर्मी से बचाना है। आवश्यकता से अधिक खाने से यह शरीर के विभिन्न भागों और विशेष कर ऊपर में आकर जमा हो जाता है और शरीर का भार बढ़ जाता है। उपवास करने पर एकत्र चर्बी (Fat) शरीर में गर्मी तथा शक्ति पैदा करती है। फलस्वरूप शरीर क्षीण हो जाता है और उसका भार घट जाता है।

वसा का पाचन आमाशय में आरम्भ होता है। आमाशय-रस (Gastric juice) में उपस्थित लाइपेज नामक विकर के प्रभाव से वसा का आंशिक जल-विच्छेदन होता है।

पक्वाशय में वसा में पित्त एवं क्लोम-रस मिलते हैं। पित्त के प्रभाव से वसा कणिकाओं में टूट कर इमल्सन बनाता है। क्लोम-रस में उपस्थित लाइपेज (Lipaze) एवं आँत-रस (Intestinal juice) में उपस्थित लाइपेज के प्रभाव

से वसा पूर्णतया ग्लिसरिन एवं वसीय अम्लों में विच्छेदित हो जाता है। कुछ वसा-अम्ल क्षारों से संयोग कर साबुन बनाता है। छोटी आँत के शोषणांकुरों से वसीय अम्ल एवं ग्लिसरिन शोषित होते हैं, और थोरासिक (Thoracic) डक्ट होकर ये रक्त-प्रवाह में चले जाते हैं। रक्त वसीय अम्लों को शरीर के प्रत्येक भाग में ले जाता है। रक्त-प्रवाह के साथ वसा यकृत में जाता है, जहाँ उसका आंशिक आक्सीकरण होता है। यह वसा तन्तुओं में कार्बोहाइड्रेटों की उपस्थिति में आक्सीकृत होकर ऊर्जा एवं ताप देता है। शेष वसा तन्तुओं में एकत्र होता है। एकत्र वसा में विटामिन 'ए' और 'डी' रहते हैं।

प्रश्न १२. शरीर के लिए प्रोटीन की क्या आवश्यकता है? प्रोटीन की पाचन-क्रिया और उसके शोषण का वर्णन कीजिए।

उत्तर—शरीर के लिए प्रोटीन की आवश्यकता—प्रोटीन हमारी मांसपेशियों एवं तन्तुओं का मुख्य भाग है। यह कार्बन, हाइड्रोजन, आक्सीजन एवं नाइट्रोजन का एक क्लिष्ट यौगिक है। प्रोटीन अनेक प्रकार के होते हैं और हमारे शरीर के अलग-अलग तन्तु अलग-अलग प्रोटीन पर जीवन-निर्वाह करते हैं। प्रतिदिन हमारे पुराने तन्तु के कुछ भाग नष्ट हो जाते हैं, इनके पुनर्निर्माण के लिए तथा नये तन्तुओं के बनाने के लिए हमें प्रोटीन की आवश्यकता होती है। कभी-कभी इसके साथ वसा या कार्बोहाइड्रेट भी रहते हैं, तब ये साथ-ही-साथ शक्ति प्रदान करने का काम भी करते हैं। जिस प्रकार मशीनों को समय-समय पर मरम्मत करनी पड़ती है उसी प्रकार समय के साथ होने वाली शरार के तन्तुओं की हानि की भी मरम्मत करनी पड़ती है। अन्तर यह है कि स्वस्थ शरीर स्वयं ही भोजन में उपस्थित प्रोटीन से आवश्यक मरम्मत कर लेता है।

यह मांस, अंडे, मछली, आटे का चोकर, दूध, दाल तथा कुछ तरकारियों में प्राप्य है।

प्रोटीन की पाचन-क्रिया और शोषण—प्रोटीन का पाचन आमाशय में आरम्भ होता है। आमाशय की श्लैष्मिक झिल्लियों से आमाशय-रस निकलता

है जिसमें हाइड्रोक्लोरिक अम्ल एवं पेप्सिन एवं रेनिन नामक दो विकर (Enzyme) रहते हैं। पेप्सिन हाइड्रोक्लोरिक अम्ल की उपस्थिति में प्रोटीन को पेप्टोन में बदल देता है। रेनिन दूध में उपस्थित कैसीनोजेन को कैसीन में परिवर्तित कर देता है, जिसे पेप्सिन हाइड्रोक्लोरिक अम्ल की उपस्थिति में पेप्टोन में बदल देता है। आमाशय में यह क्रिया तीन-चार घंटे तक चलती है।

इसके बाद भोजन पक्वाशय में पहुँचता है, जहाँ उसमें क्लोम-रस एवं पित्त आकर मिलते हैं। पित्त की उपस्थिति में क्लोम-रस में उपस्थित ट्रिप्सिन नामक विकर प्रोटीन एवं पेप्टोन को पौलीपेप्टाइड में परिवर्तित कर देता है। छोटी आँत में आँत रस (Intestinal juice) में उपस्थित इरेप्सिन नामक विकर पोलीपेप्टाइडों को एमीनो अम्लों में परिवर्तित कर देता है।

ये एमीनो अम्ल छोटी आँत के शोषणांकुरों द्वारा रक्त में शोषित हो जाते हैं, रक्त के सहारे एमीनो अम्ल शरीर की प्रत्येक कोशा में नाइट्रोजन एवं गन्धक ले जाते हैं। प्रत्येक कोशा को अपनी वृद्धि एवं मरम्मत के लिए जिस विशेष एमीनो अम्ल की आवश्यकता रहती है, उसे रक्त से ग्रहण कर लेता है।

E.P.H.

प्रश्न १३. यकृत (जिगर, Liver) की बनावट और उनके कार्यों का उल्लेख कीजिए।

उत्तर— यकृत की बनावट— यह शरीर की सबसे बड़ी गिल्टी है। इसका भार ३ से ४ पौंड तक होता है। यह उदर के दाहिनी ओर पाँचवीं पसली से १२वीं पसली तक फैला रहता है। इसके दो भाग होते हैं, बायाँ और दाहिना। इसका ऊपरी तल उन्नतोदर (Convex) होता है और इसका निचला तल अनियमित होता है। यह प्राचीरा (Diaphragm) के ठीक नीचे स्थित रहता है।

हेपाटिक धमनी इसमें उदरीय महाधमनी से शुद्ध रक्त लाती है।

इसमें पोर्टल शिरा (Portal vein), आमाशय, क्लोम आँतों एवं प्लीहा (Spleen) से शोषित भोजनयुक्त रक्त लाती है।

हेपाटिक शिरा यकृत से इन्फिरियर भेना काभा में रक्त ले जाती है।

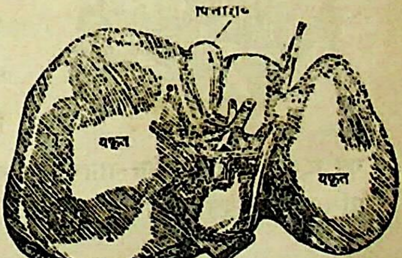
पित्त-नली यकृत से पित्ताशय में पित्त ले जाती है।

यकृत के काम—

(i) यह एक विकर के प्रभाव से भोजन से प्राप्त ग्लूकोज से ग्लाइकोजन (Glycogen) बनता है, जो यकृत की कोशाओं में जमा रहता है। जब तन्तुओं को ग्लूकोज की आवश्यकता होती है, तो अन्य विकर के प्रभाव से यह ग्लाइकोजन को पुनः ग्लूकोज में परिवर्तित कर देता है। इस तरह यह रक्त में चीनी की प्रतिशत मात्रा निश्चित रखने में साहाय्य प्रदान करता है।

(ii) यकृत की कोशाओं से निकला पित्त-रस पित्ताशय में जमा होता है, एवं वहाँ से पक्वाशय में जाकर भोजन के पाचन में मदद पहुँचाता है।

(iii) यह रक्त द्वारा शोषित एमीनो अम्लों से यूरिया बनाता है। यह यूरिया किडनी में रक्त से पृथक् होकर मूत्र के साथ निकल जाता है।



(iv) यकृत वसा को असंतृप्त बना कर उसके कार्बन-डायक्साइड एवं जल में विच्छेदन के लिए उसे तैयार करता है।

(v) आमाशय में उत्पन्न अनेमिया नाशक विकर को यह एकत्र करता है एवं उसे मज्जाओं में वितरित करता है। इसी कारण लावर-एक्स्ट्रैक्ट अनेमिया के उपचार में काम आता है।

(vi) यह शरीर के तापक्रम को नियंत्रित करता है। इसमें से बहने के बाद रक्त का तापक्रम बढ़ जाता है।

प्रश्न १४: क्लोम (Pancreas) की बनावट और उसके कार्यों का उल्लेख कीजिए।

क्लोम— यह आमाशय के नीचे पिस्तौल के शक्ल की एक गिल्टी है। इसका दाहिना सिरा मोटा और बायाँ पतला होता है। इसका दाहिना सिरा नली द्वारा पक्वाशय से मिला रहता है और बायाँ सिरा प्लीहा के पास रहता है।



कार्य— यह एक पाचक रस तैयार करता है जिसे क्लोम-रस कहते हैं। यह पतला, साफ तथा खारा होता है। पित्त को छोटे-छोटे कणों में बाँट देता है और क्लोम-रस में वर्त्तमान लाइपेज नामक खमीर के प्रभाव से चिकनई ग्लिसरीन और चिकनई के तेजाब में बदल जाता है। श्वेतसार का बचा हुआ भाग क्लोम-रस में वर्त्तमान अमाईलोप्सिन नामक खमीर के प्रभाव से शक्कर में बदल जाता है। प्रोटीन का बचा हुआ भाग क्लोम-रस में वर्त्तमान ट्रिप्सीन नामक खमीर के प्रभाव से पेप्टोन में तथा अमाइनो एसिड्स में बदल जाता है।

प्रश्न १५. क्लोम-रस की बनावट और उसके कार्यों का उल्लेख कीजिए।

उत्तर— क्लोम-रस की बनावट— क्लोम-रस 1·007 वि० गु० के स्वच्छ, क्षारीय तथा पतला द्रव है। इसमें निम्नलिखित पदार्थ पाये जाते हैं—

(i) सोडियम के बाइकार्बोनेट तथा क्लोराइड।

(ii) सोडियम, कैलसियम तथा मैगनीसियम के फास्फेट।

(iii) ट्रिप्सिन, एमाइलेज, लाइपेज, रेनिन तथा माल्टेज नाम के एनजाइम।

(iv) सामान्य मात्रा में जमने वाले (Coagulable) प्रोटीन।

क्लोम के कार्य—

(i) क्लोम-रस क्षारीय होने के कारण चाइम (Chyme) के अम्ल को विनाश (Neutralise) करता है एवं पक्वाशय में इसी से पाचन-क्रिया सम्भव है।

(ii) ट्रिप्सिन (Trypsin) मेटाप्रोटीन (Metaprotein) को मिनोएसिड (Amino acid) में बदल देता है।

(iii) पित्त-लवणों (Bilesalt) की उपस्थिति में एमाइलेज (Amylase) श्वेतसार (Starch) को माल्टोज (Maltose) में बदल देता है।

(iv) रेनिन (Renin) दूध को जमा देता (Curdles) है।

(v) माल्टेज (Maltose) माल्टोज को ग्लूकोज (Glucose) में बदल देता है।

(vi) लाइपेज (Lipase) वसा को फैटी एसिड (Fatty acid) तथा ग्लिसीरोल (Glycerol) में विश्लेषित कर देता है। इसकी क्रिया सोडियम, पोटासियम आदि की उपस्थिति में बढ़ जाती है, विशेषकर पित्त-लवण इसकी क्रिया को करीब चौदह गुना बढ़ा देते हैं।

प्रश्न १६. प्लीहा (Spleen) की बनावट और कार्य का वर्णन संक्षेप में कीजिए।

उत्तर—प्लीहा नीलापन लिये लाल रंग का अवयव है जो आमाशय तथा क्लोम की बांयीं ओर रहता है। उसका भीतर का भाग स्पंज की तरह नर्म रहता है। इसमें प्लैहिक धमनी द्वारा पर्याप्त रक्त पहुँचता रहता है और एक बड़ी प्लैहिक शिरा द्वारा गन्दा रक्त प्रतिहारिणी-शिरा में चला जाता है। यह शिरा उसे यकृत में पहुँचा देती है।

प्लीहा में श्वेत रक्त-कण बनते हैं और पुराने घिसे हुए लाल रक्त-कण इसके गूदे में उलझ कर रक्त से अलग हो जाते हैं तथा धीरे-धीरे टूट कर नष्ट हो जाते हैं। इस तरह प्लीहा श्वेत रक्त-कणों की जन्मभूमि और लाल रक्त-कणों

के लिए मृत्यु की जगह है। यह हमारे शरीर में विष-विरोधी तत्त्व पैदा करने के साथ-साथ लोहा, चर्बी आदि सुरक्षित रखने का भी काम करता है।

प्रश्न १७. मुँह की बनावट का वर्णन कीजिए तथा भोजन पचाने में उसके कार्यों का उल्लेख कीजिए।

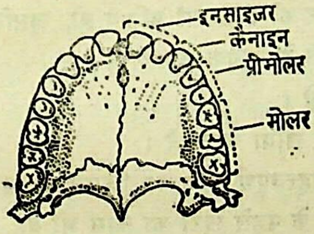
उत्तर—मुँह की बनावट—मुँह चेहरे का मुख्य द्वार है। इसी द्वारा भोजन पाचन-प्रणाली में प्रवेश पाता है। मुँह के अन्दर के ऊपर वाले हिस्से को तालू (Palate) और अगल-बगल वाले भाग को गाल कहते हैं। इसके नीचे वाले भाग में जीभ है। मुँह का काम भोजन को पचाने के उपयुक्त बनाना है। इसके अन्दर यांत्रिक और रासायनिक दोनों प्रकार की क्रियाएँ सम्पन्न होती हैं। (इनके अतिरिक्त मुँह ध्वनि-उत्पादन एवं स्वाद की पहचान भी करता है।) मुँह में ३२ दाँत हैं, १६ ऊपर और १६ नीचे। जब मुँह बन्द रहता है, तो दाँत पास-पास आ जाते हैं। मुँह का सम्बन्ध गले से है। गले के दोनों ओर दो ग्रन्थियाँ हैं, जिन्हें अँगरेजी में टांसिल (Tonsil) कहते हैं। मुँह और कंठ के बीच तालू का कोमल भाग फैला हुआ है। तालू के कोमल भाग को साफ्ट-पैलेट (Soft palate) कहते हैं। यह मुँह और नाक-मार्ग के बीच परदे का काम करता है। इसी के मध्य भाग में एक कोमल मांसल भाग लटका हुआ दिखाई पड़ता है। इसे घाँटी (Uvula) कहते हैं। गाल की ऊपरी सतह एक विशेष प्रकार की श्लैष्मिक कला द्वारा आच्छादित रहती है। ऐसी श्लैष्मिक कला में असंख्य नन्हीं-नन्हीं ग्रंथियाँ रहती हैं जिनसे एक विशेष प्रकार का स्राव (Mucus) निकलकर भोजन को तर रखता है तथा इसको निगलने में मदद देता है।

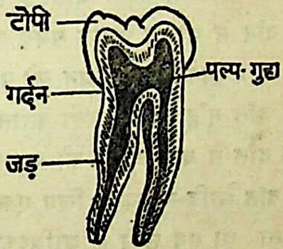
भोजन पचाने में मुँह का कार्य—भोजन पहले मुँह में जाता है। ज्योंही भोजन मुँह में पहुँचता है, त्योंही दाँत और जीभ दोनों अपना-अपना काम करने लगते हैं। दाँत उसे चबाकर चूर-चूर कर देता है। भोजन ज्यों-ज्यों दाँत से कुचलाता है त्यों-त्यों मुँह-स्थित लाला ग्रंथियों से लार निकलकर उसमें मिलता रहता है जिससे भोजन के श्वेतसार का कुछ भाग पच जाता है। जब

भोजन बारीक पिस कर मुलायम हो जाता है, तब जीभ के सहारे वह भोजन की नली में धकेल दिया जाता है।

प्रश्न १८. दाँत की बनावट और उसके कार्यों का वर्णन कीजिए।

उत्तर—दाँत दो प्रकार के होते हैं। एक दूध के और दूसरा स्थायी दाँत। बच्चे जब ६ महीने के होते हैं तब दूध वाले दाँत निकलने शुरू होते हैं और दो वर्ष तक सब निकल आते हैं। इनकी संख्या केवल २० होती है तथा इनकी जड़ नहीं होती। ६ वर्ष की उम्र से ये गिरने शुरू हो जाते हैं और तब स्थायी





दाँत निकलते हैं। स्थायी दाँत कुल मिलाकर ३२ होते हैं जिनमें १६ ऊपर के जबड़े में और १६ नीचे के जबड़े में होते हैं। ये सब दाँत तीन जाति के होते हैं—(i) जबड़े के मध्य में ऊपर और नीचे चार-चार दाँत होते हैं जो भोजन को काटते हैं और तोड़ते हैं। इन्हें Incisors अर्थात् कतरने वाले दाँत कहते हैं। कतरने वाले दाँतों के अगल-बगल में एक-एक कुकुर-दाँत (Canine) होते हैं और जो कड़ी चीजों को तोड़ने के काम में लाये जाते हैं। (ii) इनके अलावे दस-दस चौआ ऊपर-नीचे के प्रत्येक जबड़े में होते हैं। इनमें दो-दो जुड़े होते हैं तथा सतह चौरस होती है। इनमें चार-चार Premolars तथा छः-छः Molars कहलाते हैं। ये कुकुर-दाँत के पीछे रहते हैं। अन्तिम चार चौआ को अक्ल-चौआ कहते हैं।

दाँत की आन्तरिक बनावट—दाँत का वह भाग जो मसूड़े के ऊपर रहता है और जो दीख पड़ता है, दाँत की टोपी (Crown) कहलाता है। मसूड़े के बाहर वाले भाग को दाँत की गर्दन एवं मसूड़े के अन्दरवाले भाग को दाँत

की जड़ कहते हैं। दाँत के अन्दर पल्प गुहा (Pulp cavity) रहती है, जिसमें संयोजक तन्तु कोशाएँ (Connective tissue) रक्त-वाहिनियाँ (Blood vessels) एवं स्नायु (Nerves) रहते हैं। दाँत का वह भाग जो दीखता है, इनामेल नामक कठोर पदार्थ से ढका रहता है।

भोजन का चर्वण ऊपर और नीचे दाँतों के बीच भोजन को काटकर और पीसकर किया जाता है।

दाँत से लाभ— (i) दाँत भोजन को पीस देता है, जिससे पाचक रसों का प्रभाव अधिक शीघ्रता से हो जाता है।

(ii) दाँत से भोजन चबाते समय लार की गिल्टियाँ सक्रिय हो जाती हैं एवं उनसे लार निकलकर भोजन को पचने के लायक बनाता है।

(iii) दाँत मुँह की सुन्दरता बढ़ाता है।

(iv) दाँत से बड़ी चीजों को काटकर खाया जाता है।

(v) दाँत आदि-मनुष्य के लिए एक महत्त्वपूर्ण अस्त्र था, जिससे वह अपनी रक्षा करता था एवं छुरी के आविष्कार के पहले छुरी का काम भी वह दाँत से ही लेता था।

प्रश्न १६. संक्षेप में जिह्वा का वर्णन कीजिए। जिह्वा से हमें क्या लाभ है ? समझाकर लिखें।

उत्तर— जिह्वा स्वाद की विशेष इन्द्रिय है। यह दो प्रकार की मांसपेशियों से बनी है। जिह्वा के एक्सट्रिन्जिक (Extrinsic) मांसपेशी के द्वारा जीभ की वृहत् गति सम्भव है, यह गति चबाने और निगलने में मदद करती है। इंट्रिंजिक (Intrinsic) मांसपेशी के द्वारा जीभ की सूक्ष्म गति सम्भव है।

जिह्वा मुख-गुहा के निचले तल पर स्थिति है, इसके पिछले छोर से अनेक स्नायु (Nerves) आते-जाते हैं। इसका अग्रभाग निचले दाँतों के संसर्ग में रहता है। जीभ निकालने पर उसका छोर नुकीला रहता है, पर सामान्य स्थिति में वह चौड़ा एवं गोलाकार रहता है।

जिह्वा की श्लैष्मिक झिल्लियाँ नम एवं गुलाबी रंग की रहती हैं। जिह्वा

की ऊपरी सतह मखमली दीखती है। जिह्वा के किनारों पर स्वाद के स्नायुओं के छोर रहते हैं। जीभ के मध्य भाग में मुख्यतः स्पर्श के स्नायु रहते हैं।

स्वाद के चार ही सच्चे अनुभव हैं, मीठा, तीता, खट्टा एवं नमकीन। विभिन्न स्वाद के स्नायु जीभ के विभिन्न भागों में रहते हैं, जिह्वा के छोर पर मिठास का आभास होता है, आधार पर तीतेपन का, किनारे एवं बगल में खट्टेपन का। नमकीन स्वादों के स्नायु जिह्वा पर सर्वत्र फैले रहते हैं। संसर्ग में आने पर अपने स्वाद के अनुसार विभिन्न स्वादस्नायुओं को प्रेरित करता है, स्नायु इसकी सूचना मस्तिष्क को देते हैं, जिससे हम स्वाद का अनुभव करते हैं।

जिह्वा से लाभ—(क) भोजन को चबाते समय जिह्वा भोजन को दाँतों के बीच संचरित करती रहती है जिससे भोजन भली-भाँति पिसकर मुलायम हो जाता है।

(ख) जिह्वा दाँतों की भीतरी सतह को साफ और चिकना बनाये रखती है तथा मैल को दूर करती है।

(ग) जिह्वा की मदद से ही ध्वनि उत्पन्न होती है।

(घ) भोजन को निगलने में जिह्वा मदद देती है। भली-भाँति चबाया हुआ भोजन जीभ की निम्न गति द्वारा ही झटके से ग्रसनिका होते हुए भोजन की नली में प्रविष्ट हो जाता है।

प्रश्न २०. लार की बनावट एवं उसके कार्यों का वर्णन कीजिए।

उत्तर—लार की बनावट—

जल—९९·२ प्रतिशत,

खनिज लवण—०·५ प्रतिशत,

ऐन्द्रिक पदार्थ—०·३ प्रतिशत।

लार के कार्य—

(i) यांत्रिक—(क) लार से भोजन गीला हो जाता है जिससे यह सहज

ही गले के नीचे उतर जाता है। इस प्रकार लार भोजन को निगलने में सहायता देती है।

(ख) लार भोजन को मुलायम करती है जिससे सहज ही वह पिस जाता है।

(ग) लार घुलनशील पदार्थ को घुलाकर स्वाद का बोध कराती है।

(घ) मुँह को तर रखती है जिससे बोलने में सुविधा होती है।

(ii) रासायनिक—लार का सबसे मुख्य काम है भोजन को पचाना। लार में एक विशेष प्रकार का खमीर होता है जिसे 'टायलिन' (Ptyalin) कहते हैं। यह खमीर श्वेतसार-जातीय पदार्थों को पचाता है। टायलिन चावल, गेहूँ, मकई इत्यादि अनाजों में पाये जाने वाले अघुलनशील श्वेतसार को घुलनशील माल्टोज नामक घुलनशील शर्करा के रूप में बदल देता है। अघुलनशील श्वेतसार-जातीय पदार्थों को घुलनशील शर्करा के रूप में बदलना ही श्वेतसार का पचना कहलाता है। इस खमीर का प्रभाव प्रोटीन, वसा आदि पदार्थों पर नहीं पड़ता है।

प्रश्न २१. पित्त की बनावट और उसके कार्यों का संक्षिप्त विवरण दीजिए।

उत्तर – पित्त भूरापन लिये हरे रंग का एक द्रव है। यह यकृत द्वारा स्रावित होकर पित्ताशय में एकत्र होता है। यहाँ से पित्त नली (Bileduct) द्वारा पक्वाशय में चला जाता है। नली में अवरोध होने से यह रस रक्त में मिलने लगता है जिसके कारण व्यक्तिविशेष का चर्म और आँख पीली दिखाई पड़ने लगती हैं। पित्त की बनावट निम्नलिखित है—

पित्त की बनावट –

(i) जल	
(ii) घुलनशील पदार्थ—	.. ८४ प्रतिशत
पित्त का लवण	
म्यूसिन और पित्त का	.. १० ,,
कोलेसटेरॉल	.. ४ ,,
नमक	.. १·३ ,,
	.. ०·७ ,,
	१०० ,,

पित्त के कार्य—

(i) यह शरीर से कुछ पदार्थों को बाहर निकाल देता है (Excrete), जैसे—टाक्सिन (Toxins), अजैव लवण, रंग (Pigments) इत्यादि।

(ii) यह प्राकृतिक कीटाणुनाशक (Natural antiseptic) है तथा खाद्य पदार्थों को सड़ने से बचाता है।

(iii) यह क्षारीय होने के कारण आम्लिक चाइम (Acid chyme) को नाम्ल क्षारीय करता है तथा प्रोटीन के जो अंश पेप्टोन में नहीं बदले हैं उन्हें अवक्षेपित करता है। वसा को साबुन में परिवर्तित (Saponify) करता है। यह सतह के तनाव (Surface tension) को कम करता है एवं वसा को पचानेवाला एनजाइम (Enzyme) की क्रिया को चौदह गुना बढ़ा देता है।

(iv) यह पाचन-प्रणाली को संकुचित तथा प्रसारित होने (Peristalsis) के लिए उत्साहित करता है तथा आँत की प्रवेश्यता (Permeability) भेद्यता को बढ़ाता है।

(v) पक्वाशय (Duodenum) से सिक्रिटिन (Secretin) को रक्त पहुँचाता है तथा क्लोम को उत्तेजित (Stimulate) करता है।

(vi) यह शरीर-रक्षा-क्रिया (Defence mechanism of the body) में भाग लेता है (Choletsrol की सहायता से)।

प्रश्न २२. विभिन्न पाचक रसों के नाम, उनके उत्पादन-स्थान तथा उनकी प्रतिक्रिया का उल्लेख कीजिए।

उत्तर—

पाचक रस	उत्पादन-स्थान	प्रतिक्रिया
टायलीन	मुँह	श्वेतसार को शर्करा में बदलता है।
पेप्सिन	आमाशय	प्रोटीन को सरल रूप में भंजित करता है।
ट्रिप्सिन	क्लोम	प्रोटीन को भंजित कर एमीनो अम्ल में बदल देता है।

पाचक रस	उत्पादन-स्थान	प्रतिक्रिया
स्टिप्सिन	क्लोम	वसा को वसीय अम्ल और ग्लिसरीन में बदलता है।
एमीलोप्सिन		श्वेतसार को ग्लूकोज में परिणत करता है।
इरेप्सिन	छोटी आँत	पेपटिड एमीनो अम्ल में परिवर्तित होता है।
माल्टोज	"	शर्करा ग्लूकोज में बदल जाता है।
लैक्टोज	"	दुग्ध-शर्करा ग्लूकोज में परिणत होता है।
सुक्रेज	"	साधारण शर्करा ग्लूकोज में बदलता है।

अध्याय ६

रक्त-संचालन तंत्र

प्रश्न १. रक्त की बनावट पर प्रकाश डालिए।

उत्तर— रक्त में रक्त-वारि (Plasma) एवं रक्त-कण हैं। रक्त-वारि की रचना निम्नलिखित है—

जल	91%
प्रोटीन (इनमें फाइब्रीनोजेन नामक प्रोटीन भी सम्मिलित है; जो रक्त को जमने में मदद करता है)	8%
लवण	0 9%

शेष ग्लूकोज, वसा, यूरिया, यूरिक अम्ल, क्रिनटिनिन कोलेस्टोरॉल, एमीनो अम्ल, विकर (Enzymes), घुली हुई गैस इत्यादि।

रक्त-कण—ये तीन प्रकार के हैं — (क) लाल रक्त-कण, (ख) श्वेत रक्त-कण, (ग) थ्राम्बोसाइट या प्लेटलेट (Thrombocytes or Platelets), (घ) रक्त धूल (Blood Dust)।

प्रश्न २. रक्त के कार्यों का वर्णन कीजिए।

उत्तर — रक्त के निम्नलिखित कार्य हैं—

(i) लाल रक्त-कण हमारे शरीर के अंग-प्रत्यंगों में आक्सीजन पहुँचाता है और शरीर के विकार कार्बन-डायक्साइड को शरीर से बाहर निकालता है।

(ii) शरीर के अंग-प्रत्यंगों में भोजन पहुँचाता है जो शरीर के तापक्रम को ठीक रखता है तथा मांसपेशियों को काम करने की शक्ति प्रदान करता है।

(iii) शरीर के दूसरे विकारों जैसे लैकटिक तेजाब, यूरिया तथा लवण पसीना एवं पेशाब के साथ बाहर निकाल देता है।

(iv) समूचे शरीर में रक्त-भ्रमण कर शरीर का तापक्रम लगभग एक रखता है (37°C या 98·4°F)।

(v) श्वेत रक्त-कण शरीर को रोग उत्पन्न करनेवाले जीवाणुओं से बचाता है। इस क्रिया में कभी-कभी लाखों की संख्या में श्वेत रक्त-कण मर जाते हैं जिससे पीव तैयार हो जाता है।

(vi) खून का फाइब्रीनोजेन खून को जमने में मदद करता है जिससे हमारे शरीर की रक्षा होती है। यदि ऐसा न हो तो जरा-सी असावधानी से कहीं पर कट जाने पर हमारे शरीर का सारा खून निकल कर उसी रास्ते से बह जाता और हमारी मृत्यु हो जाती। पर ऐसा नहीं होता क्योंकि खून जम कर रास्ते को बन्द कर देता है।

(vii) ग्लिटियों के रसों को भिन्न-भिन्न स्थानों में पहुँचाकर नाना प्रकार के मुख्य काम करता है।

(viii) रक्त प्रोटीन एवं विकारों का वहन करता है और उन्हें शरीर के विभिन्न अंगों तक पहुंचाता है।

(ix) रक्त-वारि कार्बन-डायक्साइड को जो विकार के रूप में उत्पन्न होता है, फेफड़े तक पहुँचाता है जहाँ से वह बाहर निकल जाता है।

(x) रक्त शरीर के शोषण के लिए आवश्यक सभी पदार्थों का वहन करता है।

प्रश्न ३. रक्त-कणों की बनावट एवं उनके कार्यों का संक्षिप्त विवरण दीजिए।

उत्तर—रक्त-कण— ये तीन प्रकार के हैं—(क) लाल रक्त-कण, (ख) श्वेत रक्त-कण, (ग) थ्राम्बोसाइट या प्लेटलेट (Thrombocytes or Platelets)।

(क) लाल रक्त-कण— ये गोलाकार एवं न्यूक्लियसहीन रक्त-कोशाएँ हैं। इसके दोनों किनारे भीतर की ओर धंसे रहते हैं, जिससे यह चिपटा दीखता है। इसका रंग एक पिगमेंट के कारण है जिसे हेमोग्लोबीन कहते हैं। रासायनिक दृष्टिकोण से यह एक प्रोटीन ग्लोबीन है जो एक धात्विक पिगमेंट हेमाटीन के साथ संयुक्त है। इस पिगमेंट में लोहा उपस्थित है जिसके कारण रक्त को लाल रंग प्राप्त होता है।

लाल रक्त-कणों के कार्य— (i) मांसपेशियों द्वारा प्राप्त भोजन को सरल यौगिक बनाने में आक्सीजन की आवश्यकता होती है। भोजन-स्थित कार्बन और आक्सीजन के संयोग से ही शरीर में शक्ति और गर्मी उत्पन्न होती है। यदि कुछ समय के लिए रक्त को ऑक्सीजन मिलना बन्द हो जाय, तो यह शरीर काम करने में असमर्थ हो जाय। ऑक्सीजन का संवाहन लाल कणों के द्वारा ही होता है।

(ii) तन्तुओं से कार्बन-डाय-आक्साइड रक्त के लाल-कणों में प्रवेश कर कार्बोनिक अम्ल उत्पन्न करता है। रक्त के लाल कणों में उपस्थित पोटाशियम के लवणों के संयोग से पोटाशियम कार्बोनेट बनता है। फेफड़े में इसकी विपरीत

क्रिया होती है। फलतः कार्बन-डायआक्साइड मुक्त हो जाता है। इस प्रकार रक्त के लाल कण हमारे लिए उपयोगी हैं।

श्वेत रक्त-कण (White cells)— ये लाल-कणों की अपेक्षा संख्या में कम, पर आकार में बड़े होते हैं। प्रति घन मिलीमीटर में औसतन ८,००० श्वेत रक्त-कण रहते हैं।

श्वेत रक्त-कणों में प्रायः ७५% ग्रैनुलोसाइट (Granulosytes) नाम के कण रहते हैं। ये हड्डियों की लाल मज्जा में बनते हैं। इन कणों का जीव-द्रव्य (Protoplasm) दानेदार होता है और इसके न्यूक्लियस में कितने ही उभार होते हैं। इन कणों में अधिकतर न्यूट्रोफाइल (Nutrophile) नामक कण रहते हैं। अल्प संख्या में इयोसिनोफाइल (Eosinophile) नामक कण रहते हैं, जिनकी संख्या की वृद्धि शरीर के लिए हानिकारक है।

श्वेत रक्त-कणों में प्रायः २५% लिम्फोसाइट (Lymphocyte) नाम के कण रहते हैं, ये लिम्फ, प्लीहा एवं यकृत में निर्मित होते हैं। इनका जीव-द्रव्य दानेदार नहीं होता।

श्वेत रक्त-कणों के काम— (i) ग्रेनुलोसाइट में एमोबिक (Amoebic) गति है, जिसके कारण ये रक्त-वाहिनी (Blood vessel) से बाहर निकलकर शरीर के सभी भागों में जा सकते हैं। ये शरीर को कीटाणुओं से बचाते हैं। ये कीटाणुओं को खा जाते हैं। ये उन भागों पर एकत्र होते हैं, जहाँ चोट लगी है या जहाँ कीटाणुओं का आक्रमण हुआ है और कीटाणुओं को युद्ध में पराजित कर उन्हें खा जाते हैं। जब कीटाणुओं का आक्रमण प्रबल होता है, तो युद्ध में मृत कीटाणुओं एवं ग्रेनुलोसाइटों के जमा होने के कारण मवाद बनता है।

(ii) ग्रैनुलोसाइट घायल अंगों से धूल, लकड़ी आदि के टुकड़ों को सोख कर हटा देते हैं।

(iii) ये घायल-तन्तुओं को तोड़ कर हटा देते हैं एवं घाव भरने में मदद करते हैं।

(iv) लिम्फोसाइट कीटाणुओं से युद्ध नहीं करते, पर कुछ ऐसे पदार्थों का निर्माण करते हैं, जो रोगों से शरीर की रक्षा करता है।

(ग) थ्राम्बोसाइट या प्लेटलेट (Thrombocytes or Platelets)—इनका आकार लाल रक्त-कण की अपेक्षा तिहाई होता है। रक्त के प्रत्येक मिलीमीटर में प्राय: तीन लाख थ्राम्बोसाइट रहते हैं। ये रक्त के जमने में मदद करते हैं।

प्रश्न ४. रक्त कैसे जमता है ? समझाकर लिखें। रक्त का जमना कैसे रोका जा सकता है ? रक्त जमने से शरीर को क्या लाभ है ?

उत्तर—रक्त का जमना — जब रक्त बहता है, तो वह तेजी से गाढ़ा होता है और लाल रंग के जेल में जम जाता है। इस क्रिया को रक्त का जमना कहते हैं। यह जेल या क्लाट (Clot) सिकुड़ता है और हलके पीले रंग का द्रव्य, सीरम (Serum) इससे निकलता है।

रक्त में उपस्थित एक वीकर (Ferment) थ्राम्बीन के प्रभाव से रक्तवारि में उपस्थित फाइब्रीनोजेन रेशे बनाता है। इन रेशों में रक्त-कण उलझ जाते हैं एवं क्लाट की रचना करते हैं।

शरीर के अन्दर रक्त में थ्राम्बीन नहीं रहता है, पर वहाँ प्रोथ्राम्बीन नामक एक बीकर रहते हैं। जब थ्राम्बोसाइट नामक रक्त-कण आहत होते हैं, तो उनसे थ्राम्बोप्लास्टीन नामक पदार्थ निकलता है, जो प्रोथ्राम्बीन को कैलसियम लवणों की उपस्थिति में थ्राम्बीन में बदल देता है और रक्त का जमना सम्भव होता है।

रक्त के जमने के लिए निम्नलिखित की आवश्यकता होती है—

(i) रक्त में सामन्यत: उपस्थित कैलसियम लवण।

(ii) रक्त-कण के आहत होने की, जिससे थ्राम्बोप्लास्टीन मुक्त होता है।

(iii) थ्राम्बोप्लास्टीन की प्रोथ्राम्बीन पर क्रिया से बना हुआ थ्राम्बीन।

(iv) फाइब्रानोजेन पर थ्राम्बीन की क्रिया से बना हुआ फाइब्रीन।

इसी फाइब्रीन या रेशे में रक्त-कण उलझकर क्लाट की रचना करते हैं।

रक्त का जमना शरीर से अधिक तापक्रम पर, खुरदरी वस्तुओं (जैसे पट्टी)

के संसर्ग में अथवा रसायनों (जैसे फिटकिरी या फेरिक क्लोराइड) के प्रभाव से तीव्रता से होता है।

रक्त का जमना कैसे रोका जाता है ?— कृत्रिम रूप में रक्त का जमना मैगनीसियम के लवण मिलाकर या रक्त-पात्र को बर्फ में रख कर रोका जा सकता है। प्रायः रोगियों के शरीर में रक्त देने के लिए ताजे रक्त में सोडियम साइट्रेट का दो प्रतिशत घोल मिला दिया जाता है, जिससे रक्त का जमना बन्द हो जाता है। लेकिन, रक्त को जमने से रोकने का और तरीका यह है कि इसे फाइब्रिन से मुक्त कर दिया जाय।

रक्त जमने से शरीर को लाभ—

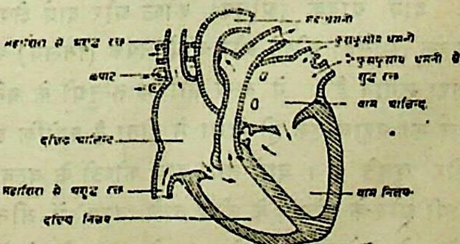
(i) रक्त का बहाव बन्द हो जाता है।

(ii) क्षत स्थान के सहारे रोगजनक कीटाणुओं का प्रवेश बन्द हो जाता है।

(iii) क्षत स्थान के कोशाओं के पुनर्निर्माण में सहायता मिलती है।

प्रश्न ५. मानव-हृदय का चित्र खींचकर उसकी बनावट और कार्यों का संक्षिप्त विवरण दीजिए। निलय (क्षेपक) कोष्ठ से रक्त लौटकर अलिन्द (ग्राहक) कोष्ठ में क्यों नहीं जाता ?

उत्तर— हृदय मांसपेशियों का बना एक अवयव है जो वक्ष में दोनों फेफड़ों के बीच स्थित रहता है। यह पान के आकार के थैले की तरह होता है। पूर्ण वयस्क व्यक्ति के हृदय की लम्बाई करीब ५ इंच और चौड़ाई ३½ इंच होती है। यह पम्प की तरह कार्य करता है और सिकुड़कर रक्त-नलिकाओं में रक्त भेजता रहता है। यह मांस के पर्दे



हृदय

द्वारा दो भागों में विभक्त रहता है। ऊपर तथा नीचे भाग में फिर दो-दो कोष्ठ होते हैं। ऊपर के दो कोष्ठों को बायाँ अलिन्द (Right and left auricles) और नीचे के दो कोष्ठों को दायाँ और बायाँ निलय (Right and left ventricles) कहते हैं। अलिन्द की दीवाल पतली और निलय की मोटी होती है। अलिन्द तथा निलय के बीच के छिद्रों पर कपाट रहता है जो रक्त को सिर्फ अलिन्द से निलय में जाने देता है पर निलय से अलिन्द में लौटने नहीं देता। अलिन्द कोष्ठ को ग्राहक कोष्ठ और निलय कोष्ठ को क्षेपक कोष्ठ भी कहते हैं।

ग्राहक (अलिंद) कोष्ठों का काम है रक्त को ग्रहण करना और क्षेपक (निलय) कोष्ठों का काम है रक्त को बाहर निकालना। कार्य-भेद के अनुसार इसकी बनावट में भेद है। ग्राहक (अलिंद) कोष्ठों की दीवारें अपेक्षाकृत पतली होती हैं चूंकि इन्हें केवल नीचे के क्षेपक (निलय) कोष्ठों में रक्त भेजना है। बायें ग्राहक (अलिंद) और बायें क्षेपक (निलय) कोष्ठों की दीवारों की मुटाई समान नहीं है।

साधारणतया बायें क्षेपक कोष्ठों की दीवारें दायें क्षेपक (निलय) कोष्ठों की दीवारों की अपेक्षा दुगुनी-तिगुनी मोटी होती है, चूंकि इसे सारे शरीर में रक्त भेजना है। दायें क्षेपक कोष्ठ की दीवारें पतली हैं तथा कम मजबूत हैं क्योंकि इन्हें केवल फेफड़ों में ही रक्त भेजना है।

दायें ग्राहक (अलिंद) कोष्ठ और दायें क्षेपक (निलय) कोष्ठों तथा बायें ग्राहक (अलिंद) कोष्ठ और बायें क्षेपक (निलय) कोष्ठों के बीच वल्व (Valve) द्वारा लगाव है। ये वल्व सौत्रिक तन्तुओं के बने अंग हैं। 'वल्व' के कारण रक्त का बहाव एक ही दिशा में होता है क्योंकि इन वल्वों के कपाट एक ही ओर खुलते हैं। बायें तथा दायें कोष्ठों के वल्व की आकृति समान नहीं है। दायीं ओर के कोष्ठों के बीच वाले 'वल्व' में तीन कपाट हैं, लेकिन बायीं ओर के कोष्ठों के बीच वाले वल्व में दो हैं। सौत्रिक बन्धनों द्वारा इन 'वल्वों' के कपाट क्षेपक कोष्ठों की दीवारों से इस तरह बँधे हैं कि कपाट विपरीत दिशा में नहीं खुल सकते हैं। ग्राहक कोष्ठों के सिकुड़ने से वल्व

कपाट अलग-अलग हो जाते हैं और रक्त-सहज ही क्षेपक (निलय) कोष्ठों में उतर आता है। पुनः क्षेपक (निलय) कोष्ठों के सिकुड़ने से इनके भीतर के रक्त का दबाव बढ़ जाता है। फलत: वल्व के कपाट ऊपर उठकर आपस में मिल जाते हैं जिससे रक्त अलिन्द (ग्राहक) कोष्ठों में निलय (क्षेपक) कोष्ठों से नहीं लौट पाता बल्कि हृदय के बाहर ढकेल दिया जाता है।

प्रश्न ६. रक्त-संचालन में कौन-कौन अंग भाग लेते हैं ? प्रत्येक का संक्षिप्त विवरण दीजिए।

उत्तर – रक्त-संचालन में निम्नलिखित अंग भाग लेते हैं—(क) हृदय, (ख) धमनियाँ, (ग) शिराएँ और (घ) केशिकाएँ। इन अंगों में खून का दबाव भिन्न-भिन्न होता है जिसके फलस्वरूप खून एक जगह से दूसरी जगह दौड़ता है।

(क) हृदय— पाँचवें प्रश्न का उत्तर देखें।

(ख) धमनियाँ (Arterics)— हृदय के रक्त को फेफड़ों या शरीर के अन्य अंगों में ले जानेवाली मुख्य नलियों को धमनी कहते हैं। बायें क्षेपक कोष्ठ से महाधमनी का आरम्भ होता है। इसकी कई शाखाएँ एवं प्रशाखाएँ हैं। इनका आकार नली की तरह होता है।

(ग) शिराएँ (Veins)— हृदय में या उसकी ओर रक्त ले जानेवाली नलियों को शिराएँ (Veins) कहते हैं। धमनियों-जैसी ये भी नलिकाकार हैं, लेकिन उनकी अपेक्षा इनकी दीवारों में कम पेशियाँ होती हैं। अतः ये अधिक पतली तथा कमजोर होती हैं।

(घ) केशिकाएँ (Capillaries)— केशिकाएँ बाल से भी बारीक हैं। इनकी औसत मोटाई और लम्बाई क्रमशः १/३२०० इंच और १/५ इंच हैं। इसकी नली का व्यास रक्त के लाल-कणों के व्यास से थोड़ा ही अधिक होता है जिससे ये सहज ही एक पंक्ति में उसके द्वारा प्रवाहित हो पाते हैं। ये तन्तुओं में जाल-जैसी फली हुई हैं। शरीर के किसी भाग में सूई चुभाने से रक्त निकलने लगता है। इससे यह प्रत्यक्ष है कि ये शरीर के प्रायः सभी भागों में

फैली हुई है। इन्हीं के द्वारा रक्त और तन्तुओं के बीच जीवनोपयोगी द्रव्यों का आदान-प्रदान होता है।

(च) महाधमनी (Aorta)— महाधमनी स्वाधीन पेशियों की बनी एक नली है। यह करीब एक इंच मोटी है। इसकी दीवार की औसत मोटाई एक इंच के आठवें भाग के लगभग है। दीवार दृढ़ और लचीली होती है, फलतः दबाव पड़ने पर यह फैल जाती है और दबाव के हटते ही अपनी पुनर्वस्था में आ जाती है। धमनी की दीवार का यह गुण रक्त के प्रवाह को धमनियों के अन्त तक ले जाने में सहायता देता है।

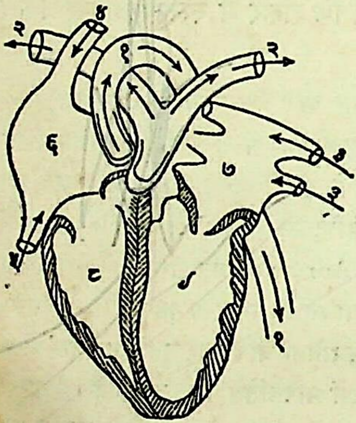
नोट— यह स्मरण रखना चाहिए कि धमनियों में शुद्ध रक्त प्रवाहित होता है और शिराओं में ऑक्सीजन अशुद्ध रक्त।

प्रश्न ७. धमनी और शिरा में क्या अन्तर है?

उत्तर — धमनी (Artery)	शिरा (Vein)
(i) शुद्ध रक्त हृदय से शरीर के तन्तुओं तक ले जाती है। अपवाद — फुसफुसीय धमनी।	(i) तन्तुओं से अशुद्ध रक्त हृदय में लाती है। अपवाद— फुसफुसीय शिरा।
(ii) धमनी में रक्त का प्रवाह हृदय से तन्तु की ओर होता है।	(ii) शिरा में रक्त प्रवाह तन्तु से हृदय की ओर होता है।
(iii) धमनी की दीवार मोटी और लचीली होती है।	(iii) शिरा की दीवार पतली होती है।
(iv) धमनी की दीवार पर रक्त-चाप अधिक होता अर्थात् रक्त वेग से बहता है।	(iv) शिरा की दीवार पर रक्त-चाप कम होता है। अतः रक्त बहुत धीमे बहता है।
(v) धमनी में कपाट (Valve) नहीं लगे रहते हैं।	(v) शिरा में जगह-जगह पर कपाट लगे रहते हैं जिससे रक्त का प्रवाह उलटी दिशा में नहीं हो सकती।

प्रश्न ८. चित्र के सहारे यह बतावें कि शरीर में रक्त-संचालन किस प्रकार होता है ?

उत्तर — रक्त-संचालन में निम्नलिखित चार अंग मुख्यतः भाग लेते हैं — दिल, धमनियाँ, शिराएँ और केशिकाएँ। इन अंगों में खून का दबाव भिन्न-भिन्न होता है जिसके फलस्वरूप खून एक जगह से दूसरी जगह दौड़ता है। खून का दौरान हृदय से आरम्भ होता है। बायें वेण्ट्रिकल (Left ventricle) से रक्त अर्द्धचन्द्राकार कपाट होकर एओरटा (Aorta) या महाधमनी में जाता है। महाधमनी अनेक छोटे धमनियों में विभाजित होकर रक्त को शरीर के भिन्न-भिन्न भागों तक ले जाती है। ये लघु धमनियाँ बार-बार पुनर्विभाजित होती हुई अन्त में केशिकाओं (Capillaries) में परिवर्तित हो जाती हैं। इन्हीं केशिकाओं से आक्सीजन-युक्त रक्त अपना आक्सीजन तन्तुओं को दे देता है एवं कार्बन-डायक्साइड ग्रहण करता है। ये केशिकाएँ पुनः संगठित होकर लघु शिराओं (Veins) की रचना करती हैं। ये शिराएँ क्रम से आपस में मिलती हुई रक्त को दो महाशिराओं में ले जाती हैं। सुपीरियर भेना-काभा (Superior vena cava) नामक महाशिरा मस्तिष्क एवं शरीर के ऊपरी भागों से अशुद्ध रक्त एकत्र करती है एवं इनफीरियर भेना-काभा (Inferior vena cava) नामक महाशिरा धड़ एवं शरीर के निम्न भागों से अशुद्ध रक्त एकत्र करती है। ये महाशिराएँ अशुद्ध रक्त को दाहिने आरिकल (Right auricle) में ले जाती हैं। दाहिना आरिकल अशुद्ध रक्त को त्रिकपाट (Tricuspid valve) से होकर दाहिने वेण्ट्रिकल में जमा करता है। दाहिने वेण्ट्रिकल के सिकुड़ने से रक्त अर्द्धचन्द्राकार कपाट (Semilunar valve) से होकर पलमोनरी धमनी (Pulmonary artery) में जाता है। यह धमनी रक्त को फेफड़ों में ले जाती है। प्रत्येक फफड़ों में पलमोनरी धमनी अनेक लघु धमनियों में और अन्त में केशिकाओं में विभाजित हो जाती हैं। इन केशिकाओं से रक्त में उपस्थित विकार कार्बन-डायक्साइड निकल जाता है और रक्त आक्सीजन ग्रहण कर लेता है।



१. एओरटा महाधमनी,

२. पलमोनरी धमनियाँ,

३. पलमोनरी शिराएँ,

४. सुपीरियर भेना-काभा,

५. इनफीरियर भेना-काभा,

६. दाहिना आरिकल (अलिन्द),

७. बायाँ आरिकल (अलिन्द),

८. दाहिना वेण्ट्रिकल (निलय),

९. बायाँ वेण्ट्रिकल (निलय),

६ और ८ के बीच त्रिकपाट,

८ और २ के बीच अर्द्धचन्द्राकार कपाट,

९ और १० के बीच अर्द्धचन्द्राकार कपाट,

७ और ९ के बीच माइट्रल कपाट।

ये धमनियाँ फेफड़े की केशिकाओं में संगठित होकर रक्त को शिराओं (Veins) में एकत्र करती हैं; यह रक्त पलमोनरी शिराओं से होकर बायें आरिकल में आता है। बायें आरिकल के सिकुड़ने पर यह रक्त माइट्रल कपाट (Mitral valve) होकर बायें वेण्ट्रिकल में जाता है जिसके सिकुड़ने पर रक्त पुनः अर्द्धचन्द्राकार कपाट से होकर एओरटा में चला जाता है।

यही रक्त-संचालन का पूर्ण विवरण है।

(स्मरणीय— धमनियों में शुद्ध रक्त प्रवाहित होता है, पर पलमोनरी धमनियों में अशुद्ध रक्त बहता है। शिराओं में अशुद्ध रक्त प्रवाहित होता है, पर पलमोनरी शिरा में शुद्ध रक्त बहता है।)

अध्याय ७

श्वसन तंत्र

प्रश्न १. श्वसन क्रिया की क्या आवश्यकता है ? साँस लेना तथा साँस छोड़ना क्यों आवश्यक है ?

उत्तर— शरीर को शक्ति प्रदान करने तथा शरीर के तापमान को संतुलित रखने के लिए शरीर के तन्तु कुछ आहार के पदार्थ जैसे श्वेतसार, वसाएँ और चिकनई को जलाते हैं। इन आहारों की पाचन क्रिया को पूर्ण करने के लिए आक्सीजन आवश्यक है। यह आक्सीजन लाल रक्त-कण से मिलता है। अब इस भीतरी आक्सीजन-क्रिया का फल यह होता है कि कार्बन-डायक्साइड खून से मिलता है और उसे अशुद्ध कर देता है। इस खून को साफ करना आवश्यक है जो उस आक्साजन द्वारा पूरा होता है तथा आक्सीजन भीतरी श्वसन-क्रिया द्वारा फेफड़ा में आता है।

शरीर से बाहर जानेवाली हवा खून के विकार कार्बन-डायक्साइड को दूर कर देता है। यह शरीर के लिए हानिकारक होता है। अतएव साँस छोड़ना भी बहुत आवश्यक है। शरीर से गर्मी निकलते रहना भी आवश्यक है। साँस के साथ शरीर की गर्मी भी दूर होती रहती है।

शरीर के अन्दर जानेवाली हवा खून में आक्सीजन पहुँचाती है और खून अपनी दौरान से आक्सीजन को शरीर के अंग-प्रत्यंग में पहुँचाती है। आक्सीजन के बिना तथा मांसपेशियों की गति के बिना शरीर का कोई अंग काम नहीं कर सकता। अतएव, साँस लेना बहुत आवश्यक है।

प्रश्न २. श्वास-प्रश्वास के अवयवों के नाम लिखिए और प्रत्येक के महत्त्व का संक्षेप में वर्णन कीजिए।

उत्तर— श्वास-संस्थान में निम्नलिखित अंग सम्मिलित हैं—

(क) नाक, (ख) कण्ठ, (ग) स्वर-यन्त्र, (घ) टेंटुआ, (ङ) हवा की नली, (च) फेफड़ा।

विभिन्न अंगों के महत्त्व—

(क) नाक— नाक की श्लैष्मिक झिल्लियाँ हवा को गर्म करती हैं और नाक के बाल हवा को अवलम्बित ठोस कणों से मुक्त करते हैं।

(ख) कंठ— स्वर-यंत्र एवं निगाल के साथ सम्बन्ध रखता है।

(ग) स्वर-यन्त्र— इसका मुख्य काम स्वर-उत्पादन है। श्वास-प्रश्वास क्रिया में इसका महत्त्व है, निगलते समय यन्त्रच्छद को खड़ाकर भोजन को वायु-प्रणाली में जाने से बचाने का काम करने में।

(घ) टेंटुआ— यह हवा को स्वर-यन्त्र से हवा की नली तक ले जाता है।

(ङ) हवा की नलियाँ— ये हवा को टेंटुआ से फेफड़ों तक ले जाती हैं। इसकी दीवारों पर की श्लैष्मिक झिल्ली तर रहती है। उसपर अनेक छोटे-छोटे उभार रहते हैं, जो नाक से बचे ठोस कणों को रोक लेते हैं और उन्हें फेफड़ों में नहीं जाने देते हैं।

(च) फेफड़े— ये श्वास-संस्थान के सबसे महत्त्वपूर्ण अवयव हैं। इसमें श्वास-नली अनेकानेक सूक्ष्म-शाखाओं में बँट जाती है, और प्रत्येक शाखा के सिरे पर हवा की थैलियों के दो गुच्छे रहते हैं। इन थैलियों की दीवारें अत्यन्त पतली रहती हैं एवं इन्हीं दीवारों में पलमोनरी धमनी की केशिकाएँ फैली रहती हैं। इस पतली दीवार से गैस भीतर-बाहर आ-जा सकता है। इस प्रकार वायु के संसर्ग में आने के कारण रक्त आक्सीजन ग्रहण करता है और कार्बन-डायक्साइड का त्याग करता है। इस प्रकार फेफड़े रक्त में आक्सीजन प्रदान करने और उससे कार्बन-डायक्साइड निकालने का काम करते हैं।

प्रश्न ३. श्वास से जानेवाली हवा तथा श्वास से बाहर आनेवाली हवा में क्या अन्तर है? दोनों एक-दूसरे से क्यों भिन्न रहती हैं?

उत्तर—

	उच्छ्वास (साँस ली हुई हवा)	प्रश्वास (साँस द्वारा बाहर निकाली हुई हवा)
आक्सीजन	२०·९६ प्रतिशत	१६·४ प्रतिशत
नाइट्रोजन	७९·०० ,,	७९·५ ,,
कार्बन-डायआक्साइड	०·०४ ,,	४·१ ,,
जल-वाष्प	अनिश्चित मात्रा	कुछ अधिक
तापमान	,,	३९·९ सें०
ऐन्द्रिक पदार्थ	लेश-मात्र	लेश-मात्र

साँस से बाहर आनेवाली हवा अन्दर जानेवाली हवा से क्यों भिन्न रहती है— हमारे फेफड़ों में रक्त वायुमण्डल से खींची गयी हवा से आक्सीजन ग्रहण करता है, एवं अपने विकार कार्बन-डायक्साइड का त्याग करता है, फलस्वरूप बाहर जानेवाली हवा में ऑक्सीजन की मात्रा घट जाती है एवं कार्बन-डायक्साइड की मात्रा बढ़ जाती है।

शरीर के अन्दर जाने पर हवा बराबर नमी के संपर्क में रहती है, जिससे वह नमी से संतृप्त हो जाती है, फलस्वरूप बाहर निकलनेवाली हवा नमी से संतृप्त रहती है, जब कि भीतर जानेवाली हवा साधारणतः नमी से संतृप्त नहीं रहती है।

प्रश्न ४. साँस लेने की क्रिया का वर्णन कीजिए।

उत्तर— फेफड़ों के अन्दर हवा का जाना और फिर बाहर निकलना ही

साँस की क्रिया है। इस काम में पसलियाँ तथा महाप्राचीरा मुख्य भाग लेते हैं। पसलियाँ तथा महाप्राचीरा के सिकुड़ने से छाती का गड्ढा (Chest cavity) बड़ा हो जाता है, जिससे फेफड़े फूल जाते हैं। फेफड़ों के फूलने से वहाँ पर हवा का दबाव वायुमण्डल की हवा के दबाव की अपेक्षा कम हो जाता है और इसलिए बाहर से हवा नाक के नथुनों द्वारा फेफड़ों में प्रवेश कर जाती है। फिर, तुरन्त ही महाप्राचीरा तथा पसलियाँ फैलने लगती हैं जिसके फलस्वरूप छाती का गड्ढा कम हो जाता है और फेफड़े सिकुड़ जाते हैं। फेफड़े के सिकुड़ने से साँस ली हुई हवा का दबाव वायुमण्डल की हवा की अपेक्षा बढ़ जाता है और इसलिए फेफड़ों की हवा नाक के नथुनों द्वारा बाहर निकलने में समर्थ होती है। साँस लेना और साँस फेंकना इसी प्रकार होता है।

फेफड़ों में घुसते ही प्रत्येक हवा की कई छोटी शाखाएँ हो जाती हैं जिन्हें श्वास की नली कहते हैं। इन नलियों में हवा के फूले-फूले थैले लगे रहते हैं और हर थैले में छोटी-छोटी कोठरियाँ होती हैं जो असंख्य रक्त-नलियों से लगी रहती हैं। इन छोटी-छोटी रक्त-नलियों तथा कोठरियों की दीवारें इतनी पतली रहती हैं कि इनमें से गैस आ-जा सकती हैं। श्वास से ली हुई शुद्ध हवा, जिसमें आक्सीजन की मात्रा अधिक रहती है, वह केशिकाओं के अन्दर खून को साफ और लाल करते हुए फेफड़ों की शिराओं द्वारा दिल के बायें ग्राहक कोष्ठ में पहुँचती है। इसी समय खून से कार्बन डायक्साइड निकलकर श्वास की हवा में मिल जाता है। ये दोनों काम खून के रक्त-कण करते हैं।



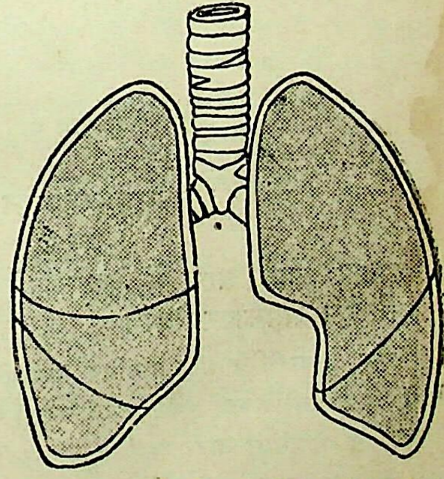
आच्छादक तन्तु

श्वसन-क्रिया दो तरह की होती है—(१) बाहरी श्वसन-क्रिया, (२) भीतरी श्वसन-क्रिया। फेफड़ों में आक्सीजन का खून से मिलना तथा खून से फेफड़ों की हवा में कार्बन-डायक्साइड के जाने को बाहरी श्वसन-क्रिया कहते

हैं। भीतरी अवयवों में खून का कार्बन-डायक्साइड लेना तथा अवयवों को आक्सीजन देने को भीतरी श्वसन-क्रिया कहते हैं।

प्रश्न ५. फेफड़े का सचित्र वर्णन कीजिए।

उत्तर— फेफड़े श्वसन-संस्थान के सबसे महत्त्वपूर्ण अवयव हैं। इनकी संख्या दो हैं, एक छाती की बायीं ओर और दूसरी दायीं ओर स्थित है। ये ऊपर से देखने में चमकीले और चिकने मालूम पड़ते हैं लेकिन वास्तव में ये स्पंज-जैसे होते हैं। दाहिने फुसफुस के आकार बायें फुसफुस के आकार से कुछ भिन्न है। दाहिने फुसफुस में तीन खण्ड रहते हैं जब कि बायें फुसफुस में केवल दो (चित्र देखें)। प्रत्येक खण्ड के लिए स्वतंत्र रूप से रक्त तथा वायु के आने-जाने का प्रबन्ध है। फेफड़े दोहरी श्लैष्मिक झिल्ली (Pleural membrane) द्वारा पूर्णतया आवेष्टित रहते हैं। झिल्ली की एक तह फेफड़े की ऊपरी सतह से और दूसरी तह वक्षस्थल की भीतरी दीवाल से लगी रहती है।



इस झिल्ली को फेफड़ों का वाह्यावरण कहते हैं। इसमें से एक प्रकार का स्राव निकलता है, जो दोनों तहों के बीच की सतह को तर रखता है। तर रहने के कारण घर्षण कम हो जाता है और फेफड़ों का प्रसार और संकुचन सुगमता से हो जाता है। बचपन में फेफड़ा हलका गुलाबी रंग का होता है लेकिन वृद्धावस्था पहुँचते पहुँचते यह धूसर रंग का हो जाता है। कोयले का खानों में काम करनेवालों का फेफड़ा लाल-सियाही रंग का हो जाता है।

फुसफुसों में श्वास-नलियाँ अनेक अत्यन्त सूक्ष्म शाखाओं में बँट जाती हैं और प्रत्येक शाखा के सिरे पर वायु-थैलियों के गुच्छे रहते हैं। इन थैलियों की दीवारें अत्यन्त पतली रहती हैं एवं इन्हीं दीवारों में पलमोनरी धमनी की कोशिकाएँ फैली रहती हैं। इस पतली दीवार से गैस भीतर-बाहर आ-जा सकती है। फुसफुस में खींचे गये वायु के संसर्ग में आने के कारण रक्त ऑक्सीजन ग्रहण करता है और कार्बन डायक्साइड का त्याग करता है। इस प्रकार फुसफुस रक्त में ऑक्सीजन प्रदान करने और उससे कार्बन-डायक्साइड निकालने का काम करते हैं।

अध्याय ८

मल-मूत्र-उत्सर्जन तंत्र

प्रश्न १. हमारे शरीर में विकार कैसे उत्पन्न होते हैं और कैसे निकलते हैं। समझाकर लिखें।

उत्तर— शारीरिक और मानसिक क्रियाओं के फलस्वरूप हमारे शरीर के तंतुओं की कुछ कोशिकाएँ हमेशा टूटती-फूटती रहती हैं। टूटी-फूटी कोशिकाओं की मरम्मत भी हमेशा जारी रहती है और नयी कोशिकाएँ भी हमेशा बनती रहती हैं। इस तरह हमारे शरीर में प्रत्येक समय कई तरह की क्रियाएँ होते रहती हैं। इन्हीं क्रियाओं की सिद्धि के लिए हमें भोजन की आवश्यकता होती है। भोजन से शक्ति तथा गर्मी की उत्पत्ति होती है पर साथ-ही-साथ भोजन के मन्द दहन और कोशिकाओं के विनाश से हमारे शरीर में विकार भी उत्पन्न होते हैं जिनका शरीर से निकल जाना आवश्यक होता है। यदि इनका त्याग नहीं होता तो उससे शरीर के रोगग्रस्त हो जाने की सम्भावना रहती

है। इन विकारों में कुछ ठोस, कुछ द्रव और कुछ गैसों के रूप में होते हैं। भोजन के रूप में जो पदार्थ हम ग्रहण करते हैं उनके पच जाने के बाद उनका अवशिष्ट भाग ठोस मल के रूप में बाहर निकल जाता है।

इसी तरह शरीर में एकत्र हुए कार्बन डायक्साइड जैसे विषैले पदार्थों का भी शरीर से निकालना जरूरी है। इसे हम उच्छ्वास द्वारा शरीर से बाहर निकालते हैं।

शरीर में ऐसे ही अन्य बहुत-से पदार्थ बनते हैं। प्रोटीन जातीय पचे हुए पदार्थों के विघटन से यूरिया, यूरिक अम्ल आदि वर्ज्य पदार्थ शरीर में उत्पन्न होते हैं। सभी स्तनपायी जीवों में इन पदार्थों को शरीर से बाहर निकालने के लिए एक विशेष प्रणाली है। इसमें वृक्क एक फिल्टर का काम करता है। यह रक्त में घुले हुए यूरिया, यूरिक अम्ल और घुले हुए लवणों को छान कर मूत्र के साथ निकाल देता है। अतएव मूत्र बनाना वृक्क का काम है। वृक्क में इस प्रकार के अंग बनाये गये हैं कि वे रक्त से जल को और यूरिया आदि विषैले पदार्थों को सोख लेते हैं और शरीर से बाहर निकाल देते हैं।

प्रश्न २. विकार-वाहक अंगों के नाम लिखिये और उनका संक्षिप्त परिचय दीजिए।

अथवा

शरीर से दूषित पदार्थ निकालने के कौन-कौन अंग हैं? प्रत्येक का संक्षिप्त विवरण दीजिए।

उत्तर—हमारे शरीर में विकार-वाहक अंग निम्नलिखित हैं—(i) गुर्दे या वृक्क (Kidney), (ii) फेफड़ा (Lungs), (iii) चर्म या त्वचा (Skin), (iv) बड़ी आंत (Large Intestine), और (v) ग्रन्थियाँ (Glands)।

(i) वृक्क (Kidney)— इसका काम शरीर के खून को साफ करना है। ये दो हैं—एक दाहिना और दूसरा बायां। ये रीढ़ के दाहिनी और बायीं ओर सबसे अन्तिम पसलियों के सामने रहते हैं।

(ii) फेफड़ा— (Lungs) फेफड़ों के द्वारा कार्बन डायक्साइड रक्त से बाहर निकलता है। फेफड़े दो हैं— बायाँ और दायाँ। छाती का लगभग तीन-चौथाई भाग फेफड़े से घिरा रहता है।

(iii) चर्म (Skin)— चर्म के द्वारा पसीना बाहर निकलते हैं।

(iv) बड़ी आँत (Large intestine)— बड़ी आँत के द्वारा मल शरीर से बाहर निकलता है।

नोट— इन चारों के अतिरिक्त कान, नाक और आँख से भी विकार दूर होते हैं।

E.P.H.

प्रश्न ३. वृक्क (Kidney, गुर्दे) की बनावट और उसके कार्यों का वर्णन कीजिए।

उत्तर— कमर के मोहरे की दोनों ओर सबसे निचली पसली के सामने एक-एक वृक्क हैं। इनका रंग भूरा होता है। ये आमाशय की पिछली दीवारों के संसर्ग में हैं। इनके चारों ओर विशेष कर आगे-पीछे चर्बी रहती है। ये ४ इंच लम्बे, २½ इंच चौड़े और १ इंच मोटे होते हैं। इनका आकार सेम के बीज की तरह होता है। ये बाहर की ओर उभरे होते हैं। इनका भीतरी हिस्सा बीच में दबा रहता है। इसी दबे हुए हिस्से से धमनी इनके अन्दर जाती है और यहीं से शिरायें एवं मूत्रवाहक नलियाँ बाहर निकलती हैं।



वृक्क के चारों ओर एक रेशेदार आवरण होता है, जिसका रंग काला होता है। इसके अन्दर गाढ़े गुलाबी रंग का वृक्क का मध्यस्थ भाग रहता है। इसमें अनेक नालियाँ रहती हैं, जो मिल कर मीनार के आकार की रचना

बनाती हैं। वृक्क की मीनारों की संख्या १५ से १६ तक रहती है। वृक्क की नलियाँ रक्त-केशिकाओं से घिरी रहती हैं।

वृक्क का कार्य—वृक्क का मुख्य काम रक्त का शुद्धीकरण है। यद्यपि वृक्क से निकलने वाला रक्त शिराओं में बहता है तथापि यह शरीर का सबसे शुद्ध रक्त होता है, क्योंकि इससे शरीर के तन्तुओं की टूट-फूट से होने वाले सभी विकार हटा लिये गये होते हैं। धमनी से अशुद्ध खून गुर्दे में जाता है। गुर्दे में पेशाब खून से अलग होकर पेशाब की नली में चला जाता है और पेशाबरहित खून शिराओं से गुर्दे में चला जाता है। पेशाब की नली से होकर पेशाब धीरे-धीरे मूत्राशय में इकट्ठा होता है। मूत्राशय जब भर जाता है तब यह सिकुड़ता है और इसका मुँह खुल जाता है और पेशाब बाहर चला जाता है। पेशाब में करीब ९८ प्रतिशत पानी, कुछ यूरिया और यूरिक एसिड रहता है।

वृक्क के मुख्य कार्य निम्नलिखित हैं—

(i) व्यर्थ प्रोटीन का उत्सर्जन—वृक्क रक्त से यूरिया, यूरिक अम्ल, क्रिएटिनीन एवं प्यूरिन यौगिकों को हटाकर मूत्र के द्वारा शरीर के बाहर भेज देता है।

(ii) आवश्यकता से अधिक लवण को हटाना—रक्त में लवण की मात्रा ०·६% होनी चाहिए। जब लवण की मात्रा इससे अधिक हो जाती है, तो वृक्क उसे रक्त से हटाकर उसकी मात्रा ०·६% बना देता है। जब लवण की मात्रा इससे कम हो जाती है, तो वृक्क रक्त से अधिक जल हटाकर रक्त में लवण का समाहरण बढ़ा देता है।

(iii) रक्त से अम्लों को हटाना—वृक्क रक्त से अम्लों को हटा देता है। रक्त साधारणतः क्षारीय होता है, पर वृक्क में खराबी आ जाने पर रक्त से अम्ल नहीं हटते और रक्त का क्षारीय गुण क्षीण हो जाता है, जिससे शरीर में अनेक प्रकार के रोग हो जाते हैं।

(iv) रक्त में जल की मात्रा नियंत्रित करना—वृक्क रक्त से आवश्यकता से अधिक जल को हटा देता है।

(v) रक्त की रचना स्थिर रखना— वृक्क रक्त से बैक्टीरिया, रासायनिक विषों एवं दवाओं को हटाकर रक्त की रचना स्थिर रखने में मदद करता है। जब रक्त में चीनी आवश्यकता से अधिक हो जाती है, तब वृक्क उसे रक्त से हटा देता है।

प्रश्न ४. वृक्क एवं फेफड़े के कार्यों की तुलना कीजिए।

उत्तर—

वृक्क	फेफड़ा
(i) वृक्क का मुख्य काम रक्त का शुद्धीकरण है।	(i) फेफड़ों का मुख्य काम रक्त का शुद्धीकरण है।
(ii) वृक्क रक्त से अगैसीय (Non-gaseous) अशुद्धियों हो हटाता है।	(ii) फेफड़ा रक्त से कार्बन डायक्साइड एवं जल-वाष्प हटाता है।
(iii) वृक्क द्रव (मूत्र) का विसर्जन करता है।	(iii) फेफड़ा गैस (फेंकी हुई वायु) का विसर्जन करता है।

अध्याय ९

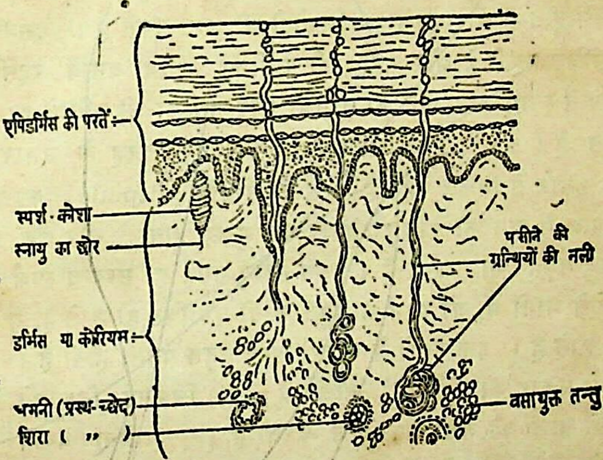
चर्म तंत्र

E.P.H.

प्रश्न १. त्वचा की बनावट एवं उसके कार्यों का वर्णन कीजिए।

उत्तर— त्वचा की बनावट— त्वचा की बनावट आगे दिये गये स्वतः-परिचाय को चित्र में दिया गया है। त्वचा शरीर के ऊपरी आवरण को कहते हैं। इसकी दो परतें होती हैं। ऊपरी परत को एपीडर्मिस कहते हैं। यह कोशाओं की कई तहों से बनती है और हमेशा घिसती रहती है। इसमें रक्त

संचालन नहीं होता और स्नायु-सूत्र भी प्रायः नहीं रहते हैं। इसमें अनेक सूक्ष्म



छिद्र रहते हैं, जिनसे पसीना और बाल निकलते हैं। यह धूल, पानी आदि से शरीर की रक्षा करती है।

बाहरी खाल में खून की नलियाँ नहीं होती हैं। इसके भीतर जो सेल होते हैं वे अपना पोषण लसीका से पाते हैं, जो सच्ची खाल की सेल से धीरे-धीरे निकला करती है। बाहरी खाल में बहुत ही कम, एक प्रकार से नहीं के बराबर स्नायु-सूत्र हैं। यही कारण है कि कभी-कभी बाहरी खाल के कट जाने पर भी हमें पीड़ा नहीं मालूम होती। बाहरी खाल पर बहुत ही छोटे-छोटे छेद दीख पड़ते हैं। इन्हीं छेदों से शरीर के अन्दर का कुछ विकार पसीने के रूप में बाहर निकलता है। शरीर के अन्दर जो गड्ढे हैं उन पर एक पतली गुलाबी श्लैष्मिक झिल्ली चढ़ी रहती है।

एपीडर्मिस के नीचे की परत को डर्मिस या कोरियम कहते हैं। स्नायु-तन्तु एवं स्पर्श-कोशाएँ इसी परत में रहती हैं। इसी परत में बालों की जड़ें गड़ी रहती हैं। इसी परत में पसीने की ग्रन्थियाँ रहती हैं, जिनसे नलियों द्वारा पसीना

बाहर निकलता है। इसके नीचे दूसरे तन्तु होते हैं जिनमें चर्बी की मात्रा अधिक रहती है। इससे शरीर के भीतरी भागों का गड्ढा भरा-पूरा मालूम पड़ता है। ये तन्तु ढीले होते हैं और इनमें हम चिकोटी भी काट सकते हैं। इसकी चर्बी में शक्ति संचित रहती है और शरीर की गर्मी का अन्दर बनाये रहती है। सच्ची खाल में स्नायु-जाल, खून का नलियाँ और लसीका की नलियों का अच्छा प्रबन्ध रहता है। इसकी ऊपरी सतह पर उँगलियों की तरह के उभार होते हैं जो एक कतार से निकले रहते हैं। इन्हें पैपिले (Papiale) कहते हैं। प्रत्येक पैपिला में खून की केशिकाओं का एक गुच्छा होता है और एक अण्डाकार स्नायु-समूह भी रहता है। इस स्नायु-समूह का सम्बन्ध स्पर्श से है। शरीर के ऐसे भागों में, जो स्पर्श से बहुत जल्दी प्रभावित हो उठते हैं, ये पैपिले बहुत पाये जाते हैं। इन भागों में बाहरी खाल बहुत पतली होती है। इसके अतिरिक्त दो प्रकार की गिल्टियाँ होती हैं—(i) चिकनई निकालने वाली गिल्टियाँ जो बालों की जड़ों का पोषण करती है, (ii) पसीना बनाने वाली गिल्टियाँ जो एक प्रकार की नलियों द्वारा बाहरी खाल के छेदों से पसीना निकालती हैं।

त्वचा के काम—(i) हमारे शरीर को ढक कर यह कोमल अंगों की रक्षा करती है। हम जानते हैं कि हवा में धूल-कण और रोग उत्पन्न करने वाले जीवाणु उड़ते रहते हैं। ये जीवाणु हमारे शरीर में प्रवेश कर रोग उत्पन्न करते, अगर त्वचा नहीं होती।

(ii) इसके अतिरिक्त यह विकारवाहक अंग भी है। पसीना बाहर निकालती है।

(iii) हवा के स्पर्श से शरीर की गर्मी को भी बाहर करती है (By conduction)।

(iv) इससे हमें स्पर्श-ज्ञान का अनुभव होता है।

(v) छोटे-छोटे जानवरों में त्वचा साँस लेने में मदद करती है (Respiratory organs)। मेढ़क त्वचा से ही अधिक साँस लेता है।

(vi) औषधियों और चर्बी को अपशोषित कर शरीर को बलवान तथा रोग-मुक्त करती है।

(vii) इससे सीबम (Sebum) नामक चर्बीदार पदार्थ निकलता है, जो त्वचा को मुलायम तथा चिकना रखता है।

(viii) अल्ट्रावायोलेट किरणों के प्रभाव से यह विटामिन D का निर्माण करती है।

(ix) यह भीतर की मांसपेशियों की रक्षा करती है।

(x) यह शरीर की गर्मी को ठीक दशा में रखती है।

(xi) त्वचा द्वारा रोगों का निदान किया जाता है। त्वचा की जाँच द्वारा डाक्टर लोग रोगों का पता लगाते हैं।

प्रश्न २. निम्नलिखित का संक्षिप्त विवरण दीजिए— (i) स्वेद-ग्रन्थियाँ, (ii) तैल ग्रन्थियाँ।

उत्तर— चर्म के गढ़े में निम्नलिखित दो प्रकार की ग्रंथियाँ पायी जाती हैं—

(i) स्वेद-ग्रंथियाँ (पसीने की गिल्टी)— स्वेद-ग्रंथियों से एक प्रकार का स्राव निकलता है। इसे पसीना कहते हैं। ऐसी असंख्य ग्रंथियाँ हमारे चर्म में अवस्थित हैं। वास्तव में स्वेद-ग्रंथि एक प्रकार की नली है जिसका निचला हिस्सा साँप की तरह टेढा-मेढ़ा रहता है। ये सच्ची खाल के निचले हिस्से में रहती हैं और केशिकाओं से घिरी रहती हैं। रक्त-केशिकाओं से होकर रक्त प्रवाहित होते समय रक्त के घुलनशील विकारों वाला घोल केशिकाओं की दीवार से निकल कर स्वेद-नलियों में चला आता है और रंध्र द्वारा दृश्य या अदृश्य स्वेद (पसीने) के रूप में बाहर निकल जाता है। तलहथी और तलवों में स्वेद-ग्रंथियाँ अपेक्षाकृत अधिक सघन है। पसीने (स्वेद) में पानी, यूरिया तथा कई तरह के नमक रहते हैं। पसीना निकलने से शरीर की गर्मी और विकार दूर हो जाता है।

(ii) तैल ग्रंथियाँ (चिकनई वाली गिल्टी)— बालों के पास एक विशेष प्रकार की ग्रंथियाँ रहती हैं जिन्हें तैल ग्रंथियाँ कहते हैं। इनसे एक प्रकार का

तेल निकलता है जिसे सीबम कहते हैं। यह बाल और बाल के समीपवर्ती भाग को चिकना और मुलायम रखता है। सीबम आम्लिक होता है। इसके स्राव के अभाव में बाल और चमड़े रूखे दिखाई पड़ते हैं। इसका बाहुल्य होने से चमड़े पर मैल अधिक जमा हो जाता है जिससे स्वेद-नलिकाओं के मुख बंद हो जाते हैं और रक्त को उचित मात्रा में आक्सीजन नहीं मिल पाता। इसे साफ करने के लिए कपड़े से बदन रगड़कर या साबुन लगाकर स्नान करना चाहिए।

प्रश्न ३. नख और बाल पर नोट लिखें।

नख— नख वास्तव में बाह्य चर्म का ही परिवर्तित रूप है। विशेष प्रकार के परिवर्त्तनों के कारण ही, ये अपेक्षाकृत अधिक कड़े हो गये हैं। नखों के दो भाग हैं—सजीव और मृत।

मृत भाग— हाथ-पैर के नखों के वे भाग जिन्हें हम नाई द्वारा कटवाकर निकाल दिया करते हैं, नख का मृत भाग है। इस भाग का रंग अपेक्षाकृत हल्का होता है। गन्दे लड़कों में इस भाग के नख के अन्दर मैल जम जाने से यह प्रायः मैला दीख पड़ता है। इसके कटवाने से न तो रक्त ही निकलता है, न हमें कोई पीड़ा ही होती है।

सजीव भाग— नख के सजीव भाग का लगाव इसके मृत भाग से रहता है। प्रायः असावधानी से मृत नख के काटते समय यदि इसका सजीव भाग कट जाता है तो इसके कटने से पीड़ा होती है, प्रायः रक्त बहने लगता है। अतः स्पष्ट है कि नख के सजीव भाग का सम्बन्ध तन्त्रिका-सूत्र और रक्त-केशिकाओं से है। इस भाग का रंग गुलाबी होता है।

बाल— बाल वास्तव में बाह्य चर्म के कड़े भाग का ही परिवर्तित रूप है। यह एक बारीक नली-जैसा है। शारीरिक उपयोगिताओं के अनुरूप ही इसके गठन और आकार-प्रकार में भेद हुआ है। बाह्य चर्म जैसा ही बालों में तान्त्रिक-सूत्रों का अभाव है। फलतः हजामत बनाते समय हमें कोई तकलीफ नहीं होती।

बालों की स्थिति— शरीर का प्रत्येक बाल उपचर्म-स्थित रोम-कूप में अवस्थित रहता है। इसकी जड़ का सम्बन्ध रोम-कूप के तलेटी-स्थित चर्म-उभार से रहता है। चर्म-उभार आभ्यन्तर चर्म में अवस्थित रहता है। इससे बाल की जड़ का भरण-पोषण होता है। रोम-कूप एक बारीक नली है; जो बाह्य चर्म से आरम्भ होकर अन्तःचर्म तक चली गयी है।

बालों के काम—बाल शरीर के ताप का नियन्त्रण करता है। ठंडे देशों में बाल शरीर की गर्मी को बाहर निकलने से रोकता है। गर्म देशों में यह बाहरी ताप को शरार के अन्दर जाने में रुकावट डालता है।

अध्याय १०

शरीर की प्रमुख ग्रन्थियाँ

प्रश्न १. मानव-शरीर में कितने प्रकार की ग्रन्थियाँ (गिल्टियाँ) पायी जाती हैं ? प्रत्येक का नाम लिखिए।

उत्तर—हमारे शरीर में छोटी-बड़ी असंख्य ग्रन्थियाँ हैं। विशेष प्रकार की ग्रन्थियों से विशेष प्रकार के रस स्रावित होते हैं। यदि किसी ग्रन्थि के रस की आवश्यकता उसके समीप न होकर कुछ दूर पर होती है तो उस ग्रन्थि से एक नयी नली निकलकर उस स्थानविशेष तक जाती है जहाँ रसविशेष की आवश्यकता होती है। नली-विशेष उस रस की वाहिनी या प्रणाली कहलाती है।

प्रणाली के विचार से स्रावी ग्रन्थियाँ दो प्रकार की हैं—

(क) प्रणालीयुक्त ग्रन्थियाँ—यकृत, क्लोम, वृक्क, लाला-ग्रन्थियाँ इत्यादि।

(ख) प्रणालीविहीन ग्रन्थियाँ— चुल्लिका, उपवृक्क, थाइमस-क्लोम, प्लीहा इत्यादि।

नोट— (i) प्रणालीयुक्त ग्रन्थियों का विवरण पूर्व प्रश्नों के उत्तर में दिया जा चुका है।

(ii) प्रणालीविहीन ग्रन्थियों को अन्तःस्रावी या बिना नाली वाली गिल्टियाँ (नलिकाविहीन ग्रन्थियाँ) भी कहते हैं। इन्हीं का विवरण आगे दिया गया है।

E. P. H.

प्रश्न २. मानव-शरीर की कुछ प्रमुख अन्तःस्रावी ग्रन्थियों के नाम लिखें तथा उनका संक्षिप्त परिचय दीजिए।

या, नलिकाविहीन ग्रन्थियाँ क्या हैं ? उनके नाम, स्थान और प्रधान कार्यों का वर्णन करें।

उत्तर— यकृत, क्लोम तथा लाला-रस वाली ग्रन्थियों में प्रणालियाँ रहती हैं। इनके सहारे ग्रन्थिविशेष से स्राव निकलकर शरीर के निश्चित स्थान पर पहुँच जाता है, जिससे स्थानविशेष के अंग प्रभावित होते हैं। लेकिन इन ग्रन्थियों के अतिरिक्त हमारे शरीर में छोटी-बड़ी और भी असंख्य अन्तःस्रावी (Endocrine) ग्रन्थियाँ हैं, जिनमें प्रणालियाँ नहीं होती हैं और यदि होती भी हैं तो वे दिखाई नहीं पड़तीं। इन्हें नलिकाविहीन ग्रन्थियाँ भी कहते हैं। प्रत्येक ग्रन्थि से विशेष प्रकार का स्राव निकलकर रक्त में सीधा मिल जाता है।

इन ग्रन्थियों में निम्नलिखित मुख्य ग्रन्थियाँ हैं—

(i) चुल्लिका (Thyroid)— यह गिल्टी कण्ठ के सामने रहती है। इसके दो हिस्से होते हैं। यह टेंटुआ के अगल-बगल में रहती है। इसका रंग भूरापन लिये लाल होता है। इसका आकार देशी चूल्हे से मिलता जुलता है, जिससे इसका नाम चुल्लिका पड़ा है। बढ़ जाने से यह घेघा रोग के रूप में दिखाई देती है।

यह ग्रन्थि बड़े महत्त्व की है। इसके स्राव का प्रभाव सारे शरीर पर पड़ता है। फलस्वरूप शरीर की रासायनिक क्रिया अधिक क्रियाशील हो जाती

है, जिससे शरीर की वृद्धि समुचित रूप से होती है। अनास्राव यानी स्राव की कमी से शारीरिक और मानसिक ह्रास होता है। बालकों के शरीर का विकास समुचित रूप से नहीं हो पाता है। अतिस्राव यानी स्राव में वृद्धि हो जाने से शरीर में विभिन्न प्रकार के रोगों के लक्षण दिखाई पड़ने लगते हैं। शरीर का तापक्रम बढ़ जाता है। रक्त-चाप बढ़ जाता है, शरीर दुबला हो जाता है, स्नायविक दुर्बलता बढ़ जाती है, भूख अधिक सताती है, चर्म पतला और अधिक नरम हो जाता है। शान्त और सुलझा हुआ मनुष्य मानसिक रोग का शिकार बन जाता है।

(ii) उपचुल्लिका— ये गिल्टियाँ मटर के बराबर चुल्लिका के आकार की ही होती हैं। दो-दो की संख्या में चुल्लिका के दाहिने और बायें खण्डों के पिछले किनारों से लगी रहती हैं। इनके निकाल देने से या इनके विकार से पेशियाँ सिकुड़ती हैं और टेटनी रोग हो जाता है।

(iii) पीयूष— यह गिल्टी मस्तिष्क की निचली सतह के मध्य-भाग में लटकी रहती है। इसका रंग लाल लिये हुए भूरा होता है। इसमें से अनेक रस (Hormones) निकलते हैं, जिनमें कुछ अन्य नलीहीन गिल्टियों की क्रिया का नियन्त्रण करते हैं, इसलिए इसको शरीर की मुख्य गिल्टी भी कहा गया है। इसमें दो उभार होते हैं, एक सामने की ओर और दूसरा पीछे की ओर।

सामने वाले भाग से निकलने वाले रस—

(a) वृद्धि-रस (Growth hormone)— यह शरीर की वृद्धि का नियन्त्रण करता है। इस रस के अभाव में आदमी बौना हो जाता है एवं वृद्धि पूर्ण होने के पहले अगर रस आवश्यकता से अधिक बनता है तो आदमी आवश्यकता से अधिक लम्बा हो जाता है। वृद्धि पूर्ण हो जाने पर रस की अधिकता से पैर एवं हथेली चौड़ी हो जाती हैं, चमड़ा मोटा हो जाता है और नीचे का जबड़ा बढ़ जाता है।

(b) थाइरोट्रोपिक रस (Thyrotropic hormone)—यह चुल्लिका गिल्टी की क्रिया नियन्त्रित करता है।

(c) एड्रीनोट्रोपिक रस (Adrenotropic hormone)—यह उपवृक्क गिल्टी की क्रिया नियन्त्रित करता है।

(d) पाराथाइरोट्रोपिक रस (Parathyrotropic hormone)—यह उपचुल्लिका गिल्टी की क्रिया नियन्त्रित करता है।

(e) पैनक्रियेटिक रस (Pancreatic hormone)— यह इन्सुलिन बनाने में क्लोम की क्रिया नियन्त्रित करता है।

(f) गोनाडोट्रोपिक रस (Gonadotropic hormone)— यह नर एवं नारी की यौन गिल्टियों को नियन्त्रित करता है।

(g) लेक्टोजेनिक रस (Lactogenic hormone)—यह गर्भवती स्त्रियों के स्तनों में दूध बनने की क्रिया नियन्त्रित करता है।

पीछे वाले भाग से निकलने वाले रस — इनसे निकलने वाले रसों का हृदय, आंत एवं रक्तवाहिनी (Blood vessel) पर प्रभाव पड़ता है। इस रस की अधिकता से ब्लडप्रेसर हो जाता है।

(iv) उपवृक्क की गिल्टियाँ (Supra renal glands)— गुर्दे के ऊपरी सिरों पर दो छोटी और पीली गिल्टियाँ होती हैं, जिन्हें उपवृक्क की गिल्टियाँ कहते हैं। इनसे निकले हुए रस मनुष्य को खतरे के समय सचेत कर देते हैं। खतरे की सम्भावना होते ही स्नायु-प्रेरणा से ये गिल्टियाँ अपना रस खन के बहाव में दे डालती हैं, जिससे खतरे के समय अंग-प्रत्यंग सतर्क हो जाते हैं। पसीना तेजी से निकलने लगता है। पाचन-क्रिया मन्द हो जाती है। जिगर से शक्कर बाहर होने से पेशियाँ अधिक चालू हो जाती हैं। रोएँ खड़े हो जाते हैं। आँखें बड़ी हो जाती हैं और पुतलियाँ फैल जाती हैं जिससे मनुष्य देखने में डरावना मालूम पड़ता है। ये परिवर्तन इसलिए होते हैं कि मनुष्य खतरे का सामना अच्छी तरह कर सके।

(v) थाइमस (Thymus)— यह छाती की हड्डी के पीछे और गर्दन के निचले भाग में रहती है। यह गुलाबी रंग की होती है। यह २½ इंच लम्बी और १ इंच चौड़ी होती है। यह गिल्टी करीब १४-१५ वर्ष की अवस्था तक बढ़ती है फिर छोटी होने लगती है। इसमें विकार होने से या इसको निकाल

देने से आदमी बौना और दुबला हो जाता है। कभी-कभी श्वास-रोग भी हो जाता है।

(vi) प्लीहा — यह ऊपरी उदर की बायीं ओर, आमाशय और वक्षोदर-मध्यस्थ पेशी के बीच में है। यह करीब ५ इंच लम्बी और ३ इंच चौड़ी है। यह नीलापन लिये लाल रंग की है। इसका बाहरी भाग चिकना तथा भीतरी भाग स्पंज जैसा है। इसके नरम भाग में रक्त के कण हैं।

प्लीहा से एक प्रकार का स्राव निकलता है। लेकिन इस स्राव का क्या काम है, यह निश्चित रूप से नहीं जाना गया है। केवल इतना ही ज्ञात हो सका है कि प्लीहा में रक्त के श्वेत और लाल कण बनते हैं और क्षयप्राप्त लाल कणों का वहाँ विनाश भी होता है।

प्राय: मलेरिया, कालाजार आदि रोगों के पुराने हो जाने पर प्लीहा अपेक्षाकृत अधिक बढ़ जाती है और पुन: रोगमुक्त होने पर अपनी पूर्वावस्था में आ जाती है।

स्पंज की तरह रहने के कारण इसमें अधिक रक्त संचित रहता है। शरीर के आवश्यकतानुसार यह ग्रन्थिरक्त-संचालन में रक्त का परिमाण नियन्त्रित करती रहती है। यदि अंगविशेष में अधिक रक्त की जरूरत होती है, तो इसकी मांसपेशियों में संकुचन होता है, फलस्वरूप इससे अधिक रक्त निकलकर अंग-विशेष में पहुँच जाता है।

नोट — चूंकि प्लीहा से एक प्रकार का अन्त:स्राव निकलता है, अतः इसे अन्त:स्रावी ग्रन्थि में सम्मिलित किया गया है। इसमें प्रणाली है या नहीं, यह निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता है। यदि है भी, तो स्पष्ट रूप से दिखाई नहीं पड़ती है। अतः इसे प्रणालीविहीन ग्रन्थि की संज्ञा दी गयी है।

(vii) यौन ग्रन्थियाँ — स्त्रियों में अण्डाशय और पुरुषों में अण्डग्रन्थि क्रमशः डिम्ब और शुक्र कीटाणु उत्पन्न करने के अंग हैं। ये आन्तरिक स्राव भी उत्पन्न करते हैं। इन आन्तरिक स्रावों का सम्बन्ध परवर्ती यौन विशेषताओं तथा प्रजनन-क्रिया से है। इनके अतिरिक्त इन ग्रन्थियों से हार्मोन उत्पन्न

होते हैं, जिनका प्रभाव शारीरिक वृद्धि और विकास पर पड़ता है। यौन ग्रन्थियों का सक्रियता के फलस्वरूप व्यक्ति में परवर्ती यौन विशेषताएँ प्रकट होती हैं। इसके अभाव में उचित पुरुषत्व या नारीत्व का विकास सम्भव नहीं होता है।

अध्याय ११

तंत्रिका-तंत्र (नाड़ी-संस्थान)

प्रश्न १. स्नायु-संस्थान (Nervous System, नाड़ी-संस्थान) का सामान्य परिचय दीजिए एवं उसके कार्यों का उल्लेख कीजिए।

उत्तर— मनुष्य के शरीर में स्नायु-संस्थान दो भिन्न-भिन्न संस्थानों से बना है जो एक-दूसरे से सम्बन्ध रखते हैं।

(i) मध्यस्थ स्नायु-संस्थान— यह मस्तिष्क, सुषुम्ना और स्नायु-सूत्रों से बना है। मस्तिष्क तीन भागों में बँटा है— (क) बड़ा मस्तिष्क, (ख) छोटा मस्तिष्क और (ग) सुषुम्नाशीर्षक। स्नायु-सूत्र भी अनेक प्रकार के हैं।

(ii) स्वतंत्र स्नायु-संस्थान— यह मेरुदण्ड के दोनों तरफ खोपड़ी से लेकर कूल्हे तक जंजीरों की तरह छोटी-छोटी गाँठों से बना है। इन गाँठों से स्नायु-सूत्र निकलकर दिल, आमाशय और रक्त-नलियों में पहुँचते हैं। इसके भी दो भाग हैं जो क्रमशः प्रथम और द्वितीय कहलाते हैं।

स्नायु-संस्थान के कार्य— (i) स्नायु-संस्थान शरीर के सभी संस्थानों के कार्यों का नियमित रूप से संचालन करता है। ग्रन्थियों से रस निकालना, मांसपेशियों को गति देना आदि सभी स्नायु-संस्थान से नियंत्रित हैं।

(ii) मनुष्य के शरीर का राजा दिमाग (मस्तिष्क), जो स्नायु-संस्थान का मुख्य हिस्सा है, स्नायु-तारों द्वारा शरीर के एक दूसरे हिस्सों का समाचार पाता

है और उनकी रक्षा का आदेश भेजता है। जैसे— मान लिया कि कोई आदमी किसी दूसरे आदमी को कहीं आलपीन भोंकता है। ज्योंही आलपीन की नोक स्नायु-तारों में पहुँचती है, स्नायु-तार इसकी खबर दिमाग को पहुँचा देते हैं। दिमाग तुरत ही स्नायु-तारों द्वारा उससे बचाव का आदेश उस हिस्से की पेशियों को भेजता है। पेशियाँ हड्डियों की सहायता से उस हिस्से को हटा लेती या और कोई उपाय से बचा लेती हैं। अतएव शरीर के अङ्ग-प्रत्यङ्ग के संचालन तथा उनकी रक्षा का भार स्नायु-संस्थान पर है।

(iii) सुनना, देखना, स्पर्श करना, सूँघना, चखना इत्यादि जितनी भी चेतन अनुभूतियाँ हैं वे स्नायु-संस्थान के सहारे ही होती हैं।

(iv) सुख-दुःख, हर्ष-विषाद आदि की अनुभूति भी इसी संस्थान के सहारे होती है।

(v) सोचना, समझना आदि स्नायु-संस्थान के विशेष कार्य हैं।

(vi) हम जो भी काम करते हैं, वह अपने स्नायु-संस्थान के आदेशानुसार करते हैं।

(vii) शरीर की सभी चेतन एवं अचेतन क्रियाओं का संचालन और निर्देशन स्नायु-संस्थान ही करता है।

प्रश्न २. स्नायु-संस्थान (नाड़ी-संस्थान) के प्रमुख भागों का उल्लेख कीजिए तथा संक्षेप में उनके कार्यों का वर्णन कीजिए।

उत्तर— स्नायु-संस्थान के निम्नलिखित भेद हैं—

(क) मस्तिष्क—इसके तीन उपभाग हैं— (i) वृहत् मस्तिष्क—मस्तिष्क के ऊपर वाले भाग को वृहत् मस्तिष्क या प्रमस्तिष्क कहते हैं। यह मस्तिष्क का सबसे बड़ा भाग है। इसके नीचे मध्य मस्तिष्क और पीछे की ओर लघु मस्तिष्क आदि अवस्थित हैं।

वाह्य रूप— वाह्य मस्तिष्क का धरातल सपाट नहीं है। यह दरारों से भरा है। मध्य में एक गहरी दरार द्वारा इसके दो बराबर भाग हो गये हैं। यह दरार सामने से पीछे की ओर चली गयी है। इससे इसके दो गोलार्द्ध हो

गये हैं, एक बायाँ और दूसरा दाहिना। दोनों गोलार्द्धों पर कर्णक (उभार) और परिखायें (खाइयाँ) हैं। ये दोनों गोलार्द्ध अपने तल के समीप एक चपटे फीते के समान आकार वाली रचना से जुड़े हुए हैं जिसे महासंयोजक कहते हैं।

आन्तरिक बनावट— गोलार्द्धों का रंग ऊपर से मटमैला या धूसर दिखाई देता है परन्तु यदि उन्हें काट कर देखा जाय तो उनके भीतर का भाग सफेद रंग का दिखाई देगा जिसमें कहीं-कहीं पर धूसर रंग का पदार्थ एकत्र पाया जायगा। इन्हीं दो रंगों के पदार्थों से सारा मस्तिष्क बना हुआ है। बाहर की ओर धूसर पदार्थ सारे मस्तिष्क को आच्छादित किये हुए है। उसके भीतर उजले पदार्थ स्थित हैं। सारा धूसर पदार्थ तंत्रिका-कोशिकाओं का बना हुआ है और श्वेत पदार्थ इन कोशिकाओं से निकलने वाले तन्तुओं का; अतएव सारा मस्तिष्क इन्हीं दो प्रकार के पदार्थों से निर्मित है।

काम— सोचना, विचारना, इच्छा करना, सुख-दुःख अनुभव करना इत्यादि मस्तिष्क के ही काम हैं। स्मरण, संवेदना, संकल्पना, प्रेम, भय, घृणा, आनन्द इत्यादि भावनाओं का प्रादुर्भाव और अन्त यहीं होता है।

(ii) लघु मस्तिष्क— यह सिर के पिछले भाग में वृहत् मस्तिष्क के नीचे स्थित है। यह एक पिचके गोले की तरह होता है, जिसकी चौड़ाई अधिक और मोटाई कम होती है। इसमें भी बड़े मस्तिष्क की तरह भूरा पदार्थ श्वेत पदार्थ को ढके रहता है। यह शरीर में ठीक तरह से गतियाँ पैदा करता है। पेचीदे एवं नाजुक कामों का संतुलन इसी के सहारे होता है। चित्रकारी और बाजा बजाना जैसे कठिन काम छोटे मस्तिष्क के संचालन से होते हैं। यहीं पर सांवेदनिक खबरें पेशियों के जोड़ तथा नलियों से आती हैं। इसी भाग से चालक प्रेरणाएँ भेजी जाती हैं, जिससे टहलने, दौड़ने में पेशियों की गति ठीक रहती है। किसी शराबी के पैर लड़खड़ाने का कारण यही है कि उसका छोटा मस्तिष्क शराब के प्रभाव से विवश हो जाता है।

(iii) सुषुम्नाशीर्षक— खोपड़ी के अन्दर मस्तिष्क का वह हिस्सा जो सेतु के पीछे रहता है सुषुम्नाशीर्षक कहलाता है। इसमें भी भूरा पदार्थ उजले पदार्थ को ढके रहता है। साँस का लेना, खून का दौरान, उगलना इत्यादि का केन्द्र

इसी में रहता है, इसीलिए यह बहुत आवश्यक है। इसमें चोट लगने से तुरत मृत्यु हो जाती है।

(ख) सुषुम्ना—यह बेलन के आकार की रस्सी की तरह खोपड़ी के बड़े छेद से आरम्भ होकर रीढ़ की नली द्वारा कमर के दूसरे मोहरे के पास समाप्त हो जाती है। इसकी लम्बाई लगभग १८ इंच होती है। इसके दोनों बगलों से थोड़ी-थोड़ी दूर पर कुल ३१ जोड़े स्नायु-सूत्र निकलते हैं। ये सभी स्नायु मिश्रित हैं जो सुषुम्ना से दो जड़ों से जुड़ी रहती हैं—(१) अगली जड़ और (२) पिछली जड़। सुषुम्ना में सफेद पदार्थ बाहर और धूसर पदार्थ भीतर रहता है। अगली जड़ धूसर पदार्थ से लगी रहती है जो चालक स्नायुओं के द्वारा पेशियों में गति पैदा करती है। पिछली जड़ सफेद पदार्थ से लगी रहती है जो शरीर के अंग-प्रत्यंग से खबरें दिमाग को भेजती है। परावर्त्तित क्रिया सुषुम्ना के ही द्वारा होती है।

शरीर के दाहिने हिस्से की खबर मस्तिष्क के बायें हिस्से में और शरीर के बायें हिस्से की खबर मस्तिष्क के दाहिने हिस्से में आती है। सुषुम्ना में किसी तरह की गड़बड़ी या आघात होने से इन सूचनाओं का पहुँचना बन्द हो जाता है। सुषुम्ना के जिस हिस्से में आघात पहुँचता है उससे नीचे के अंगों में न तो कोई गति होती है और न कुछ दुःख मालूम होता है। गर्दन से नीचे वाले भाग में चोट या किसी तरह की बीमारी होने से उसके नीचे वाला हिस्सा बेकार हो जायगा, लेकिन आदमी की मृत्यु नहीं होगी। गर्दन के अन्दर वाली सुषुम्ना में आघात या खराबी होने से साँस लेना असम्भव हो जाता है, अतएव शीघ्र ही मृत्यु हो जाती है।

(ग) न्यूरोन—शाखा-प्रशाखाओं के साथ प्रत्येक स्नायु-सेल को न्यूरोन कहा जाता है। यह भूरे रंग के पदार्थ से बना होता है। खुर्दबीन से देखने से स्नायु-सेल की बनावट बड़े महत्त्व की होती है। बिलकुल बीचोबीच जीवोज रहता है, उसके बीच में भींगी, फिर चारों तरफ से कई शाखा-प्रशाखाएँ निकलती हैं—ये ही स्नायु-सूत्र हैं।

(घ) सांवेदनिक स्नायु—वे स्नायुएँ जो सुषुम्ना और मस्तिष्क के स्नायु-केन्द्र की तरफ जाती हैं और समाचार पहुँचाती हैं उन्हें केन्द्रगामी अर्थात् सांवेदनिक स्नायु कहते हैं। इनसे किसी भी तरह की चेतना का अनुभव होता है; जैसे—देखना, छूना, सूँघना इत्यादि।

(ङ) चालक स्नायु—वे स्नायुएं जो स्नायु-केन्द्रों से चलकर पेशियों या गिल्टियों तक आती और उन्हें मस्तिष्क का आदेश देती हैं उन्हें केन्द्रत्यागी अर्थात् चालक स्नायु कहते हैं। ये मांसपेशियों में गति पैदा करती हैं तथा गिल्टयों से रस उत्पन्न करने में सहायता करती हैं।

प्रश्न ३. परावर्त्तित क्रिया किसे कहते हैं? कुछ परावर्त्तित कार्यों के उदाहरण दीजिए।

उत्तर—हमारे दैनिक जीवन में अनजाने ही कुछ ऐसी क्रियाएँ स्वयं हो जाती हैं जिनका प्रत्यक्ष ज्ञान मस्तिष्क के चेतन भाग को भी नहीं हो पाता। ऐसी क्रियाएँ प्राय: बिना मस्तिष्क के आदेश के ही केवल वाह्य उत्तेजना के प्रभाव से ही सम्पादित हो जाती हैं। इन क्रियाओं को प्रतिक्षेप-क्रिया या परावर्त्तित क्रिया कहते हैं। इस क्रिया में मस्तिष्क के केन्द्रों का कोई हाथ नहीं रहता। इनका सम्पादन सुषुम्नास्थित केन्द्रों द्वारा ही होता है।

परावर्त्तित क्रिया के कई उदाहरण दैनिक जीवन के कामों में मिलते हैं। यदि कोई अँधेरे से उजाले में जाय तो आँख की पुतली सिकुड़कर छोटी हो जाती है। इसी तरह अगर कोई उजाले से अँधेरे में जाय तो पुतली फैलकर चौड़ी हो जाती है। इस तरह पुतली के आकार में जो परिवर्त्तन होता है उसका ज्ञान आदमी को बिलकुल नहीं होता। यदि हमारी आँख पर कोई छोटी-सी चीज अचानक आ गिरती है तो पलक तुरत ही गिर जाती है। पलक के गिरने में हमारी इच्छा का कुछ भी हाथ नहीं रहता। पलक इतनी जल्दी गिरती है कि हमें सोचने-विचारने का समय भी नहीं मिलता। उसी प्रकार किसी अच्छे भोजन को देखकर हमारे मुँह में लार भर आता है, आमाशय में आमाशयिक रस बनने लगता है। चलते-चलते रास्ते में पैर के नीचे

जब कोई काँटी पड़ जाती है तो हमारे पैर झट से उठ जाते हैं।

ये सभी परावर्त्तित क्रियाएँ हैं। इस तरह शरीर के भीतर प्रतिक्षण सहस्रों परावर्त्तित क्रियाएँ होती रहती हैं।

अध्याय १२

ज्ञानेन्द्रियाँ

प्रश्न १. ज्ञानेन्द्रियाँ क्या है ? ये कौन-कौन हैं ?

उत्तर—जिन इन्द्रियों के द्वारा हमें किसी प्रकार का ज्ञान होता है, वे ज्ञानेन्द्रिय (Sense organs) कहलाती हैं। ये इन्द्रियाँ पाँच हैं जो शरीर के भिन्न-भिन्न भागों में स्थित हैं। हमें इनसे स्पर्श, देखने, सूँघने या स्वाद का ज्ञान प्राप्त होता है। ये निम्नलिखित हैं—

(क) खाल (Skin) स्पर्श, ताप तथा वेदना की इन्द्रिय।

(ख) आँख (Eye) — देखने की इन्द्रिय।

(ग कान (Ears) · सुनने की इन्द्रिय।

(घ) नाक (Nose)— सूँघने की इन्द्रिय।

(च) जीभ (Tongue)— स्वाद की इन्द्रिय।

प्रश्न २. स्पर्श-अनुभव किस प्रकार होता है ?

उत्तर— चमड़े को छूने पर चमड़े में आरम्भ होने वाली संवेदन नाड़ियाँ क्रियाशील हो जाती हैं और मस्तिष्क को स्पर्श की सूचना देती हैं। ये नाड़ियाँ चमड़े में जिन स्थानों पर आरम्भ होती हैं, केवल वहीं स्पर्श का अनुभव होता

है। ताप एवं सर्दी का अनुभव भी इन्हीं नाड़ियों जैसी अन्य नाड़ियों के द्वारा होता है।

गहरे दबाव की चेतना एवं वैसी चेतना जो किसी वस्तु के भार का अन्दाज करने के काम आती है, की उत्पत्ति मांसपेशियों एवं जोड़ों पर होती है।

स्पर्श की नाड़ियाँ जहाँ चमड़े पर आरम्भ होती हैं, वे स्थल स्पर्श-कण कहलाते हैं। चमड़े के कुछ भागों में स्पर्श-कण अधिक रहते हैं और कुछ में कम। इसी कारण, कुछ भागों में स्पर्श की चेतना तीव्र एवं कुछ में मन्द होती है। जिह्वा का अगला भाग, उँगलियाँ, नाक के छोर, निचला होठ इत्यादि तीव्र स्पर्श-चेतना वाले स्थान हैं। त्वचा की स्पर्श-चेतना को मापने के लिए यह देखा जाता है कि परकार की नोकों के बीच कितनी दूरी होने पर त्वचा उन नोकों को पृथक्-पृथक् अनुभव कर सकती है। यह चेतना जीभ पर सबसे अधिक है और पीठ पर सबसे कम।

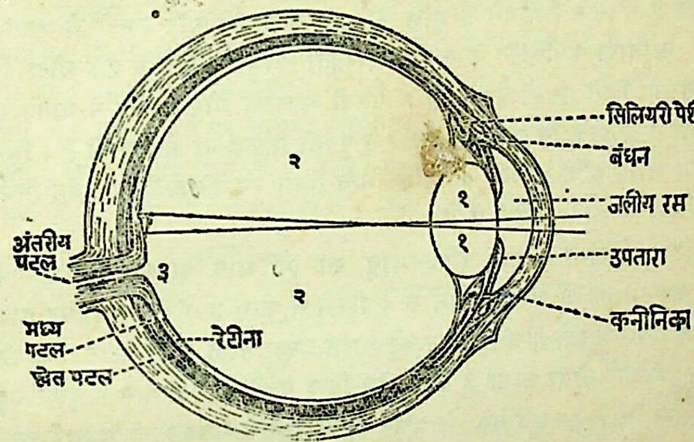
E.P.H.

प्रश्न ३. चित्र की सहायता से मानवीय चक्षु (मनुष्य की आँख) की बनावट का संक्षिप्त विवरण दीजिए। किसी वस्तु को हम किस तरह देखते हैं?

उत्तर— आँखें देखने की इन्द्रियाँ हैं जो नाक की दाहिनी ओर दो गड्ढों में रहती हैं। प्रत्येक आँख एक गेंद की तरह गोली है जो चमड़ों और मांस-पेशियों से बनी हुई पलकों से घिरी रहती है। ये मांसपेशियाँ नेत्र-गोलक की ऊपरी सतह में होती हैं। इनकी संख्या छः हैं—चार सीधी और दो तिरछी। नेत्र-गोलक की दीवार में तीन तहें होती हैं। बाहर से भीतर की ओर इन तहों के नाम इस प्रकार हैं—

(क) श्वेत-पटल और कनीनिका, (ख) मध्य-पटल और उपतारा,

(ग) अन्तरीय पटल, रेटीना।



आँख के अन्दर का एक दृश्य

[(१) ताल, (२) स्वच्छ द्रव्य, (३) दृष्टि-नाड़ी मिलने का स्थान। यहीं पर काला धब्बा होता है। इनकी दूसरी तरफ दोनों लाइनों के बीच पीत-विन्दु रहती है।]

(क) श्वेत-पटल और कनीनिका— यह रेशेदार मोटी तह है और नेत्र के $\frac{5}{6}$ भाग पर फैली रहती है। यह पारदर्शी कनीविका से मिली रहती है। कनीनिका का रंग भूरा या काला दिखाई पड़ता है, उपतारा के कारण। श्वेत-पटल के पीछे दृष्टि-स्नायु लगी होती है और बाहरी भाग में कई छोटी-छोटी मांसपेशियाँ लगी होती हैं जो नेत्र-गोलक की गति में सहायता देती हैं।

(ख) मध्य-पटल और उपतारा— यह काली-भूरी झिल्ली है जो श्वेत-पटल के नीचे और उससे विलकुल मिली होती है। इसमें जोड़ने वाले तन्तु होते हैं जिनके अन्दर खून की पतली नालियाँ और रंग देने वाले सेल होते हैं। इस पटल का काम है आँख की कोठरी को अन्धकारमय बनाये रखना, जिससे अन्दर आने वाले प्रकाश द्वारा स्नायु पीछे से मिलती है। सामने की ओर यह उपतारा नामक परदे से मिल जाता है। उपतारा से मिलने के कुछ पहले मध्य-पटल के भीतरी भाग में कई उभरी तहें होती हैं और मध्य-पटल की

बाहरी सतह पर घेराकार शक्ल की मांसपेशी होती है, जिसे सिलियरी-पेशी कहते हैं। इसके सिकुड़ने से आँख की ताल बाहर की ओर उभरी हो जाती है।

उपतारा कनीनिका के कुछ पीछे रहता है जिसके बीच में एक छोटा छिद्र रहता है, जिसे पुतली कहते हैं। पुतली के चारों ओर गोलाई में मांसपेशियाँ रहती हैं, जिनके सिकुड़ने या फैलने से पुतली सिकुड़ या फैल जाती है। भिन्न-भिन्न जाति और मनुष्यों की आँखें भिन्न-भिन्न रंग की होती हैं। यह भिन्नता उपतारा के कारण होती है।

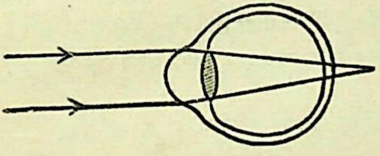
(ग) रेटीना—यह दृष्टि-स्नायु का ही आगे का बढ़ा हुआ भाग है। यह नेत्र-गोलक के भीतरी भाग के $\frac{2}{1}$ हिस्से में फैला हुआ है। जहाँ पर दृष्टि-स्नायु प्रवेश करती है उस स्थान को काला धब्बा कहते हैं। रेटीना के ठीक बीच में एक पीला धब्बा है जिसे पीत-विन्दु कहते हैं, इस भाग में दृष्टि बहुत तेज होती है। खुर्दबीन से देखने पर रेटीना में असंख्य तहें दिखाई पड़ेंगी, जिनमें डण्डों की तहें और सूचियों की तहें मुख्य हैं। ये प्रकाश से बहुत प्रभावित होते हैं और दृष्टि-स्नायु की दृष्टि का प्रभाव मस्तिष्क तक पहुँचाने में सहायक होते हैं।

प्रकाश की किरणें रेटीना पर केन्द्रीभूत होना आवश्यक है, अगर हम किसी चीज को देखना चाहते हैं। लेकिन प्रकाश जब तक उचित माध्यम से वर्त्तित होकर अन्दर न जाय, प्रकाश रेटीना पर केन्द्रीभूत नहीं हो सकता। जब आँख में प्रकाश की किरणें आती हैं तो वे वर्त्तित करने वाले माध्यम (कनीनिका, जलीय रस, ताल और स्वच्छ द्रव्य) से होकर एक स्थान में केन्द्रीभूत होती हैं। यहाँ से इसका प्रभाव दृष्टि-स्नायु द्वारा मस्तिष्क को पहुँचता है, जहाँ से वस्तुओं के रंग, आकार इत्यादि का ज्ञान होता है। रेटीना पर किसी वस्तु का आकार उल्टा पड़ता है पर उसका अनुभव मस्तिष्क सीधा करता है।

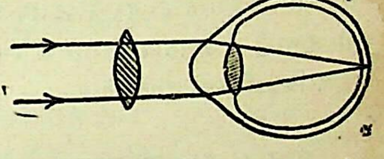
प्रश्न ४. दृष्टिदोष के कितने भेद हैं? प्रत्येक का संक्षिप्त विवरण देते हुए यह बतायें कि इनसे मुक्ति कैसे होती है?

उत्तर— दृष्टिदोष कई तरह के होते हैं जिनमें निम्नलिखित प्रमुख हैं—

(i) दूर-दृष्टिदोष— कुछ व्यक्तियों का अक्षिगोलक सामने से पीछे की ओर स्वाभाविक आँखों की अपेक्षा छोटा होता है। ऐसी अवस्था में दूर से आयी हुई समानान्तर प्रकाश-किरणें श्याम पर्त से पाछे केन्द्रीभूत होती हैं। फलतः वस्तु-विशेष का श्याम पर्त पर अस्पष्ट प्रतिबिम्ब बनता है, अनुकूलन बिना वस्तु-विशेष धुँधली दिखाई पड़ती है। वस्तुविशेष को नजदीक लाने पर भी अनु-कूलन बिना कोई सुधार नहीं होता। वस्तुविशेष अस्पष्ट ही बना रहती



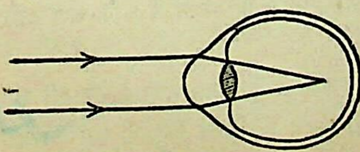
दूर का प्रतिबिम्ब नेत्रपट के पीछे पड़ता है



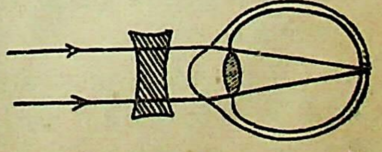
प्रतिबिम्ब नेत्रपट पर बनता है

है। समीप की वस्तु को देखने के लिए आँखों पर और भी जोर लगाना पड़ता है, फलतः पढ़ते समय सिर में दर्द होने लगता है। व्यक्तिविशेष पुस्तक को दूर रखकर पढ़ने का प्रयत्न करता है। ऐसे दोष को दूर-दृष्टिदोष (Hyper-metropic) कहते हैं। ऐसा दोष, उन्नतोदर ताल (Convex lens) के बने चश्मे के व्यवहार से दूर किया जा सकता है।

(ii) निकट-दृष्टिदोष— निकट-दृष्टिदोष-युक्त व्यक्ति भले ही समीप की चीजों को स्पष्ट रूप के देख पायें, लेकिन दूर की चीजों को स्पष्ट रूप से वे नहीं देख पाते। दूर की वस्तुओं को स्पष्ट रूप से देखने के लिए उन्हें वस्तु को



(दूर का प्रतिबिम्ब नेत्रपट के सामने बनता है)



(दूर का प्रतिबिम्ब नेत्रपट पर बनता है)

समाप लाना पड़ता है। ऐसा दोष अक्षिगोलक में दोष होने के कारण होता है। अक्षिगोलक सामने से पीछे की ओर अपेक्षाकृत अधिक लम्बा हो जाता है।

फलतः प्रकाश की किरणें श्याम पर्त के सामने ही केन्द्रीभूत हो जाती हैं, वस्तु-विशेष अस्पष्ट दिखाई पड़ती है। ऐसे दोष को निकट-दृष्टिदोष (Myopic) कहते हैं। ऐसा दोष नतोदर ताल (Concave lens) के बने चश्मे के व्यवहार से दूर होता है।

(iii) वृद्धावस्था-दृष्टिदोष— ज्यों-ज्यों बुढ़ापा आता जाता है, त्यों-त्यों कनीनिका और भी अधिक उन्नतोदर होती जाती है। साथ ही ताल का लचीलापन भी घटता जाता है, फलतः अनुकूलन की क्षमता घट जाती है। ऐसी अवस्था में व्यक्ति को दूर-दृष्टिदोष जैसा वृद्धावस्था-दृष्टिदोष (Presbyopic) हो जाता है। उन्नतोदर तालों के बने चश्मे के व्यवहार से वस्तु अपेक्षाकृत साफ दिखाई पड़ने लगती है।

प्रश्न ५. कान की रचना और इसके कार्यों का वर्णन करें।

उत्तर— कान के तीन भाग होते हैं—(i) बाहरी कान, (ii) मध्य कान, (iii) भीतरी कान।

(i) बाहरी कान – इसके दो भाग हैं। एक वह भाग जो सीपी की तरह रहता है और जिसमें छेद करा कर औरतें बालियाँ पहनती हैं। नीचे की ओर को छोड़कर यह कार्टिलेज का बना होता है। दूसरा वह भाग है जिसे कान की नली कहते हैं। यह नली लगभग १$\frac{1}{8}$ इंच लम्बी होती है। यह टेढ़ी-मेढ़ी घूमकर कान की ढोल तक पहुँचती है। इस नली में एक पतली खाल का स्तर लगा रहता है, जिसमें छोटी-छोटी गिल्टियाँ रहती हैं। इनसे कान का मैल निकलता है। इसमें छोटे-छोटे बाल भी होते हैं जो कान में धूलि-कण नहीं जाने देते है।

(ii) मध्य कान — यह एक छोटी-सी कोठरी है। यह सम्पूर्ण कनपट्टी की हड्डियों के भीतर रहती है। इसमें सभी जगह श्लैष्मिक झिल्ली लगी रहती है जो हवा से भरी होती है। इसकी बाहरी दीवार कर्णपटल है और भीतरी दीवार में दो छेद हैं—एक अण्डाकार और दूसरा गोल। बाकी दीवारें, छत और फर्श कनपट्टी की हड्डियों से बनती हैं। इसके सामने की दीवार में एक

नली का मुँह रहता है। इस नली द्वारा मध्य कान का कण्ठ से सम्बन्ध रहता है। कर्णपटल से लेकर भीतरी दीवार तक तीन छोटी-छोटी हड्डियाँ हैं —(क) मुग्दर, (ख) नेहाई, (ग) रकाब, जो क्रमशः फैली हुई हैं और आपस में बँधी हैं। इनके सहारे कर्णपटल पर पहुँचती हुई आवाज की लहरें भीतरी कान तक पहुँचती हैं।

(iii) भीतरी कान— भीतरी कान की बनावट बहुत जटिल है। इसलिए, इसे घूमघुमैया भी कहते हैं। यह हड्डियों का बना है, पर विशेषता यह है कि हड्डियों के बने घूमघुमैया के अन्दर झिल्ली का घूमघुमैया है। इसके अन्दर तरल पदार्थ भरा रहता है।

कान के कार्य— जिस समय ध्वनि-लहरों से रकाब नामक हड्डी की जड़ में कम्पन होता है, उसके साथ ही वह झिल्ली भी हिलती है, जिससे हड्डी लगी होती है। इसलिए, झिल्ली की दूसरी ओर भीतरी कान का तरल पदार्थ भी प्रकम्पित हो जाता है, जिससे शब्द-तरंगे भीतरी कान की कर्ण-कुटी, कोकिला द्वारा होती हुई श्रवण-स्नायुओं को उत्तेजित करती हैं। इसी से मस्तिष्क तक प्रेरणाएँ पहुँचती हैं तथा आवाज का बोध होता है। जब कोई ध्वनि उत्पन्न होती है तो वह ११२० फुट प्रति सेकेण्ड के हिसाब से ध्वनि-लहर के रूप में वायुमण्डल की प्रत्येक दिशा में फैल जाती है। ये लहरें बड़ी तेजी से कान के उपर्युक्त अवयवों को प्रभावित करती हुई मस्तिष्क को ध्वनि का बोध देती हैं और हम सुनते हैं।

कान का कार्य आस-पास की हवा में उपस्थित ध्वनि-तरंगों को ग्रहण कर उसकी अनुभूति मस्तिष्क तक पहुँचाना है।

प्रश्न ६. कान की बनावट का वर्णन करें। बहरेपन के मुख्य कारण क्या हैं?

उत्तर— कान की बनावट— प्रश्न ५ का उत्तर देखिए।

बहरेपन के मुख्य कारण— (i) कान से पीब निकलना।

(ii) कान को किसी चीज से कुरेदने से अथवा मध्यकर्ण के रोग से कर्ण-पटल का फट जाना।

(iii) गले के सूजन के कारण गले और कान के बीच की नली का बन्द हो जाना।

(iv) श्रवण-स्नायुओं का दोषपूर्ण होना।

भाग २

स्वास्थ्य-विज्ञान

अध्याय १

हवा (वायु)

प्रश्न १. वायु किन-किन पदार्थों के योग से बनी है?

उत्तर— वैज्ञानिकों ने जाँच करके पता लगाया है कि वायु एक मिश्रण है। इसमें निम्नलिखित प्रमुख गैसें अधोलिखित परिमाण में वर्त्तमान हैं—

(i) नाइट्रोजन— ७९·०० प्रतिशत।

(ii) आक्सीजन— २०·९६ प्रतिशत।

(iii) कार्बन-डायक्साइड – ०·०४ प्रतिशत।

(iv) जलवाष्प— अनिश्चित परिमाण में।

उपर्युक्त पदार्थों के अतिरिक्त धूल के कण, कपड़े के रेशे, रोगों के जीवाणु इत्यादि भी वायु में वर्त्तमान रहते हैं। मौसम तथा स्थान के भेद से जलवाष्प तथा धूल के कणों की मात्रा में भेद होता है, लेकिन प्राकृतिक वायु-स्थित मूल गैसों के अनुपात में शायद ही उल्लेखनीय भेद पाया जाता है।

प्रश्न २. हमारे जीवन के लिए शुद्ध वायु का क्या महत्त्व है ?

उत्तर— हवा जीवन के लिए अत्यधिक आवश्यक है। स्वास्थ्य के साथ इसका घना सम्बन्ध है। शुद्ध वायु से स्वास्थ्य सुधरता है एवं शरीर का बल बढ़ता है। जहाँ की हवा शुद्ध रहती है वहाँ शरीर को पर्याप्त आक्सीजन मिलता है जिससे शरीर की सभी क्रियाएँ पूर्ण और उत्तम प्रकार से होती हैं। इससे रक्त शुद्ध होता है, रक्त का प्रवाह अबाध होता है, पाचन-रस उत्तमता से बनता है, शरीर पुष्ट होता है, बल बढ़ता है और रोगनिरोध-क्षमता बढ़ती है। इससे रोग जल्दी नहीं होने पाते तथा आयु बढ़ती है।

प्रश्न ३. शुद्ध वायु की बनावट क्या है ? वायु की साधारण गन्दगियाँ कौन-कौन-सी हैं और वे कैसे उत्पन्न होती हैं ?

उत्तर—वायु की बनावट— पहले प्रश्न का उत्तर देखें।

वायु की गन्दगियाँ— वायु में पायी जाने वाली अशुद्धियों में मुख्य ये हैं -(क) कार्बन-डायक्साइड, (ख) जल-वाष्प, (ग) धूल के कण, रोगों के जीवाणु, रूई के रेशे, विष्ठा के कण, कोयले के कण, (घ) दूसरी-दूसरी चीजें इत्यादि।

(क) कार्वन-डायक्साइड— यह छोटे कमरे में अधिक लोगों के रहने से, पेशाब, पाखाना, कारखानों के विषाक्त जल, कोयले के धुएँ इत्यादि से उत्पन्न होता है। साधारणतः, वायुमण्डल में इसकी मात्रा ·०४ प्रतिशत होनी चाहिए। लेकिन जब हवा में इसकी मात्रा ७ प्रतिशत हो जाती है तो हम उसे बर्दाश्त नहीं कर सकते।

(ख) जल-वाष्प— वर्षा के बाद आसमान में बादल घिर आने से वायु-मण्डल में जल वाष्प की मात्रा अधिक हो जाती है तथा शरीर से पसीना पर्याप्त रूप से नहीं निकलता। फल यह होता है कि शरीर की रोगनिरोध-क्षमता जाती रहती है।

(ग) धूल के कण— लीद के टुकड़े, विष्ठा के कण, कोयले के कण, जलवायु, स्थान और मौसम-विशेष में कम या अधिक पाये जाते हैं। इनकी

मात्रा अधिक होने से वायु स्वास्थ्य के लिए हानिकारक हो जाती है। कारखाने वाले इलाकों में चिमनी से निकलने वाले गैस के कारण कार्बन-कणों की मात्रा हवा में बहुत ही बढ़ जाती है।

(घ) दूसरे-दूसरे गैस — कार्बन मोनोक्साइड एक जहरीली गैस है। साँस में अगर यह गैस चली जाती है तो आदमी की मृत्यु हो जाती है। कल-कारखाने वाले स्थान में सल्फरडायक्साइड, अमोनिया, सलफ्युरेटेर्ड हाइड्रोजन इत्यादि रहते हैं। ये मनुष्य के लिए हानिकारक हैं।

प्रश्न ४—वायु दूषित होने के विभिन्न कारणों का उल्लेख करें तथा यह बतायें कि दूषित वायु से क्या हानि होती है ?

उत्तर — वायु निम्नलिखित कारणों से दूषित होती है—

(i) कार्बन-डायक्साइड की वृद्धि— साधारणतः हवा में कार्बन-डायक्साइड की मात्रा ·०४ प्रतिशत होनी चाहिए। इससे अधिक मात्रा होने पर हवा दूषित हो जाती है। इसकी मात्रा में वृद्धि होने के निम्नलिखित कारण हैं —

(क) किसी ऐन्द्रिक पदार्थ का जलना— उदाहरणार्थ, घर में दीया, लकड़ी, लालटेन, उपले इत्यादि के जलने से।

(ख) कुछ ऐन्द्रिक वस्तुओं का सड़ना—जैसे, मरे हुए जीव-जन्तु तथा वनस्पतियों के सड़ने से।

(ग) प्रश्वास— किसी स्थान पर अधिक लोगों के रहने और वातायन की समुचित व्यंवस्था नहीं रहने से वहाँ की वायु दूषित हो जाती है। जैसे वर्ग-कक्ष, सिनेमा-घर, प्रतीक्षालय, मुसाफिरखाना इत्यादि।

(ii) जलवाष्प की वृद्धि— वर्षा के बाद आसमान में बादल घिर आने से वायुमण्डल में जलवाष्प की मात्रा अधिक हो जाती है। फलतः वायु दूषित हो जाती है।

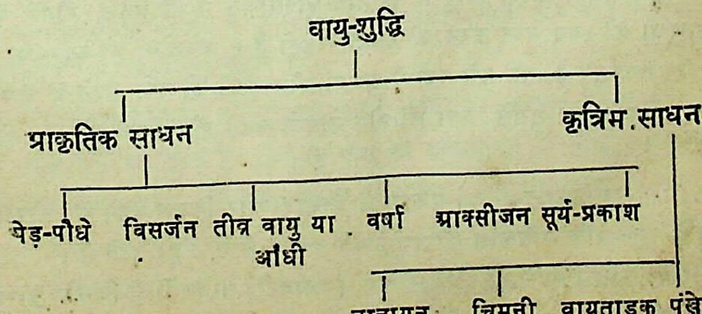
(iii) धूल के कणों की वृद्धि—लीद के टुकड़े, विष्ठा के कण, कोयले के कण, रूई के रेशे इत्यादि की मात्रा अधिक रहने से वायु अशुद्ध मानी जाती है। ये कण श्वास के साथ फेफड़े में पहुँचकर हानि पहुँचाते हैं।

(iv) दूसरे-दूसरे गैसों की उपस्थिति—कार्बन-डायक्साइड के अतिरिक्त अन्य गैसों जैसे कार्बन-मोनोक्साइड, अमोनिया, ओजोन, सल्फर डायक्साइड इत्यादि की उपस्थिति से भी वायु दूषित हो जाती है।

दूषित वायु से हानि—दूषित वायु से अधिक हानि होती है। कमरे की वायु में आक्सीजन की कमी या कार्बन-डायक्साइड या कार्बन-मोनोक्साइड की वृद्धि या अन्यान्य जहरीली गैसों की उपस्थिति से व्यक्तिविशेष का सिर दर्द करने लगता है, उसे मतली आने लगती है, साँस लेने में तकलीफ होने लगती है और अन्त में मूर्च्छा आ जाती है। प्रायः कार्बन-मोनोक्साइड की अधिकता से, जहाँ बन्द कमरे में अँगीठी जलाकर सोने की परिपाटी है, लोगों की मृत्यु हो जाती है। अधिक काल तक दूषित वायु में रहने से फेफड़ों में सूजन, क्षय आदि रोगों के होने का भय रहता है।

प्रश्न ५. दूषित वायु किस प्रकार शुद्ध होती है? समझाकर लिखें।

उत्तर—दूषित वायु के शुद्ध होने के निम्नलिखित कारण हैं—



(क) प्राकृतिक साधन —

(i) पेड़-पौधे— वायु शुद्ध होने के जितने भी प्राकृतिक साधन हैं, उनमें पेड़-पौधे प्रमुख हैं। पेड़-पौधों की पत्तियाँ तथा इनके अन्यान्य हरे भाग वायु-मण्डल के कार्बन-डायक्साइड में से कार्बन को ग्रहण कर आक्सीजन को मुक्त कर देते हैं। इस प्रकार ये वायु को शुद्ध कर इसका संतुलन बनाये रखते हैं। यह कार्य वृक्षों की पत्तियों में उपस्थित क्लोरोफिल द्वारा सूर्य के प्रकाश की उपस्थिति में होता है, रात्रि के समय नहीं।

(ii) विसर्जन— जहाँ एक गैस वायु में अधिक मात्रा में उपस्थित होती है, वह वहाँ से उस स्थान पर चली जाती है जहाँ उसकी मात्रा कम है। इस कारण वायु में जितनी भी गैसें पायी जाती हैं उनकी मात्रा सदा लगभग एक समान रहती है।

(iii) तीव्र वायु या आँधी— तेज हवा या आंधी से हवा की दुर्गन्ध अथवा उसमें उपस्थित गन्दे ठोस पदार्थ—जैसे धूल के कण, रोग के कीटाणु, विष्ठा के कण इत्यादि—वायुमण्डल में फैलकर एक स्थान से दूसरे स्थान में चले जाते हैं। इस तरह हवा की गन्दगी कुछ कम हो जाती है।

(iv) वर्षा— दोष के रूप में वर्त्तमान धूल के कण, अमोनिया, सल्फर-डायक्साइड तथा अन्यान्य घुलनशील गैसें, वर्षा के जल में घुलकर पृथ्वी पर चली जाती हैं। इन दूषित पदार्थों के हट जाने से वायु शुद्ध हो जाती है।

(v) आक्सीजन— वायु में वर्त्तमान आक्सीजन में भी अनेक रोगों के कीटाणुओं को स्वयं नष्ट करने की क्षमता रहती है। ओजोन, जो आक्सीजन का ही रूपान्तर है, सड़े-गले पदार्थों अथवा जीवाणुओं को नष्ट करने में बड़ा प्रबल होता है। इससे हवा की रोग उत्पन्न करने की शक्ति बहुत कम हो जाती है।

(vi) सूर्य-प्रकाश— सूर्य-प्रकाश में अल्ट्रावायलेट किरण रहने के कारण वायु में रहने वाले अधिकांश कीटाणु उसके प्रभाव से नष्ट हो जाते हैं।

(ख) कृत्रिम साधन— अप्राकृतिक (बनावटी) साधन वे हैं जिनके द्वारा कमरे की अशुद्ध वायु बाहर निकाली जाती है और वहाँ (कमरे में) शुद्ध वायु

बाहर से धकेली जाती है। उदाहरण के लिए, किसी स्कूल के बीच में स्थित उस हॉल को लें जिसके चारों ओर कमरे हैं। ऐसी स्थिति में उस हॉल में आमने-सामने खिड़कियाँ नहीं हो सकतीं और वायु-गमनागमन का प्राकृतिक ढंग से आवश्यक प्रबन्ध हो ही नहीं सकता। अतः वहाँ बनावटी ढंग से हवा के प्रवेश कराने और निकालने का प्रबन्ध किया जाता है। इसके लिए निम्न-लिखित तरीके अपनाये जाते हैं—

(i) निष्कासन-पंखे (हवा फेंकने वाले पंखे Exhaust Fans) के द्वारा गर्म, आर्द्र और बासी हवा बाहर निकाली जाती है। इस प्रकार जब कमरे में हवा का दबाव कम हो जाता है तो बाहर की स्वच्छ हवा भीतर आ जाती है।

(ii) प्लेनम या प्रोपलसन के तरीके से भी मशीन द्वारा बहुत ऊँचाई से स्वच्छ हवा बिजली के पंखे द्वारा कमरे में लायी जाती है।

(iii) शीत-ताप-नियन्त्रण (Air conditioning) द्वारा भी समुचित हवा के प्रवेश तथा निकास का प्रबन्ध कर सकते हैं।

E.P.H.

प्रश्न ६. वायु-गमनागमन से क्या समझती हैं? इसकी क्या आवश्यकता है?

उत्तर— वायु का गमनागमन— दूषित वायु को कमरे से निकालने तथा शुद्ध वायु को कमरे में प्रवेश कराने वाली क्रिया को वायु का गमनागमन (Ventilation) कहते हैं।

वायु-गमनागमन की आवश्यकता— वायु का स्वास्थ्य से गहरा सम्बन्ध है। हमलोगों को साँस लेने के लिए वायु की आवश्यकता होती है। शुद्ध वायु के अभाव में मतली, सिर-दर्द, जुकाम, निमोनिया, यक्ष्मा इत्यादि रोग हो जाते हैं। वायु-गमनागमन से ही हम शुद्ध हवा प्राप्त करते हैं। इसी से हम स्वस्थ रहते हैं और रोगों से बचते हैं। अतः वायु-गमनागमन की आवश्यकता अनिवार्य है।

E.P.H.

प्रश्न ७. वायु-गमनागमन के कितने तरीके हैं? संक्षेप में उनका वर्णन करें। अनुचित वायु-गमनागमन से क्या हानि होती है?

उत्तर— वायु-गमनागमन के साधनों को दो भागों में बाँटा जा सकता है— (क) प्राकृतिक साधन और (ख) कृत्रिम साधन।

(क) प्राकृतिक साधन — (i) गैस का प्रसरण (Diffusion)— इस गुण के कारण वायु के अवयव आपस में मिल-जुल जाते हैं। यह क्रिया अत्यन्त सूक्ष्म छिद्रों से ही हो सकती है। प्रसरण के कारण कमरे की हवा में उपस्थित कार्बन-डायक्साइड बाहर निकलता है और आक्सीजन कमरे के अन्दर आता है।

(ii) तापक्रम के कारण गैसों में होने वाला प्रसार— कमरे की गर्म हवा फैलकर कमरे के बाहर निकलने लगती है। गर्म हवा का घनत्व कम होता है, भीतर एवं बाहर की हवाओं के घनत्वों में भिन्नता प्रसरण को साहाय्य प्रदान करती है।

(iii) वायु का चलना— विभिन्न प्राकृतिक शक्तियों के प्रभाव से वायु बहुधा गतिशील होता है, कभी-कभी तो वह अत्यन्त तीव्र गति से चलती है। वायु की यह गति वायु के गमनागमन में प्रमुख भाग लेती है।

(iv) वायु के तापक्रम में भिन्नता के कारण उत्पन्न कन्वेक्शन प्रवाह— वायु-गमनागमन का सबसे प्रमुख साधन—यह वायु की वह गति है जो तापक्रम की भिन्नता के कारण वायु के भार एवं घनत्व में भेद आ जाने से उत्पन्न हो जाती है। कमरे के भीतर की वायु बाहर की वायु की अपेक्षा गर्म तथा हल्की होती है। यदि कुछ मनुष्य एक कमरे में बैठते हैं तो उनके श्वास तथा शरीर से निकलनेवाली गर्मी से आस-पास की वायु गर्म हो जाती है। फलतः, वह आस-पास की वायु फैलकर हल्की हो जाती है और ऊपर की ठंढी वायु कमरे में प्रवेश करने लगती है। इसलिए यह आवश्यक है कि कमरे की हवा में गति हो। इसके लिए वायु-प्रवेश-द्वार और वायु-निकास-द्वार आमने-सामने रहना आवश्यक है। गर्म हवा को बाहर निकालने के लिए छत में छेद होना चाहिए अथवा दीवार के ऊपरी भाग में रोशनदान (Skylight) होना आवश्यक

है। इससे कमरे की गर्म अशुद्ध हवा हल्की होकर ऊपर की ओर जाती है और छत के पास स्थित निकास-द्वारों से निकल जाती है।

(v) चिमनियाँ— वायु के प्रसार और गतिशीलता के गुणों के आधार पर शीतप्रधान देशों में कमरों में चिमनियाँ बनायी जाती हैं। इन चिमनियों से भी दोहरा लाभ है। चिमनी के नीचे वाले भाग में लकड़ी या कोयला जलाया जाता है जिससे कमरा गर्म रहता है। साथ ही, यह कमरे में परिवहन-धारा की सृष्टि भी करता है। गर्म हवा चिमनी होकर ऊपर जाती है, फलतः रिक्त स्थान को भरने के लिए कमरे के अन्दर बाहर से शुद्ध हवा आती है। चिमनी के ऊपर वाले भाग से होकर वायु के चलने से इसके भीतर चूषण-क्रिया उत्पन्न हो जाती है जिससे और भी अधिकाधिक मात्रा में गर्म हवा चिमनी से होकर ऊपर उठती है। इससे वायु-गमनागमन के प्रसाधन में और भी मदद मिलती है।

(vi) दोहरी काँच की खिड़कियाँ— उन देशों में जहाँ अधिक ठंढक पड़ती है, जैसे — नार्वे, स्वाडन, रूस में दोहरी काँच की खिड़कियाँ कमरों में बनायी जाती हैं। वायु को भीतर आने के लिए प्रवेश-द्वार कमरे के फर्श के पास होते हैं। वहाँ से वायु एक ऐसे कमरे में जाती है जहाँ गरम जल के नल रहते हैं या अग्नि प्रज्वलित होती है। यहाँ वायु गरम होकर भिन्न-भिन्न मार्ग द्वारा मकान के कमरों में उसके फर्श के पास पहुँचती है और अशुद्ध वायु कमरे से बाहर हो जाती है।

(ख) कृत्रिम साधन— वायु-गमनागमन के कृत्रिम साधन बहुत-से हैं। आवश्यकतानुसार इनमें से किसी एक या एक से अधिक का, किसी समय व्यवहार किया जाता है। इन सभी साधनों के द्वारा कमरे की दूषित वायु बिजली के पंखों या अन्य विधियों द्वारा बाहर निकाल दी जाती है और बाहर की शुद्ध वायु कमरे के अन्दर लायी जाती है। साधारणतः सिनेमा, थियेटर आदि के घरों में तथा कारखानों और गहरी खानों में ऐसी वायु-गमनागमन की व्यवस्था की जाती है।

(i) वायुताड़क पंखे — प्रायः साधारण सिनेमा-घरों में, छतों के सुराखों में बिजली के वायुताड़क पंखे (Exhaust fan) लगे रहते हैं, जिनके द्वारा घर की दूषित वायु और भी शीघ्रता से बाहर निकल जाती है। शुद्ध वायु के आने के लिए फर्श के समीप दीवारों में छिद्र बने रहते हैं, जिनके द्वारा शुद्ध वायु घर में प्रवेश करती रहती है।

(ii) वैक्यूअम पम्प—बड़े-बड़े कारखानों में वायुशून्यक पम्प (Vacuum pump) लगे रहते हैं, जो बाहर से शुद्ध वायु खींचकर कारखानों के अन्दर लाते रहते हैं। आज के बिजली के युग में ये क्रियाएँ सहज ही विद्युत्-चालित मोटरों के द्वारा सम्पादित होती हैं।

(iii) शीत-ताप-नियन्त्रण (Air conditioning)— शीत-ताप-नियन्त्रण द्वारा भी समुचित हवा के प्रवेश तथा निकास का प्रबन्ध कर सकते हैं। इसकी एक मशीन होती है जिसके सहारे हॉल में हवा की गति, हवा की आर्द्रता तथा हवा का तापक्रम नियन्त्रित होता है।

(iv) अन्य प्रकार के पंखे — बिजली के पंखों एवं हाथ से खींचने वाले पंखों का भी प्रबन्ध कमरों में रहता है जो वायु के गमनागमन के लिए जरूरी हैं। ये पंखे बाहर से वायु को भीतर भेजते हैं और भीतर की दूषित वायु को बाहर निकालते हैं।

अनुचित वायु-गमनागमन से हानियाँ— हवा के समुचित प्रवेश-द्वार और निकास-द्वार के अभाव में कमरे की हवा गर्म हो जाती है। कमरे की हवा में कार्बन-डायक्साइड गैस अधिक होती है। सिनेमा-हॉल में इस प्रकार का वायुमण्डल मालूम पड़ता है। इसी से सिर-दर्द, सिर में चक्कर आना, जी मिचलाना, मूर्च्छा, वमन, सुस्ती तथा अतिसार का रोग हो जाता है। कार्बन-डायक्साइड की मात्रा $7\frac{1}{2}$ प्रतिशत हो जाने से जीवधारी को जीना मुश्किल हो जाता है। कमरे की हवा गर्म हो जाने से शरीर की गर्मी नहीं निकलती है।

जब हवा में जल-वाष्प की मात्रा अधिक हो जाती है तो शरीर का

पसीना नहीं सूखता है और भीतर बेचैनी मालूम होती है। कभी-कभी मन्दाग्नि, अपच और वमन इत्यादि रोग हो जाते हैं।

ऐसे स्थान में निवास करने वाले की रोगनिरोध-क्षमता नष्ट हो जाती है। अन्त में ऐसे-ऐसे भयंकर रोग हो जाते हैं कि संतान कमजोर हो जाती है, शरीर दुबला हो जाता है, खून के अभाव से शरीर शक्तिहीन हो जाता है और आस-पास के लोगों में संक्रामक रोग फैलता है।

अध्याय २

जल

प्रश्न १. जल की बनावट का वर्णन कीजिए। शुद्ध जल के क्या गुण हैं?

उत्तर—जल की बनावट—हमारे प्राचीन मनीषियों ने जल को 'तत्त्व' की संज्ञा प्रदान की थी, लेकिन वास्तव में यह तत्त्व नहीं है, बल्कि आक्सीजन और हाइड्रोजन का एक साधारण यौगिक है। इसमें आयतन के विचार से दो भाग हाइड्रोजन और एक भाग आक्सीजन हैं। विद्युत् द्वारा जल के तत्त्वों का विघटन कर हम इस तथ्य की सहज ही जाँच कर सकते हैं।

शुद्ध जल के लक्षण—शुद्ध जल देखने में साफ और पारदर्शी होता है। इसका कोई रंग, गंध या स्वाद नहीं होता है। शुद्ध जल को वाष्पीभूत करने पर इसमें कुछ अवशेष नहीं रहता है। इसके हिमांक और क्वथनांक क्रमशः शून्य और एक सौ अंश सेण्टीग्रेड रहते हैं। एक घन सेण्टीमीटर शुद्ध जल की तौल एक ग्राम होती है।

प्रश्न २. शुद्ध जल का क्या महत्त्व है?

उत्तर— प्राणिमात्र के लिए हवा के वाद सवसे आवश्यक वस्तु पानी है। स्वास्थ्य से इसका घनिष्ठ सम्वन्ध है। शुद्ध जल से स्वास्थ्य अच्छा रहता है और अशुद्ध जल से रोग उत्पन्न होने लगता है। संक्षेप में, जल की निम्नलिखित आवश्यकताएँ हैं—

(i) जल के सहारे भोजन पचता है।

(ii) पचा हुआ पदार्थ इससे घुलकर रक्त में मिल जाता है।

(iii) यह रक्त को द्रव (Liquid) की अवस्था में बनाये रखता है जिससे यह सहज ही रक्त-वाहिनियों द्वारा प्रवाहित होता है।

(iv) शरीर के तापक्रम को यह नियंत्रित करता है।

(v) हमारे शरीर के तंतुओं को मुलायम और सक्रिय बनाये रखता है।

(vi) शरीर के विकारों को अपने में घुलाकर यह पेशाब और पसीने के रूप में उन्हें बाहर निकाल देता है।

(vii) यह प्यास बुझाता है। इस रूप में यह अद्वितीय है।

(viii) यह शरीर के रक्त को संतुलित अवस्था में रखता है।

प्रश्न ३. जल दूषित कैसे होता है?

उत्तर— प्रकृति से जो जल हमें प्राप्त होता है, वह शायद ही शुद्ध रहता है। उसमें विभिन्न प्रकार के घुलनशील लवण, गैस आदि घुले रहते हैं। जल में इन अपद्रव्यों की मात्रा इसकी प्राप्ति के साधनों पर निर्भर है। जल में मिले हुए अपद्रव्यों के कारण ही इसके स्वाद में भी अन्तर हो जाता है।

जल की अशुद्धियों को मोटे तौर से हम निम्नलिखित भागों में विभाजित कर सकते हैं—

(क) उपलाने वाली—सड़ी-गली पत्तियाँ, पौधे की जड़ें, कूड़ा-करकट, कीड़े-मकोड़े इत्यादि।

(ख) अवलम्बित— मिट्टी के बारीक कण, वालू आदि।

(ग) घुलनशील— विभिन्न प्रकार की गैसें तथा सोडियम, मैगनीसियम, कैलसियम इत्यादि के घुलनशील क्लोराइड, सल्फेट आदि लवण।

(घ) प्राणिज— नन्हें-नन्हें कीड़े-मकोड़े तथा रोगों के जीवाणु।

प्रश्न ४. दूषित जल पीने से कौन-कौन-सी बीमारियाँ हो सकती हैं?

उत्तर— दूषित जल पीने से निम्नलिखित बीमारियाँ होती हैं—

(i) जल में कोई ठोस चीज अनुघुल रहने पर साधारणतया उसे पीना संभव नहीं है। फिर भी, यदि उसे कोई पी ले तो उस ठोस वस्तु से कोई रोग नहीं होता है। यदि ऐसा जल बार-बार पीया जाय तो पेट भारी लगना, आँत में घाव हो जाना, अनपच होना, भूख नहीं लगना इत्यादि आरम्भ होने लगता है।

अघुलनशील ठोस के साथ जलवाहित रोगों के कीटाणु साधारणतः सटे रहते हैं। अतः ऐसा जल पीने से बीमार हो जाने का भय अधिक रहता है।

(ii) घुलित अजैव अशुद्धियाँ विभिन्न रोगों की सृष्टि कर सकती हैं। कैलसियम तथा मैगनीसियम के लवण, जो पानी को खारा कर देते हैं, रोग की सृष्टि नहीं करते, बल्कि वे पानी में सीसा (Lead) आदि अनिष्टकारी धातुओं को घुलने से रोकते हैं।

पानी में सीसा (Lead) रहने पर (0·00009%) मृत्यु हो सकती है। सीसायुक्त पानी बार-बार पीने से रक्त-क्षीणता (Anaemia), कोष्ठबद्धता (Constipation), पेट-दर्द (Colic), निउराइटिस (Neuritis), अवसाद (Depression), वृक्क के रोग (Renal diseases) इत्यादि होते हैं एवं अंत में मृत्यु होती है।

पानी में लोहे की मात्रा 0·00001% से अधिक रहने पर डिस्पेप्सिया (Dyspepsia), कोष्ठबद्धता आदि रोग होते हैं।

पानी में जस्ता (Zinc) यद्यपि ऐसी मात्रा में नहीं रहता है कि वह रोग की सृष्टि करे, फिर भी शहरों में इसके नल द्वारा पानी की आपूर्त्ति होने का कारण यह उल्लेख करना आवश्यक हो जाता है कि यह कोष्ठबद्धता की सृष्टि करता है।

नलकूप के पानी में कभी-कभी (जब Bauxite या Phosphatic स्तर से पानी लिया जाता है) फ्लोरीन (Fluorine) पाया जाता है। यह दाँतों को नष्ट कर देता है।

(iii) जल में जैव अशुद्धियाँ रहने पर हैजा, पेचिश, टायफायड, पारा-टायफायड, एपिडेमिक डायरिया (Epidemic diarrhoea) इत्यादि जलवाहित रोग होते हैं।

पोलिओ (Poliomyelitis) रोगग्रस्त व्यक्ति का मल मक्खी के द्वारा पानी में मिल जाने पर भी यह रोग होता है।

प्रश्न ५. दूषित जल को शुद्ध करने के कितने तरीके हैं? प्रत्येक का संक्षेप में वर्णन कीजिए।

उत्तर — जल की शुद्धि तीन क्रियाओं द्वारा होती है—(क) भौतिक क्रिया, (ख) रासायनिक क्रिया, (ग) यांत्रिक साधनों द्वारा।

(क) भौतिक क्रिया— (i) स्रवण— इसमें जल वाष्प में बदल जाता है जिससे नमक पानी से अलग हो जाता है तथा कीड़े आदि भी पानी गर्म करने पर मर जाते हैं। वाष्प ठंढी नली में जाता है और पानी में बदल जाता है। शुरू के पानी में अनेक गैसें रहती हैं, इसलिए उसे फेंक देना चाहिए। लेकिन यह पानी यथेष्ट नहीं रहता। यह पानी बिलकुल विशुद्ध होता है। इसलिए प्रयोगशाला में इसका प्रयोग होता है। लेकिन पीने योग्य पानी इस प्रकार निकालना कठिन है।

(ii) उबालना— जल को उबालने से उसकी अस्थायी कठोरता दूर हो जाता है, कीड़े आदि नष्ट हो जाते हैं, विषैली गैसें नष्ट हो जाती हैं। नमक भी पानी से अलग हो जाता है। इस प्रकार उबाला हुआ पानी शुद्ध और स्वाद-रहित होता है। किसी नये स्थान में पानी उबालकर ही पीना चाहिए।

(iii) छानना— जल में उपलाने वाली अशुद्धियों में सड़ी-गली पत्तियाँ, पौधों की जड़ें, कूड़े-करकट इत्यादि प्रधान हैं। यदि जल में अन्य प्रकार की

घुली हुई अशुद्धियाँ नहीं हों, तो जल की अशुद्धियों को दूर करने के लिए, पीने के पहले, जल को साफ कपड़े से छान लेना उचित है।

(iv) निथारना – जल की अवलम्बित अशुद्धियों में मिट्टी के नन्हे-नन्हे कण, बालू आदि प्रमुख हैं। ऐसे जल को थोड़े समय के लिए थिराने के लिए छोड़ देना चाहिए। ऐसा करने से अवलम्बित अशुद्धियाँ बरतन की तलेटी में बैठ जाती हैं और ऊपर का जल साफ हो जाता है।

(ख) रासायनिक क्रिया – इस विधि में निम्नलिखित रासायनिक पदार्थ काम में लाये जाते हैं। इस विधि से घुलनशील एवं अघुलनशील अशुद्धि दूर की जा सकती है। अघुलनशील अशुद्धि में खासकर रोग के कीटाणु इस विधि द्वारा नष्ट हो जाते हैं।

चूना— यह जल की कठोरता को दूर करता है और कीटाणुओं को मारता है। एक औंस प्रति गैलन के हिसाब से चूना डालना चाहिए।

फिटकिरी—यह भी जल की कठोरता को दूर करती है। ५ ग्रेन या ढाई रत्ती प्रति गैलन के हिसाब से इसे भी जल में डालना चाहिए।

निर्मली – यह एक वृक्ष का फल है। जिस बरतन में जल को स्वच्छ करना हो उसमें भीतर की ओर एक फल को भलीभाँति रगड़ दीजिए और उस बरतन में जल भर दीजिए। जल की सारी गन्दगी नीचे बैठ जायगी।

पोटाशियम परमैंगनेट (लाल पोटाश)—यह पानी में उत्पन्न रोग के जीवाणुओं को मारता है।

तूतिया – यह नीले वर्ण का एक रसायन है जिसके द्वारा जल में उगने वाले पतले-पतले पौधे (Algae) नष्ट किये जाते हैं।

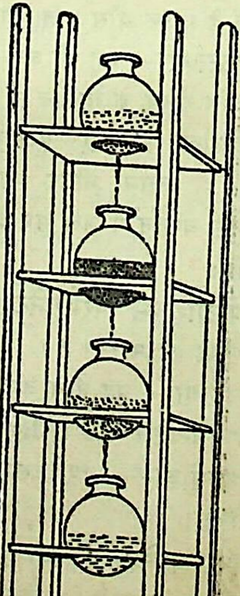
आयोडीन—यह रसायन भी कीटाणुओं को मारकर जल को शुद्ध करता है।

(ग) यान्त्रिक साधनों द्वारा जल की शुद्धि— फिल्टर के सहारे पानी साफ किया जाता है। फिल्टर दो प्रकार के होते हैं— (i) घर के लिए, (ii) जनता के लिए।

पहले प्रकार में छोटे-छोटे यन्त्र होते हैं जिनके द्वारा घर में पीने का पानी शुद्ध किया जाता है। पैस्चोर चैम्बरलैण्ड, वर्कफिल्ड इसी प्रकार के हैं।

पैस्चोर चैम्बरलैण्ड फिल्टर में दो बरतन रहते हैं। बाहर के बरतन में साफ पानी इकट्ठा होता है जो निचले हिस्से में लगे नल से बाहर निकाला जाता है। भीतरी बरतन में साफ करने का पानी रहता है। उसमें दो मिट्टी के वर्तुल लगे रहते हैं। इनका पतला सिरा बाहर के बरतन की ओर रहता है। अन्दर के वर्तुल का पानी बरतन की दीवार से छनकर वर्तुल में आता है और इस तरह छना हुआ पानी नीचे के छेद से बाहर के बरतन में इकट्ठा होता है। रोग के जीवाणु भी वर्तुलों की दीवार को पार नहीं कर सकते, अतः पानी पीने लायक हो जाता है।

वर्कफील्ड फिल्टर भी पैस्चोर चेम्बरलैण्ड फिलटर की तरह है, केवल अन्तर यही है कि इससे पानी तेजी से छनता है।



समय-समय पर वर्तुल अच्छी तरह ब्रश से साफ किया जाना चाहिए। इसे महीने में एक बार अवश्य साफ कर लेना चाहिए। अगर पानी बहुत गन्दा हो तो इससे साफ नहीं होता।

इस देश में चार घड़ों के द्वारा फिल्टर बनाकर पानी साफ करने की प्रथा है। घड़े लकड़ी की टिकठी पर रखे जाते हैं (चित्र में देखें)। ऊपर के तीन घड़ों के पेंदे में छेद होते हैं जिनसे सूत लटकाया जाता है। सबसे ऊपर के घड़े में पानी, उसके नीचे के घड़े में कोयला, उसके नीचे के घड़े में बालू रहता है। बालू से होकर जाने में पानी

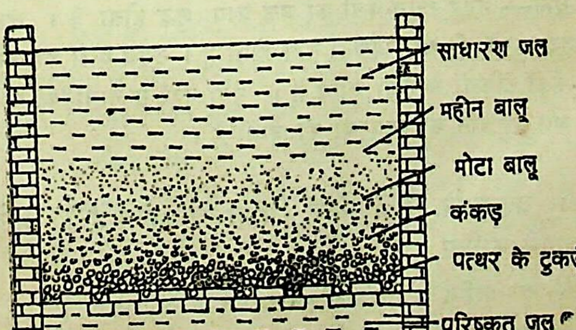
साफ हो जाता है और बूँद-बूँद नीचे के खाली घड़े में इकट्ठा होता रहता है।

नोट— शहरों की जलशुद्धि की विधि के लिए अगले प्रश्न का उत्तर देखें।

प्रश्न ६. शहरों में पीने के पानी का क्या प्रबन्ध किया जाता है ? समझाकर लिखिए।

उत्तर— गाँवों की अपेक्षा शहरों में जहाँ आबादी सघन है और लोगों को औसतन अधिक जल की आवश्यकता होती है, वहाँ के लिए पर्याप्त मात्रा में शुद्ध जल की प्राप्ति और उसका वितरण नगरपालिका करती है। साधारणत: प्रत्येक नगरपालिका में प्रत्येक व्यक्ति के लिए ३०-५० गैलन के हिसाब से जल की व्यवस्था करनी होती है और यह जल-प्राप्ति निम्नलिखित एक या एक से अधिक साधनों से होती है —

१. नदी,
२. बड़ा जलाशय (झील आदि),
३ ट्यूब-वेल (उथला और गहरा)।



नदी— नदी या अन्य जलाशयों से प्राप्त जल को पम्पों द्वारा पहले बड़ी-बड़ी निथारक टंकियों में लाकर कुछ समय के लिए निथरने के लिए छोड़

दिया जाता है जिससे बालू, मिट्टी आदि के कण नीचे बैठ जाते हैं। प्रायः इनके साथ कुछ जीवाणु भी जल के नीचे चले जाते हैं। साथ ही, सूर्य-प्रकाश और वायु-मिश्रित ओज़ोन (Ozone) के कारण कुछ और भी जीवाणु नष्ट हो जाते हैं।

निथारने वाली टंकियों से जल अब फिल्टर-वेड में जाता है। फिल्टर-वेड की बनावट बहुत ही साधारण है। इस टंकी के निचले भाग में क्रम से छोटे पत्थर, कंकड़, बालू इत्यादि की तीन फुट की तह रहती है, जिसके ऊपर बारीक बालू की परत रहती है। इस परत से गुजरते समय जल स्थित मिट्टी के कण, रोग के जीवाणु आदि छन जाते हैं और शुद्ध जल कंकड़ की सतह पर पहुँच जाता है।

रोग के जीवाणु, मिट्टी आदि के कण से मुक्त जल में अब क्लोरीन-जल नामक विसंक्रामक द्रव्य मिलाया जाता है, जिसके प्रभाव से बचे-बचाये रोग-जनक जीवाणु भी नष्ट हो जाते हैं। अब ऐसे अशुद्ध जल को पम्पों द्वारा नगर-स्थित ऊँची टंकियों में पहुँचाया जाता है। पुनः वहाँ से नलों द्वारा प्रत्येक घर में जल वितरित किया जाता है।

ट्यूब-वेल— गहरे ट्यूब-वेलों का जल प्रायः शुद्ध होता है। अतः ऐसे जल को शुद्ध करने की आवश्यकता नहीं होती है। ट्यूब-वेलों का जल पम्पों द्वारा ऊँची-ऊंची टंकियों में भेजा जाता है। पुनः वहाँ से नागरिकों के घरों में नलों द्वारा जल पहुँचाने की व्यवस्था की जाती है।

प्रश्न ७. जल-प्राप्ति के विभिन्न साधन कौन-कौन हैं ? प्रत्येक का संक्षेप में वर्णन कीजिए।

उत्तर— जल-प्राप्ति के निम्नलिखित साधन हैं—

(i) वर्षा का जल, (ii) तालाब का जल, (iii) नदी का जल, (iv) झीलों का जल, (v) झरने का जल, (vi) कुएँ।

(i) वर्षा का जल— बादलों से सघनित होकर जो जल पृथ्वी पर वर्षा के रूप में गिरता है वह प्रायः शुद्ध अवस्था में नहीं रहता है, जैसे ही उसमें

कुछ घुलनशील गैसें—जैसे अमोनिया, कार्बन-डायक्साइड आदि—घुली हों। इनके अतिरिक्त वर्षा के जल में प्रायः धूल के कण, अन्य ऐन्द्रिक पदार्थ आदि भी मिलते रहते हैं। फिर भी, वर्षा का उत्तम रूप से संचित किया जल अन्य जलों की अपेक्षा शुद्ध रहता है। भारत के राजस्थान तथा अन्य जगहों में, जहाँ जल कम परिमाण में तथा कठिनाई से प्राप्त होता है, लोग प्रायः वर्षा का जल एकत्र करके रखते हैं। लेकिन ऐसे जल का व्यवहार करना ठीक नहीं है। अधिक समय तक तथा गन्दे ढंग से संगृहीत होने के कारण जल प्रायः गन्दा हो जाता है।

(ii) तालाब का जल— साधारण तालाब का जल प्रायः दूषित रहता है। वर्षा का जो जल तालाब या अन्य जलाशयों में एकत्र होता है, वह गाँव-घर की गन्दगियों को भी अपने साथ बहाये और घुलाये जाता है। साथ ही तालाबों में लोग नहाते हैं, कपड़ा फींचते हैं, शौच आदि करते हैं, धोबी कपड़ा साफ करता है, मवेशी नहाते हैं और पानी पीते हैं। प्रायः कृषक पटसन आदि को इसमें सड़ने को छोड़ देते हैं। इस प्रकार साधारण तालाब का जल पीने के योग्य नहीं रह जाता है।

(iii) नदी का जल— वर्षा का गँदला तथा गन्दा जल शहर की नालियों द्वारा नदियों में चला जाता है। प्रायः बड़े-बड़े शहरों का मल-मूत्र भी नालों द्वारा नदियों में गिराया जाता है। अतः ज्यों-ज्यों नदियाँ समुद्र तक पहुँचती हैं, त्यों-त्यों इनका जल और भी गन्दा हो जाता है। फलतः इनमें घुलनशील और अघुलनशील अपद्रव्यों की मात्रा और भी बढ़ जाती है। इस प्रकार नदियों का जल शुद्ध किये बिना पीने के योग्य नहीं होता है।

(iv) झीलों का जल— प्राकृतिक बड़ी झीलों का जल प्रायः शुद्ध रहता है। ऐसे जलाशय यदि शहर से दूर ऊँची भूमि पर अवस्थित हों तथा प्राकृतिक रूप में, वर्षा के जल के एकत्र होने से बने हों, तो इनका जल पीने के लिए अत्यन्त उपयुक्त है।

(v) झरने का जल— वर्षा का जो जल धरातल के ऊपरी भाग में शोषित होकर पुनः गुरुत्वाकर्षण के कारण नीचे की ओर किसी स्थान से निकल पड़ता है, उसे ही हम झरना (Spring) कहते हैं। झरने प्रायः पहाड़ों की उपत्यकाओं में पाये जाते हैं। झरनों के जल में कुछ घुलनशील लवण घुले रहते हैं, जिनके कारण स्थानविशेष के भेद से झरने के जल के स्वाद और गुणों में भेद हो जाता है। अतः इसमें यदि बाहर की गन्दगी नहीं मिली हो, तो झरने का जल पीने के लिए अधिक उपयुक्त है।

(vi) कुएँ— हमारे देश के अधिकतर लोग, विशेष कर गाँवों के रहने वाले कुएँ का जल ही पीने के काम में लाते हैं। कुएँ अपने जल की सतह या गहराई के विचार से दो प्रकार के होते हैं– गहरे और छिछले। गहरे कुएँ का जल प्रायः शुद्ध और पीने के लिए उपयुक्त होता है। छिछले कुएँ का जल प्रायः गन्दा होता है। उसमें विभिन्न प्रकार की घुलनशील-अघुलनशील अशुद्धियाँ मिली रहती हैं। साथ ही, प्रायः उसमें अन्य रोग-उत्पादक जीवाणु भी वर्त्तमान रहते हैं।

प्रश्न ८. कुएँ का जल कैसे दूषित होता है ? ऐसा जल पीने से कौन-कौन-से रोग होते हैं ?

उत्तर— कुएँ का जल निम्नांकित कारणों से दूषित होता है—

(i) यदि कुआँ अच्छी मिट्टी वाले स्थान पर एवं दूषित पानी जमने के स्थान, पाखाने से कम-से-कम १२०० फुट की दूरी पर न हो तो उसका पानी दूषित हो जाने का भय रहता है।

(ii) कुआँ उच्च स्थान पर न होने से उसमें दूषित पानी चू जाने का भय रहता है।

(iii) कुएँ की गहराई कम-से-कम पहले अभेद्य स्तर से अधिक न होने से उसका पानी दूषित हो जाता है।

(iv) कुएँ की दीवाल ईंट तथा सीमेण्ट से पक्की नहीं होने पर उसका पानी दूषित हो जाता है।

(v) कुएँ की दीवाल पर पौधा जमने से पानी दूषित हो जाता है।

(vi) कुआँ ढँककर नहीं रखने से धूल, पत्ते आदि गिरकर जल को दूषित कर देते हैं।

(vii) कुएँ के बाहर चारों तरफ कम-से-कम २½ फुट ऊँची दीवाल नहीं बनाने पर अगल-बगल से दूषित पानी कुएँ के अन्दर प्रवेश कर उसके पानी को दूषित कर देता है।

(viii) कुएँ के बाहर कम-से-कम ६ फुट चबूतरा एवं जल निकास की नली नहीं बनाने पर जल दूषित हो जाता है।

(ix) कुएँ पर मलिन कपड़े धोने से या स्नान करने से भी जल दूषित हो जाता है।

(x) कुएँ के निकट दूषित जल संचित होने से या झाड़ियाँ रहने पर भी जल दूषित हो सकता है।

(xi) कुएँ से जल निकालने के लिए एक खास बाल्टी व्यवहृत नहीं करने पर जल लेने वाले व्यक्ति की बाल्टी द्वारा भी कुएँ का जल दूषित हो सकता है।

ऐसे जल के व्यवहार से अतिसार, पेचिश, मन्दाग्नि, हैजा आदि रोग होते हैं।

प्रश्न ६. एक स्वच्छ कुएँ का वर्णन कीजिए।

या, कुआँ बनाते समय किन-किन बातों पर ध्यान देना चाहिए?

या, कुएँ के जल को दूषित होने से कैसे बचायेंगे?

उत्तर— कुएँ के जल को दूषित होने से बचाने के लिए निम्नलिखित साधारण स्वास्थ्य-सम्बन्धी नियमों का पालन करना चाहिए—

(क) निर्माण-सम्बन्धी—

(i) कुआँ उत्तम भूमि में बनाना चाहिए जो ऊँची हो, जिसमें गढ़े इत्यादि न हों और जो अप्रवेश्य स्तर की हो।

(ii) कुआँ पक्का होना चाहिए। भीतर की ओर उसकी दीवारों पर ईंटों का मोटा स्तर सीमेण्ट से लगाया जाय और उनको सीमेण्ट के मोटे पलस्तर से ढँक दिया जाय। ईंटों के जोड़ों पर विशेष ध्यान देने की आवश्यकता है। ईंटों से बाहर की ओर पीली या चिकनी मिट्टी का मोटा स्तर होना चाहिए।

(iii) कुएँ के मुँह के किनारे भूमि से तीन या चार फुट ऊँचे हों और उनके चारों ओर ढालुवाँ प्लेटफार्म हो, जिनके चारों ओर किनारों पर पक्की नाली बनी हो।

(iv) कुएँ का मुँह एक ढक्कन से बन्द होना चाहिए। जल खींचने के लिए उसमें एक खुला हुआ स्थान रहे जिसपर एक लोहे का छोटा-सा किवाड़ लगा रहे।

(v) कुएँ के पास न वृक्ष हों, न गड्ढे, न पाखाना-घर, न मवेशी के रहने का स्थान और न कूड़ा-घर।

(vi) कुएँ में सीढ़ी नहीं होनी चाहिए।

(vii) कुएँ के मुँह पर लोहे के दो खम्भे लगाकर उसमें जंजीर के साथ एक बाल्टी लटका देनी चाहिए। जिसे जल लेने की आवश्यकता होगी वह इसी बाल्टी से जल निकालकर अपने बरतन में डाल लेगा। यदि जल निकालकर देने के लिए एक व्यक्ति नियुक्त हो तो और भी अच्छा होगा। प्रायः यह देखा जाता है कि कुएँ से जल भरने के लिए लोग अपनी-अपनी बाल्टी और डोरी लाते हैं और उसे कुएँ के अन्दर डालते हैं। किसी एक बरतन के दूषित रहने पर सम्पूर्ण कुएँ का जल दूषित हो जाता है।

(viii) यदि कुएँ के मुँह का एकदम बन्द कर एक पम्प लगा दिया जाय तो यह सबसे उत्तम रहता है। इससे कुएँ के दूषित होने की सम्भावना नहीं रहती।

(ix) कुएँ के आसपास शौच करने, शौच-स्थान बनाने, बरतन धोने, वस्त्र धोने, पशुओं को नहलाने का कड़ा निषेध रहे।

स्वच्छता-सम्बन्धी—

(i) कुएँ को साल में एक बार अवश्य साफ करवाना चाहिए। मई और जून महीने में यह काम आसानी से हो सकता है।

(ii) निश्चित अवधि पर कुएँ में पोटाशियम परमैंगनेट डलवाना चाहिए।

(iii) स्नान करना, कपड़े धोना, जूठे बरतन धोना कुएँ के पास वर्जित रहना चाहिए।

(iv) कुएँ की भीतरी दीवार पर चूने की पोत प्रति वर्ष एक बार अवश्य दी जाती है। यह पोत कीटाणुओं को मारती है।

(v) जब कभी संक्रामक रोग फैल जाय तो कुएँ में पोटाश और ब्लीचिंग पाउडर अवश्य डलवा देना चाहिए।

(vi) पानी साफ-सुथरी बाल्टी से खींचना चाहिए। बाल्टी की डोरी मजबूत और सूखी रहनी चाहिए। लोहे की सिकड़ी का प्रबन्ध हो तो और भी अच्छा होता है। बाल्टी धातु की बनी होनी चाहिए जिसमें जस्ते की बनी बाल्टियाँ खुले मुख की सबसे उत्तम होती हैं।

अध्याय ३

भोजन और उसके पोषक तत्त्व

प्रश्न १. भोजन किसे कहते हैं? इसकी क्या उपयोगिता है? संक्षेप में लिखिए।

उत्तर—भोजन किसे कहते हैं?—साधारणतः जिन वस्तुओं को हम खाते हैं, वे ही हमारा भोजन हैं। पर वास्तव में भोजन वह पदार्थ है जिसका शरीर में आत्मीयकरण होने के बाद ऐसे पदार्थों की सृष्टि होती है जो काम

करने के लिए शरीर को शक्ति प्रदान करते हैं, शरीर की क्षति को पूरा करते हैं अर्थात् नये सेलों को बनाते हैं और पुराने सेलों की मरम्मत करते हैं, शरीर को गर्म रखते हैं तथा शरीर की रोगों से रक्षा कर उसकी वृद्धि में सहायता पहुँचाते हैं। भोजन के ऐसे सरल पदार्थों को पोषक तत्त्व कहा जाता है। दूसरे शब्दों में यह कहा जा सकता है कि शरीर की वृद्धि और विकास के लिए हम जिन चीजों को खाते हैं, वे ही हमारा भोजन हैं।

भोजन की उपयोगिता—

भोजन की निम्नलिखित उपयोगिता है—

(i) कोशिकाओं का पोषण— हमारे शरीर में विभिन्न प्रकार की असंख्य जीवित कोशिकाएँ हैं। इन कोशिकाओं को अपने शरीर की वृद्धि के लिए भोजन से पोषक तत्त्व प्राप्त होते हैं। उनकी शारीरिक वृद्धि और विभाजन से हमारा शरीर बढ़ता है। अतः भोजन से हमारे शरीर की वृद्धि और विकास होता है।

(ii) छीजन की पूर्त्ति— हमारा शरीर अनेक प्रकार की तन्तुओं से बना है और प्रत्येक तन्तु कोषों या सेलों से बना है। सेलों की वृद्धि से हमारे शरीर का विकास होता है और उनके छीजन से शरीर का ह्रास होता है। हमारे दैनिक जीवन में जहाँ एक ओर नयी-नयी कोशिकाओं का निर्माण होता है वहाँ दूसरी ओर कुछ कोशिकाओं का छीजन और कुछ का विनाश भी होता रहता है। छीजन की पूर्त्ति और नयी कोशिकाओं के निर्माण में जिन पोषक तत्त्वों की आवश्यकता होती है वे हमें भोजन से मिलते हैं।

(iii) ताप-प्राप्ति— शरीर की जीवन-क्रियाओं को सुचारु रूप से चलते रहने के लिए निश्चित तापमान की आवश्यकता होती है। कार्बोहाइड्रेट, वसा आदि ताप-उत्पादक पदार्थ हैं। अतएव भोजन का काम शरीर में ताप उत्पन्न करना भी है।

(iv) शक्ति की प्राप्ति— हमारे चलने-फिरने, बोलने, साँस लेने अथवा यों

कहें कि हमारे हरएक काम में हमारी शक्ति नष्ट होती रहती है। पुनः यह शक्ति हमें भोजन से ही प्राप्त होती है।

(v) शरीर को स्वस्थ रखना— संतुलित भोजन करने से शरीर स्वस्थ, सबल और कार्यक्षम रहता है। इसके अभाव में हमारी शक्ति दिनानुदिन क्षीण होती जाती है तथा शरीर में अनेक प्रकार के रोग उत्पन्न हो जाते हैं।

प्रश्न २. भोजन के कौन-कौन-से मुख्य अवयव (पोषक तत्त्व) हैं ? वे किन-किन पदार्थों में मिलते हैं तथा उनसे क्या लाभ होता है ?

उत्तर—

भोजन
- कार्बोहाइड्रेट
  - श्वेतसार
  - शर्करा
- प्रोटीन
  - वानस्पतिक
  - प्राणिज
- वसा
  - वानस्पतिक
  - प्राणिज
- जल
- विटामिन
  - वानस्पतिक
  - प्राणिज
- लवण
- फोक

तत्त्व	किन पदार्थों में मिलते हैं	कार्य
(i) कार्बोहाइड्रेट—		
श्वेतसार (Starch)	चावल, गेहूँ, मकई, आलू इत्यादि।	शरीर में शक्ति और गर्मी उत्पन्न करता है।
शर्करा (Sugar)।	गुड़, चीनी, मीठे फल इत्यादि।	प्रोटीन और वसा की पाचन-क्रिया में भी मदद करती है।

तत्त्व	किन पदार्थों में मिलते हैं	कार्य
(ii) प्रोटीन (मांसवर्द्धक पदार्थ)—		
वानस्पतिक—	सभी प्रकार की दाल, सोयाबीन, काजू, मूँगफली, सीम इत्यादि।	शरीर की प्रत्येक कोशिका का जीवन-रस तैयार करता है।
प्राणिज—	मांस, मछली, दूध, अण्डा, दूध से बने पदार्थ इत्यादि।	नयी कोशिकाओं की उत्पत्ति और पुरानी कोशिकाओं की मरम्मत में सहायता देता है।
(iii) वसा (Fats)		
वानस्पतिक—	सभी प्रकार के खाये जाने वाले तेल—सरसों, नारियल, डालडा इत्यादि।	शरीर को गर्मी और शक्ति प्रदान करती है। इससे शरीर के गड्ढे भी भरते हैं और शरीर भरा-पूरा, चिकना मालूम पड़ता है।
प्राणिज—	घी, मक्खन, चर्बी, मछली का तेल।	
(iv) जल—		भोजन को पचाता है, पचे हुए पदार्थों को घुलाता है, इसके वितरण में सहायता देता है तथा शरीर के घुलनशील विकारों को अपने में घुलाकर मूत्र और पसीने द्वारा शरीर के बाहर निकाल देता है।

तत्त्व	किन पदार्थों में मिलते हैं	कार्य
(v) विटामिन—		
वानस्पतिक—	हरी साग-सब्जी, ताजा फल।	पाचन-शक्ति ठीक रहती है, आयु बढ़ती है, स्नायु-संस्थान ठीक दशा में रहता है, दाँत मजबूत रहता है, चर्म-रोग नहीं होने पाते, हड्डियाँ पुष्ट होती हैं, सन्तान उत्पन्न करने वाले अंग सबल रहते हैं।
प्राणिज—	दूध, मांस, अंडा, मछली का तेल।	
(vi) लवण (Salts)—		
साधारण लवण—		भोजन पचाने में सहायक होता है। रक्त में लोह के लवणों के शोषण में मदद देता है। इससे हड्डियाँ और दाँत सबल तथा पुष्ट होते हैं। कटे हुए स्थाव पर रक्त के शीघ्र जमने में सहायता मिलती है।
कैलसियम के लवण—	दूध, छेना, अण्डा, अनाज, पत्तीदार सब्जियाँ, मांस, गुड़।	
पोटासियम—	साग-सब्जी।	
लोहा—	मांस (लीवर), गुड़, अंडा, गेहूँ तथा अन्य अनाज।	
गंधक—	छेना, अण्डा, मछली, मांस, प्याज, मटर।	
आयोडीन—	भोजन या जल।	आयोडीन की कमी होने से घेघा रोग हो जाता है।

तत्त्व	किन पदार्थों में मिलते हैं	कार्य
(vii) फोक (Roughage) -	आलू के छिलके, चोकर, साग-सब्जी के रेशे, आँतों में बिलकुल नहीं पचने वाले पदार्थ ।	आँत फैली रहती है जिससे भोजन भली-भाँति आँतों की दीवारों की पकड़ में आ जाता है, फलस्वरूप स्टालसिस-क्रिया अच्छी तरह से हो जाती है ।

E.P.H.

प्रश्न ३. विटामिन क्या है ? यह कितने प्रकार का होता है ? इनके प्राप्तिसाधन और इनके कार्य का संक्षिप्त विवरण दें तथा इनके अभाव में होनेवाले रोगों का उल्लेख करें ।

उत्तर— विटामिन क्या है— विटामिन भोजन के पदार्थों में उपस्थित रहने वाला एक रासायनिक पदार्थ है । जीवन को स्वस्थ और स्थिर रखने के लिए हमारे भोजन में प्रोटीन, कार्बोहाइड्रेट, चिकनई, लवण तथा जल के अलावा कुछ अन्य पदार्थों की भी आवश्यकता होती है । इन्हीं पदार्थों को विटामिन कहते हैं । विटामिन का शाब्दिक अर्थ है— जीवनदायक पदार्थ । विटामिन की कमी से विशेष प्रकार के रोग पैदा होते हैं ।

विटामिन के भेद—

विटामिन	प्राप्ति-साधन	काम	अभाव में शारीरिक लक्षण
विटामिन 'ए'	काड, शार्क आदि मछलियों के यकृत से प्राप्त तेल तथा हरी साग-सब्जियाँ, पीले फल, घी, मक्खन, अण्डे की जर्दी ।	शारीरिक वृद्धि, श्लैष्मिक कला की सुरक्षा ।	शारीरिक विकास में ह्रास, रतौंधी, संक्रामक रोग की आशंका, अविकसित दाँत, श्लैष्मिक कला की हानि और चर्म-रोग संभावित ।

विटामिन	प्राप्ति-साधन	काम	अभाव में शारीरिक लक्षण
विटामिन 'बी$_1$' (थियामीन—Thiamine)	मांस, मछली, दूध, सोयाबीन, साबुत अनाज, हरा साग-सब्जियाँ।	शारीरिक वृद्धि, कार्बोहाइड्रेट का अन्तर्लयन और हृदय, स्नायु तथा मांसपेशियों का ठीक रखना।	शारीरिक वृद्धि का ह्रास, भूख की कमी, स्नायविक दुर्बलता, थकावट, बेरी-बेरी।
विटामिन 'बी$_2$' (राबोफ्लेवीन—Riboflavin)	दूध, मांस, मुर्गी, अण्डे, हरी साग-सब्जियाँ, खमीर।	शारीरिक वृद्धि, मुँह और चर्म की सुरक्षा, कार्बोहाइड्रेट का अन्तर्लयन।	शारीरिक वृद्धि का ह्रास, नेत्र-ज्योति में कमी, जिह्वा में सूजन, अकाल वृद्धावस्था।
निकोटिनिक एसिड (Nicotinic Acid)	मांस, मछली, पक्षी, साबुत अनाज, आलू, टमाटर, पत्तीदार सब्जियाँ।	शारीरिक वृद्धि, कार्बोहाइड्रेट का अन्तर्लयन, आँतों और स्नायुओं को स्वस्थ रखना।	चर्म-रोग, जिह्वा का चिकना हो जाना, पाचन-सम्बन्धी तथा स्नायविक दुर्बलता।
विटामिन 'बी$_2$' फॉलिक एसिड (Folic acid)	लीवर, हरी साग-सब्जियाँ।	रक्तहीनता को दूर करना।	रक्त के लाल कणों की संख्या में ह्रास।
विटामिन 'सी'	नीबू, संतरा, टमाटर, पत्तीदार सब्जियाँ।	शारीरिक वृद्धि, रक्तवाहिनियों, दाँत और मसूड़ों को सबल बनाना।	मसूड़े में सूजन, रक्तस्राव, स्कर्वी रोग की आशंका।
विटामिन 'डी'	मछलियों के लीवर से प्राप्त तेल, यकृत, अण्डे, हरी साग-सब्जियाँ, सूर्य-प्रकाश।	शारीरिक वृद्धि, शरीर में कैलसियम और फासफोरस के अन्तर्लयन पर नियंत्रण, अस्थि और दाँतों को सबल और दृढ बनाना।	मुलायम अस्थि, कमजोर दाँत, सूखा-रोग (Ricket) होने की सम्भावना।

विटामिन	प्राप्ति-साधन	काम	अभाव में शारीरिक लक्षण
विटामिन 'इ' (Tocopherol)	अंकुरित गेहूँ के तेल, हरी साग-सब्जियाँ, दूध, मक्खन ।	स्वाभाविक प्रजनन में मदद देना ।	अज्ञात ।
विटामिन 'के'	टमाटर, सोयाबीन, हरी साग-सब्जियाँ ।	स्वाभाविक रूप से रक्त को थक्का होने में मदद देना तथा यकृत के कामों पर नियंत्रण रखना ।	जख्म होने या किसी अंग के कटने पर रक्त-स्राव (Haemorrhage) का शीघ्र नहीं बन्द होना ।

प्रश्न ४. संतुलित भोजन किसे कहते हैं ? किसी वयस्क के दैनिक संतुलित भोजन की तालिका बनायें ।

उत्तर— भोजन का उद्देश्य केवल शक्ति प्राप्त करना ही नहीं है बल्कि शरीर की विभिन्न आवश्यकताओं की पूर्त्ति भी करना है । हमें अपने शरीर की वृद्धि के लिए प्रोटीन चाहिए, रोगों से बचने के लिए विटामिन चाहिए, शरीर को स्वस्थ रखने के लिए खनिज लवण चाहिए । हमारा भोजन ऐसा होना चाहिए कि हमारी सारी शारीरिक आवश्यकताएँ पूरी हों । अनुभव से देखा गया है कि समुचित मिश्रित भोजन से शरीर की वृद्धि समुचित रूप से होती है तथा शरीर नीरोग रहता है । अतः भोजन ऐसा हो जिसमें कार्बोहाइड्रेट, प्रोटीन, वसा, खनिज लवण, हरी साग-सब्जियाँ, जल, विटामिन और फोक हों तथा ये समुचित अनुपात में रहें । ऐसे भोजन को ही हम संतुलित भोजन कहेंगे ।

दूसरे शब्दों में, हम यह कह सकते हैं कि शरीर की विभिन्न आवश्यकताओं की पूर्त्ति के लिए ऐसे भोजन को, जो आवश्यक तापमान (Of required calorie value) के हों तथा जिनमें कार्बोहाइड्रेट, प्रोटीन, वसा, खनिज

लवण, हरी साग सब्जियाँ, जल, विटामिन तथा फोक समुचित अनुपात में हों, संतुलित भोजन कहते हैं। संतुलित भोजन के लिए इन बातों पर भी ध्यान देना है कि भोजनविशेष किस प्रकार प्रस्तुत किया गया है, भोजन दिन में कितनी बार तथा कितनी अवधि के अन्तर पर हो।

एक वयस्क के लिए एक दिन के संतुलित भोजन की मात्रा

१. भोजन के तत्त्व	भोज्य पदार्थ	परिमाण
(i) कार्बोहाइड्रेट	चावल, आटा, ज्वार, बाजरा इत्यादि	७-८ छटाक
(ii) प्रोटीन	मांस, मछली	एक-डेढ़ छटाक
	अण्डा	२ संख्या
	दूध	२ पाव
	दाल	एक-डेढ़ छटाक
(iii) वसा	घी, तेल, डालडा इत्यादि	१ ,,
(iv) विटामिन और खनिज लवण	(क) हरी साग-सब्जियाँ	२ छटाक
	(ख) आलू, बैगन तथा अन्यान्य तरकारी	२ ,,
	(ग) फल	१ ,,
(v) जल	जल	प्रचुर मात्रा में

या

भोज्य वस्तु	एक दिन की मात्रा
(i) गेहूँ, चावल, मकई इत्यादि	७ छटाक
(ii) दाल	डेढ़ ,,
(iii) हरी साग-सब्जियाँ	२ ,,
(iv) आलू, गाजर, मूली इत्यादि	डेढ़ ,,
(v) अन्यान्य सब्जियाँ	डेढ़ ,,
(vi) फल	डेढ़ ,,

भोज्य वस्तु	एक दिन की मात्रा
(vii) चीनी या गुड़	१ छटाक
(viii) घी, तेल आदि	१ ,,
(ix) मांस, मछली आदि	१ ,,
(x) दूध	५ ,,
(xi) अण्डा	२ संख्या

संतुलित भोजन की उपर्युक्त तालिका एक मांसाहारी व्यक्ति के लिए दी गयी है। शाकाहारियों के लिए मांस, मछली और अण्डे की कमी की पूर्ति दूध की मात्रा में वृद्धि करके की जा सकती है।

प्रश्न ५. शरीर की वृद्धि करने वाले मुख्य प्रोटीनजातीय पदार्थों के पौष्टिक महत्त्व पर प्रकाश डालिए।

उत्तर— शरीर की वृद्धि करने वाले प्रोटीनजातीय भोज्य पदार्थों में मांस, मछली, अण्डा, दूध तथा विभिन्न प्रकार की दालें, गेहूँ आदि प्रमुख हैं। साधारणतः सभी प्रकार के अनाज, दालों और फलों में कुछ-न-कुछ प्रोटीन अवश्य पाया जाता है, किन्तु ये सभी प्रोटीनजातीय पदार्थ नहीं कहे जाते। केवल उन्हीं पदार्थों को जिनमें प्रोटीन दस प्रतिशत से अधिक पाये जाते हैं, हम प्रोटीनदायक पदार्थ कहते हैं। प्रत्येक भोज्य पदार्थ की अपनी-अपनी विशेषताएँ हैं।

(i) मांस का पौष्टिक महत्त्व— पौष्टिकता के विचार से भोजन में मांस अपना विशिष्ट स्थान रखता है। यह प्रोटीनपूर्ण होता है, अतः इसके ९५ प्रतिशत भागों का शरीर में पूर्ण पाचन और शोषण हो जाता है। मांसों में चर्बी रहने के कारण यह देर से पचता है, साथ ही इसका पौष्टिक महत्त्व भी घट जाता है।

(ii) मछली का पौष्टिक महत्त्व— हमारे भोजन में मछली अपना विशिष्ट स्थान रखती है। भोजन के अच्छे प्राणिज प्रोटीन की पूर्ति का यह एकमात्र सहज सुलभ साधन है। बंगाल, असम और समुद्र के उपकूलों के निवासी

अपने भोजन में इसे अवश्य सम्मिलित करते हैं। जानवरों के मांस की अपेक्षा मछली में कम प्रोटीन और अधिक जल रहने के कारण यह अपेक्षाकृत जल्द पच जाती है। अतः जो जानवरों का मांस नहीं पचा पाते हैं या जिनका पेट कमजोर होता है, उन्हें मछली का व्यवहार करना उचित है। मछलियों से प्राप्त प्रोटीन उत्तमकोटि का होता है। मछलियों के यकृत तथा वसा में विटामिन 'ए' पाया जाता है, जो स्वास्थ्य के लिए आवश्यक है।

(iii) अण्डे का पौष्टिक महत्त्व — अण्डे से ही बच्चे निकलते हैं। अतः स्पष्ट है कि शरीर के सभी पोषक तत्त्व इसमें वर्त्तमान हैं। साधारणतः इसमें प्रोटीन, वसा, खनिज लवण और विटामिन 'ए' और 'डी' रहते हैं। अण्डे की सफेदी (Egg-white) में चार प्रकार के प्रोटीन रहते हैं जिनसे शरीर को उन्नत कोटि का एमीनो-अम्ल प्राप्त हो जाता है। अण्डे की जर्दी (Egg-yolk) में विटामिन 'ए', 'बी', 'डी' के अतिरिक्त वसा और दो उन्नत कोटि के प्रोटीन तथा खनिज लवण विशेषकर उपयोगी लौह-लवण वर्त्तमान रहते हैं। अतः हमारे भोजन में इसका अधिक पौष्टिक महत्त्व है।

(iv) दाल—अन्य अन्नों की अपेक्षा दालों में प्रोटीन की मात्रा अधिक रहती है, लेकिन इसके प्रोटीन पूर्णरूप के नहीं हैं। इसके प्रोटीन में बहुत प्रकार के एमिनो-अम्लों की कमी रहती है। अतः प्राणिज प्रोटीन की अपेक्षा इसका पौष्टिक महत्त्व कम है। फिर भी निम्न वर्ग के शाकाहारी भोजन में प्रोटीन की पूर्त्ति का एकमात्र साधन दाल ही है। साथ ही, इसमें कार्बोहाइड्रेट और खनिज लवण भी रहते हैं। अंकुरित मूँग, चना, मटर इत्यादि में विटामिनों की भी प्रधानता रहती है। इन्हें छिलकायुक्त खाने से पर्याप्त मात्रा में फोक (Roughage) भी प्राप्त हो जाता है। अतः भोजन में इनका पौष्टिक महत्त्व और भी बढ़ जाता है।

(v) दूध—भोजन में, विशेषकर निरामिष भोजन में, दूध अपना विशिष्ट स्थान रखता है। नवजात बच्चों का यह एकमात्र भोजन है। यों तो यह प्रोटीनप्रधान भोज्य पदार्थ है, लेकिन इसमें भोजन के सभी सार तत्त्व वर्त्तमान

हैं। भोज्य पदार्थों में केवल दूध ही ऐसा पदार्थ है, जिसमें भोजन के सभी सार तत्त्व पाये जाते हैं।

प्रश्न ६. भोजन पकाने से क्या लाभ है ? समझाकर लिखिए।

उत्तर— भोजन को भली-भाँति पकाने से निम्नलिखित लाभ हैं—

(i) भोजन का सुपाच्य होना— बहुत-से अन्न तथा मांस, मछली आदि ऐसे खाद्य द्रव्य हैं, जो बिना पकाये भली-भाँति पच नहीं सकते। अतः इन्हें पकाकर खाना आवश्यक जान पड़ता है। चावल, गेहूँ, आलू इत्यादि में स्टार्च कणों के रूप में रहता है। इन कणों पर एक कड़ा आवरण रहता है। पकाने पर ये कण फूलकर फट जाते हैं। फलतः इनपर पाचक रसों का प्रभाव शीघ्र पड़ता है। मांस, मछलियाँ आदि पकाने पर मुलायम हो जाती हैं। फलतः ये शीघ्र पच जाती हैं।

(ii) भोजन का सुस्वादु होना— भोजन पकाने से इसका स्वाद अच्छा हो जाता है। कुशल रसोइया भोजन पकाने की विधियों से परिचित रहता है। भोजन की विशेष वस्तु को कई विधियों से पकाया जा सकता है। चावल से भात, पोलाव, जर्दा इत्यादि बनाये जा सकते हैं। मांस बनाने की अनेक विधियाँ हैं। प्रत्येक विधि से बनाये हुए मांस की अपनी-अपनी विशेषता है, अपना-अपना स्वाद है।

(iii) पकाने से कीटाणुओं का नष्ट होना— बहुत-से ऐसे खाद्य पदार्थ हैं, जिनका बिना पकाये खाना स्वास्थ्य के लिए हानिकारक है। दूध, मांस आदि ऐसे पदार्थ हैं, जिनमें प्रायः रोग के कीटाणु आदि मिले रहते हैं। यदि इन्हें बिना पकाये खाया जाय, तो रोग होने का भय रहता है। इनके उबाले जाने पर रोगों के जीवाणु, उनके अण्डे आदि नष्ट हो जाते हैं और भोजन स्वस्थ, साफ सुस्वादु और रुचिकर हो जाता है।

प्रश्न ७. भोजन पकाने की कुछ प्रमुख विधियों के नाम लिखें और प्रत्येक की विशेषताएँ बतलायें।

उत्तर— भोजन पकाने की निम्नलिखित प्रमुख विधियाँ हैं—

(i) उबालना— इसमें खाद्य पदार्थ को जल के साथ गर्म करते हैं और जल को खौला देते हैं। वस्तुविशेष का जल में रखकर चूल्हे पर चढ़ा दिया जाता है और तब तक उसे गर्म किया जाता है जब तक वह पक नहीं जाता। इस विधि में वस्तुविशेष का तापमान एक सौ अंश सेंटीग्रेड से अधिक नहीं बढ़ पाता। इस विधि से भात-दाल, मांस का शोरवा तथा अनेक प्रकार की तरकारियाँ बनायी जाती हैं।

लाभ— इस विधि से पकाया हुआ भोजन अधिक सुस्वादु नहीं होता, लेकिन सुपाच्य होता है। रोगियों तथा कमजोर पाचनक्रिया वालों के लिए इस प्रकार का भोजन अधिक हितकर है।

पोषण-शक्ति पर प्रभाव (हानि)— चूंकि इस विधि में वस्तु गर्म जल के सम्पर्क में रहती है इसलिए कुछ घुलनशील लवण और भोजन के अन्य सारतत्त्व जल में घुल जाते हैं और जल को फेंक देने पर ये सारतत्त्व बेकार हो जाते हैं।

(ii) तलना— घी या तेल को खौलाकर उसमें भोज्य पदार्थ डालकर छान लेने की क्रिया को तलना कहते हैं। प्रायः साग-सब्जियाँ, मांस, मछली, अण्डा, पूरी-कचौड़ी इत्यादि को हम तलकर खाते हैं।

विशेषता— तली हुई चीजों की गन्ध और स्वाद बने रहते हैं तथा ये खाने में सुस्वादु और रुचिकर होती हैं।

पोषण-शक्ति पर प्रभाव (हानि)— तली हुई चीजें जल्दी पचती नहीं हैं। साथ-ही, इनके खाने से प्रायः कण्ठ और पेट में जलन उत्पन्न हो जाती है। किसी वस्तु का तलने में घी, तेल आदि अधिक तपाया जाता है। फलतः इस क्रिया में भी इनके विटामिन नष्ट हो जाते हैं और वस्तुविशेष में पोषण-शक्ति का अभाव हो जाता है।

(iii) सेंकना— इस विधि द्वारा भोज्य पदार्थ लौ के प्रत्यक्ष सम्पर्क में आता है। इसे आग की लौ में लटका दिया जाता है और सावधानीपूर्वक

घुमा-फिराकर चारों ओर सेंक दिया जाता है। इस विधि से विशेषत: मांस ही तैयार किया जाता है।

विशेषता— इस प्रकार का तैयार किया हुआ मांस अधिक सुपाच्य और सुस्वादु होता है।

हानि— आर्थिक दृष्टि से भोजन पकाने का यह तरीका अधिक खर्चीला है। इसमें ताप का अधिक अपव्यय होता है। साथ ही, अधिक वाष्पीकरण होने से मांस के टुकड़े सिकुड़ जाते हैं।

(iv) स्टिवइंग — इस प्रकार से मांस बनाने में सर्वप्रथम कड़े मांस को छोटे-छोटे टुकड़ों में काट लिया जाता है। बहुधा मांस के अधिक कड़ा रहने पर इसे सिरके में दो-चार मिनट के लिए छोड़ दिया जाता है। मांस और मसाले को भून लेने के बाद, प्रति सेर मांस पर पाँच-छः कप जल देकर डेकची को ढक्कन से ढककर चूल्हे पर धीमी आँच पर पकाया जाता है।

विशेषता – इस प्रकार से पकाया हुआ मांस अधिक सुस्वादु और सुपाच्य होता है। इसमें उबालने से विपरीत वस्तुविशेष बन्द ढक्कनदार बरतन में अपेक्षाकृत कम जल में, अधिक समय तक तथा कम आँच पर पकती रहती है। इसलिए मांस के सारतत्त्वों और लवणों से युक्त जल मांस में ही शोषित हो जाता है। इस विधि में पोषण-शक्ति नष्ट नहीं होती।

(v) भपाना — भाप द्वारा भोजन पकाना एक अत्युत्तम विधि है। इस विधि में भोज्य पदार्थ लौ के प्रत्यक्ष सम्पर्क में नहीं आता है, बल्कि आर्द्रताप द्वारा वस्तु पक जाती है।

पोषण-शक्ति पर प्रभाव— इस विधि में वस्तुविशेष के गर्म जल के प्रत्यक्ष सम्पर्क में नहीं आने के कारण भोजन के पोषक पदार्थ लवण, विटामिन आदि कम नष्ट होते हैं।

(vi) भूनना—इस विधि में घी, तेल या चर्बी को गर्म कर उसमें आहार को भूनते हैं। भूनने पर मांस या तरकारी के ऊपर एक कठोर सतह बन जाती है, जिसके अन्दर पौष्टिक रस का कुछ अंश सुरक्षित रह जाता है। इस विधि से अनेक प्रकार की तरकारियाँ और मांस बनाये जाते हैं।

पोषण-शक्ति पर प्रभाव— भूनने का कार्य अपेक्षाकृत अधिक तापक्रम पर होता है, इसलिए इस क्रिया में अनेक बहुमूल्य विटामिन नष्ट हो जाते हैं।

(vii) भुरता बनाना— भुरता बनाने के लिए आलू, बैंगन, शकरकन्द इत्यादि को हमलोग गर्म राख में दबाकर पका लेते हैं। पुनः इसे कुचलकर इसमें नमक, मिर्च, प्याज इत्यादि कतरकर मिला देते हैं और तैयार कर लेते हैं। इस प्रकार से पकाये हुए आलू आदि उबले आलू आदि की अपेक्षा अधिक सुस्वादु होते हैं।

प्रश्न ८. भोजन के विभिन्न तत्त्वों पर ताप का क्या प्रभाव पड़ता है? उदाहरण देते हुए समझाएँ।

उत्तर— तत्त्व	भोज्य पदार्थ	ताप का प्रभाव
(i) श्वेतसार	चावल, गेहूँ, मकई, ज्वार, बाजरा, आलू इत्यादि।	श्वेतसार के कणों के आवरण फैलकर फट जाते हैं तथा पाचक रसों का प्रभाव शीघ्र पड़ता है।
(ii) शर्करा	गुड़, चीनी, मधु इत्यादि।	भंजन होकर सुस्वादु तथा सुपाच्य हो जाता है।
(iii) प्रोटीन—		
प्राणिज	अण्डा आदि।	अपेक्षाकृत देर से पचता है।
वानस्पतिक	मटर, चना, सोयाबीन इत्यादि।	स्वादिष्ट और सुपाच्य हो जाता है।
(iv) वसा	तेल, घी, डालडा इत्यादि।	अधिक तपने पर देर से पचता है।

तत्त्व	भोज्य पदार्थ	ताप का प्रभाव
(v) विटामिन	हरी साग-सब्जियाँ, फल, दूध इत्यादि ।	अधिक आँच में या तेज गर्मी के प्रभाव से विटामिन प्रायः नष्ट हो जाते हैं ।
(vi) खनिज लवण	हरी साग-सब्जियाँ, फल, दूध इत्यादि ।	खनिज लवणों पर ताप का विशेष प्रभाव नहीं पड़ता है ।

अध्याय ४

वैयक्तिक स्वास्थ्य

प्रश्न १. वैयक्तिक स्वास्थ्य से क्या समझती हैं ?

उत्तर— वैयक्तिक स्वास्थ्य का सम्बन्ध व्यक्तिगत सफाई, भोजन के नियम, अच्छी आदत, उचित परिश्रम, मनोरंजन, विश्राम इत्यादि से है । यद्यपि स्वस्थ भोजन, शुद्ध वायु, जल इत्यादि हमें स्वस्थ रहने के लिए आवश्यक हैं, फिर भी यदि हम अपने शरीर की सफाई तथा स्वास्थ्य-सम्बन्धी नियमों पर ध्यान नहीं दें तो ये बेकार हैं । अतः स्वस्थ जीवन व्यतीत करने के लिए वैयक्तिक स्वास्थ्य आवश्यक है अर्थात् व्यक्तिगत स्वच्छता से हम स्वस्थ जीवन व्यतीत कर सकते हैं ।

प्रश्न २. वैयक्तिक स्वास्थ्य के लिए किन-किन बातों पर ध्यान देने की आवश्यकता है ? समझाकर लिखें ।

उत्तर—

वैयक्तिक स्वास्थ्य

- शारीरिक सफ़ाई
  - स्नान
  - स्वच्छ वस्त्र
  - बालों की सफाई
  - मुँह और दाँतों की सफाई
  - आँख और कानों की सफाई
  - हाथ-पैरों की सफाई
  - नाक की सफाई
- गुप्तांगों की सफाई
- नियमित भोजन
- पोशाक
- व्यायाम
- मादक द्रव्यों का बहिष्कार
- विश्राम
- आदत

(क) शारीरिक सफ़ाई— स्वस्थ जीवन व्यतीत करने के लिए प्रत्येक व्यक्ति को अपने शरीर की सफाई पर ध्यान देना नितान्त आवश्यक है। इसके लिए निम्नलिखित कार्य अपेक्षित हैं—

(i) स्नान— शरीर में मुख्यतः चर्म के द्वारा ही रोगों का प्रचार और प्रसार होता है। साथ ही, पसीने के कारण शरीर से दुर्गन्ध भी निकलने लगती है। तेल लगाने से तथा पसीना निकलने से त्वचा पर मैल बैठ जाता है जिससे छिद्र बन्द होने से शारीरिक क्रियाओं में बाधा उत्पन्न हो जाती है। शरीर का विकार नियमित रूप से बाहर नहीं निकल पाता। अतः चमड़े को साफ रखने के लिए नियमित समय पर स्नान करना आवश्यक है। साबुन के प्रभाव से मैल का सम्बन्ध चर्म से छूट जाता है। पर शरीर में व्यवहृत करने के लिए उत्तम साबुन ही रहना चाहिए। साबुन से स्नान करने के पश्चात् मोटे तौलिए से बदन को रगड़ देने पर मैल चर्म से अलग हो जाता है। ठंडे जल की अपेक्षा गर्म जल से मैल शीघ्र छूट जाता है; पर गर्म जल से स्नान करने पर मन प्रसन्न नहीं होता। जाड़े के मौसम में गर्म जल का व्यवहार उचित है, पर अधिक गर्म जल सिर पर नहीं डालना चाहिए।

(ii) स्वच्छ वस्त्र— बहुधा हमलोग स्नान करने के बाद उतारी हुई गंजी, जाँघिया आदि पहन लेते हैं। ऐसा करने से नहाने का उद्देश्य नष्ट हो जाता है। अतः नहाने के उपरान्त अपने शरीर को रुखड़े गमछे या तौलिये से रगड़-कर साफ वस्त्रों का व्यवहार करना उचित है।

(iii) बालों की सफाई— बालों को साफ करने के लिए समय-समय पर अच्छे साबुन और जल का व्यवहार करना चाहिए। परिवार के प्रत्येक व्यक्ति के लिए अलग-अलग कंघा रहना चाहिए। छोटे बाल भली-भाँति साफ रखे जा सकते हैं। अतः लड़कों के बाल बीच-बीच में छँटवाकर छोटे करवा देना उचित है। प्राकृतिक रूप से बालों की जड़ों से तेल निकलता रहता है जिससे बाल चिकने मालूम पड़ते हैं। यदि बाल में तेल का व्यवहार करना हो तो बालों को साबुन से साफ करने के बाद यथासम्भव कम तेल व्यवहृत करना उचित है।

(iv) मुँह और दाँतों की सफाई— स्वस्थ रहने के लिए मुँह और दाँतों को भी साफ रखना आवश्यक है। मुँह और दाँतों के गन्दे रहने से भोजन के साथ गन्दगी हमारे पेट में चली जाती है, जिससे विभिन्न प्रकार के रोग उत्पन्न हो जाते हैं। अतः सबेरे और रात में सोने के पहले मुँह और दाँत भली-भाँति साफ किये जायँ। प्रत्येक बार खाने के बाद मुँह को भली-भाँति कुल्ली कर साफ कर लेना चाहिए।

(v) आँखों और कानों की सफाई और सुरक्षा— शारीरिक सफाई के साथ-साथ आँखों और कानों की सफाई पर भी ध्यान देना उचित है। प्रत्येक दिन सवेरे और शाम या अन्य समय आँखों को स्वच्छ ठंढे जल से धोना चाहिए। यदि आँखें लाल हों या इनमें दर्द हो या पढ़ने में कठिनाई हो, तो विशेषज्ञों से सलाह लेनी चाहिए।

प्रायः कानों में मैल आदि के जमने से इनमें दर्द हो जाता है। अतः इन्हें भी साफ रखना आवश्यक है। कान में दर्द होने या इनके बहने पर यथाशीघ्र डाक्टर को दिखाना उचित है।

(vi) हाथ-पैरों की सफाई— हम हाथ से भोजन करते हैं। गन्दे हाथों और नखों के कारण अनेक विषाक्त पदार्थ, रोग के कीटाणु आदि भोजन के सहारे हमारे पेट में पहुँच जाते हैं। अतः भोजन करने के पहले और इसके बाद हाथों को गर्म जल या साबुन से भली-भाँति धो लेना उचित है। बच्चों

में यह आदत बचपन से ही डालनी आवश्यक है। उँगलियों के नाखून बड़े-बड़े रहने से साबुन से हाथ धोने पर भी इसका मैल नहीं निकलता है। अतः नाखून को बराबर कटवाते रहना उचित है।

(vii) नाक की सफाई— जिस प्रकार मुँह भोजन का मार्ग है, उसी प्रकार नाक भी साँस लेने का मुख्य द्वार है। नाक के गन्दा रहने से, साँस लेते समय रुकावट होती है, साथ ही गन्दी वायु फेफड़ों में प्रवेश कर जाती है, जिससे विभिन्न प्रकार के श्वास-सम्बन्धी रोग होने का भय रहता है। अतः सभी लोगों को और विशेषकर उन्हें जिन्हें जुकाम हो गया हो हमेशा अपनी नाक साफ रखनी चाहिए।

(ख) गुप्तांगों की सफाई (युवतियों के लिए)—युवावस्था के आरम्भ होते ही यौन-ग्रंथियाँ सक्रिय हो जाती हैं। फलतः लड़कियों को मासिक स्राव आरम्भ हो जाता है। साधारणतः अशिक्षित युवतियाँ मासिक स्राव के समय गन्दे कपड़ों का व्यवहार करती हैं और अपने गुप्तांग को साफ नहीं रखती हैं जिससे उन्हें बहुत-से संक्रामक रोगों का शिकार बन जाना पड़ता है। अतः मासिक स्राव के समय बराबर साफ कपड़ों का व्यवहार करना चाहिए तथा कपड़ा बदलते समय या बीच-बीच में गुप्तांगों को साफ, शुद्ध ताजे जल से धोते रहना चाहिए। इसके अतिरिक्त काँख और जाँघों के बीच वाले भागों का साफ करना आवश्यक है।

(ग) नियमित भोजन— भोजन पर ही हमारा स्वास्थ्य निर्भर है। अतः प्रत्येक व्यक्ति को समय पर, सादा, संतुलित तथा स्वादिष्ट भोजन करना चाहिए। भोजन का समय निश्चित रहना उचित है। जो भी भोजन किया जाय, वह ताजा और गर्म हो। भली-भाँति चबाया हुआ भोजन शीघ्र पच जाता है। अतः खाने में हड़बड़ी करना उचित नहीं है। जो भी भोजन किया जाय, उसे प्रसन्न मन से, भली-भाँति चबाने के बाद ही निगला जाय, इसपर ध्यान रखना उचित है।

भोजन के उपरान्त या भोजन करते समय या जब आवश्यक हो तब, पेय के रूप में, शुद्ध जल का पर्याप्त व्यवहार करना उचित है।

(घ) पोशाक— गन्दे कपड़ों में कीटाणु रहते हैं तथा उनसे बदबू निकलती है। अतः कीटाणुओं से बचने के लिए तथा मन को प्रफुल्ल रखने के लिए साफ कपड़ों का व्यवहार करना चाहिए। जरूरत से कम या ज्यादा कपड़ों का व्यवहार नहीं करना चाहिए।

(च) व्यायाम (Exercise)— व्यायाम के जरिये शरीर की पेशियाँ सुसंगठित तथा शक्तिशाली होती हैं। यह मन प्रफुल्ल रखता है तथा कार्य-क्षमता को बढ़ाता है। व्यायाम करने से शरीर के हरेक अंग तथा संस्थान (Systems) सक्रिय रहते हैं। यह हमारी जीवन-शक्ति को बढ़ाता है। अतः प्रतिदिन हमें थोड़ा व्यायाम करना चाहिए।

(छ) मादक द्रव्यों का बहिष्कार— मादक द्रव्य —शराब, ताड़ी, गाँजा, भाँग, तम्बाकू, बीड़ी, सिगरेट इत्यादि —स्वास्थ्य के लिए विष का काम करते हैं। अतः इनका व्यवहार कदापि नहीं करना चाहिए।

(ज) विश्राम— जिस प्रकार समुचित शारीरिक और मानसिक विकास के लिए व्यायाम आवश्यक है, उसी प्रकार विश्राम (Rest) भी। व्यायाम करते समय मांसपेशियाँ अधिक सक्रिय हो जाती हैं। फलतः इनमें लैक्टिक अम्ल जमा हो जाता है, जिससे अंगविशेष में हम थकावट (Fatigue) का अनुभव करने लगते हैं। विश्राम लेने से पेशियों में जमा हुआ लैक्टिक अम्ल 'ग्लाय-कोजन' के रूप में परिवर्तित हो जाता है और हमारी थकावट दूर हो जाती है।

(झ) आदत— व्यक्तिविशेष का स्वस्थ रहना बहुत हद तक उसकी आदतों पर निर्भर है। अच्छी आदत लगाने का समय बचपन ही है। इस उम्र में जो आदत लग जाती है, वह उम्र के साथ बढ़ती चली जाती है और फिर बड़े होने पर उसका छूड़ाना मुश्किल हो जाता है। हमारे दैनिक जीवन में आदत का विशेष महत्त्व है। अतः बचपन से ही सवेरे उठने, शौच आदि करने, स्वास्थ्यकर भोजन करने, पढ़ने-लिखने, खेल-कूद में भाग लेने, अच्छी संगति में रहने, मादक द्रव्यों से परहेज करने इत्यादि की अच्छी आदत डालनी चाहिए।

इनके अलावा कुछ ऐसी मानसिक अवस्थाएँ हैं —जैसे क्रोध, चिन्ता (Anxiety), प्रफुल्लता, सन्तुष्टि इत्यादि —जिन्हें हम अभ्यास द्वारा दूर कर सकते या अपना सकते हैं। क्रोध, चिन्ता आदि हमारे शरीर तथा मन के लिए हानिकारक एवं प्रफुल्लता, सन्तुष्टि (Contentment) आदि लाभदायक हैं। हमें इन्हें नियन्त्रित करना उचित है।

प्रश्न ३. ऐसी गंदी आदतों का संक्षिप्त विवरण दीजिए जिनसे समाज को हानि पहुँचती है।

उत्तर— हमारी आदतों में कुछ ऐसी हैं जिनसे अपनी हानि तो होती ही है, साथ ही अन्य व्यक्तियों को भी नुकसान पहुँचता है। व्यक्तिविशेष अपनी बुरी आदतों के कारण अपना स्वास्थ्य खराब तो करता ही है, साथ ही समाज के स्वास्थ्य को भी खतरे में डाल देता है। इन गन्दी आदतों में निम्नलिखित प्रमुख हैं—

(i) थूकना— थूकना एक गन्दी आदत है। तम्बाकू या पान खाने वाले व्यक्ति तो प्रायः थूका ही करते हैं, पर कुछ लोग ऐसे भी हैं जो अकारण थूका करते हैं। कई प्रकार के रोगों के कीटाणु लार में पाये जाते हैं। इनमें कुछ ऐसे हैं जो अत्यन्त संक्रामक हैं। लार के थूकने से ये कीटाणु भी उसके साथ फैल जाते हैं। थूक सूखने पर कीटाणु मरते नहीं वरन् हवा के साथ उड़ते रहते हैं। अतः थूक के सहारे कई प्रकार के रोगों के फैलने की संभावना बनी रहती है। थूक पर मक्खियाँ तथा अन्य कीड़े भी बैठते हैं और रोग संक्रमित करने में सहायता करते हैं। अतः जहाँ-तहाँ थूकना उचित नहीं है। अस्पतालों तथा अन्य जगहों में थूकने के स्थान बने रहते हैं। आवश्यकता पड़ने पर उसी में थूकना उचित है। निर्दिष्ट स्थानों पर थकने से विसंक्रामक औषधियों की सहायता से कीटाणुओं का मारना सरल हो जाता है अन्यथा नहीं।

(ii) खाँसना, छींकना आदि—थूकने की तरह छींकना तथा खाँसना भी एक गन्दी आदत है। खाँसने तथा छींकने के द्वारा क्षय, जुकाम, डिप्थीरिया इत्यादि के रोग-उत्पादक जीवाणु हवा में इधर-उधर फैल जाते हैं। शरीर में

इनके प्रविष्ट होने से रोग उत्पन्न हो जाते हैं। कुछ लोग अनजाने या अज्ञतावश मुँह या नाक पर बिना रूमाल रखे अन्य व्यक्तियों की ओर जोर से छींकते या खांसते हैं। यह बहुत ही बुरी आदत है। अतः हमें ऐसी असभ्य और गंदी आदतों को त्याग देना चाहिए।

(iii) यत्र-तत्र पेशाव-पाखाना करना— जहाँ-तहाँ विशेषकर सड़कों, जलाशयों के किनारे, नालों या कुएँ इत्यादि के नजदीक पाखाना-पेशाब करना अत्यन्त ही निन्दनीय कार्य है। बहुधा मक्खियाँ इनपर बैठकर भोज्य पदार्थों पर बैठती हैं जिससे हैजा, टायफायड, शूल, कृमि इत्यादि रोगों का प्रसार हो जाता है। कुछ लोग अपने बच्चों को अपने घर के निकट की नालियों में ही पेशाब-पाखाना करने की आदत लगा देते हैं। यह उचित नहीं है। इससे भी अनेक प्रकार की बीमारियों के फैलने का भय रहता है।

(iv) जन-पाखानों और पेशाबखानों का दुरुपयोग— सर्वसाधारण की सुविधा के लिए शहरों में विशेष स्थानों पर, विश्रामालयों, सिनेमागृहों, रेल के डब्बों इत्यादि में पाखाने और पेशाबखाने बने रहते हैं; पर लोग इनका भी दुरुपयोग करते हैं। वे अक्सर इनकी ऊपरी सतह पर ही पाखाना तथा पेशाब कर इन्हें गन्दा कर देते हैं। कुछ लोग तो अज्ञतावश ऐसा करते हैं, पर कुछ ऐसे भी हैं जो जान-बूझकर ऐसा करते हैं। यह भी एक गन्दी आदत है। प्रायः जब रेलगाड़ी स्टेशनों पर खड़ी रहती है तो उस समय भी अनजाने लोग रेल के डब्बों के पाखाने में पाखाना करते हैं। ऐसा करने से स्टेशन का प्लेटफार्म गन्दा हो जाता है तथा रोग फैलने का भय रहता है। अतः जबतक गाड़ी स्टेशन पर खड़ी रहे, तबतक इसके पाखाने का व्यवहार करना अनुचित है।

(v) पान की पीक फेंकना— पान की पीक फेंकना भी एक गन्दी आदत है। कुछ लोग पान खाकर सड़कों और आफिसों की दीवाल, फर्श एवं अन्य सार्वजनिक स्थानों पर पीक फेंककर उन्हें गन्दा कर देते हैं। यह उचित नहीं है। पान की पीक द्वारा रोग के जीवाणु रोगी के शरीर से निकलकर वायु-

मण्डल में फैल जाते हैं। पुन: वे स्वस्थ व्यक्तियों के शरीर में प्रविष्ट होकर उन्हें भी रोग का शिकार बना देते हैं। प्राय: दफ्तरों, सिनेमाघरों एवं अन्य सार्वजनिक स्थानों में निश्चित स्थान पर थूकने या पान की पीक फेंकने के लिए बालूयुक्त काठ के बक्से रखे रहते हैं। वहीं पीक फेंकना उचित है।

(vi) जनपार्कों का दुरुपयोग— बड़े-बड़े शहरों में सर्वसाधारण के हित सुबह-शाम स्वच्छ वायु की प्राप्ति (टहलने) के लिए तथा बच्चों की क्रीड़ा के लिए फुलवारी और पार्क बने रहते हैं। कुछ लोग मूर्खतावश उन स्थानों में भी पाखाना-पेशाब कर देते हैं तथा फूल-पत्तियों को तोड़ लेते हैं। ऐसा करना अनुचित तथा समाज के लिए हानिकारक है।

(vii) जहाँ-तहाँ केले का छिलना फेंकना— कुछ लोग अनजाने ही सड़कों पर तथा स्टेशन के प्लेटफार्म पर जहाँ-तहाँ केले के छिलके फेंक देते हैं। बहुधा लोगों के पैर केले के छिलके पर पड़ जाने से वे फिसल जाते हैं। फलत: उनके हाथ-पैरों में चोट आ जाती है और कभी-कभी उनकी हड्डियाँ भी टूट जाती हैं। अत: यह आदत समाज के लिए अत्यन्त ही हानिकारक है। हमें केले के छिलके ऐसी जगह फेंकने चाहिए जहाँ लोगों के पैर पहुँचने न पायें।

(viii) कूड़े-कर्कट का विसर्जन— बहुधा शहरों में लोग अपने घर का कूड़ा-कर्कट निकालकर सड़कों पर या दूसरे के घरों के समीप ले जाकर डाल देते हैं। दोनों आदत खतरे से खाली नहीं हैं। कूड़े-कर्कटों में मिले हुए जीवाणु वायु में मिलकर रोगों का प्रसार करते हैं। कूड़े-कर्कट डालने के लिए शहरों में स्थान-स्थान पर बरतन रखे रहते हैं। ऐसे स्थानों में ही कूड़ा-कर्कट डालना उचित है। देहातों में इसका उपयोग 'कम्पोस्ट' खादों के बनाने में किया जा सकता है।

प्रश्न ४. प्रत्येक व्यक्ति के लिए शारीरिक व्यायाम क्यों आवश्यक है ?

उत्तर— शरीर के प्रत्येक अंग को स्वस्थ रखने तथा इनकी समुचित वृद्धि और विकास के लिए प्रत्येक दिन प्रत्येक व्यक्ति के लिए नियमित रूप से

व्यायाम करना आवश्यक है। व्यायाम करते समय मांशपेशियों को अधिक परिश्रम करना पड़ता है। फलतः उन्हें अधिक रक्त प्राप्त होता है, वे सबल हो जाती हैं तथा उनकी कार्यक्षमता बढ़ जाती है। व्यायाम से निम्नलिखित लाभ हैं—

(i) व्यायाम करने से अधिक पसीना चलता है, अतः हमारे शरीर से अधिक विकार दूर होते हैं।

(ii) व्यायाम करते समय हृदय की गति बढ़ जाती है तथा साँस तेजी से चलने लगती है। फलतः मांसपेशियों से उत्पन्न हुए विकार अधिक तेज गति से बाहर निकलने लगते हैं और अधिकाधिक परिमाण में आक्सीजन रक्त में आता रहता है जिससे अधिक रक्त शुद्ध होता रहता है।

(iii) व्यायाम के समय हमलोग अधिक तेजी से साँस लेते हैं जिससे हमलोगों को अधिक आक्सीजन मिलता है। अधिक आक्सीजन मिलने से पेशियाँ तथा चर्म मजबूत रहते हैं।

(iv) व्यायाम करने से मस्तिष्क में भी रक्त का संचार बढ़ जाता है (शीर्षासन आदि के समय) जिससे मस्तिष्क ताजा रहता है और अच्छी तरह काम करता है।

(v) व्यायाम करने से ऊपर की पेशियाँ मजबूत होती हैं तथा आँत की गति में वृद्धि होती है जिससे कब्ज की शिकायत नहीं रहती। पेट साफ रहने से शरीर नीरोग रहता है।

(vi) व्यायाम करने से जिगर अधिक पित्त तैयार करता है, जिससे पाचन-क्रिया जल्दी और अच्छी तरह होती है। फलतः शरार बलिष्ठ हो जाता है।

(vii) व्यायाम के समय हृदय की गति बढ़ जाती है और उसे अधिक कार्य करना पड़ता है फलतः हृदय में मजबूती आती है।

(viii) व्यायाम करने से नींद ठीक से आती है।

(ix) व्यायाम करने से साहस बढ़ता है और जल्दी-जल्दी सोचने-विचारने की आदत हो जाती है।

(x) व्यायाम करने से पेशियाँ अधिक क्रियाशील होती हैं जिससे शरीर का तापक्रम बढ़ जाता है।

(xi) व्यायाम करने से शरीर में स्फूर्ति आती है, चित्त प्रसन्न रहता है तथा पढ़ने-लिखने एवं अन्य कार्य करने में मन लगता है।

परन्तु एक बात है। हर चीज की सीमा होती है। व्यायाम की भी सीमा है। अधिक व्यायाम करने से लाभ के बदले हानि ही होती है।

प्रश्न ५. परिश्रम के साथ-साथ ही विश्राम भी क्यों आवश्यक है?

उत्तर— विश्राम की आवश्यकता— जिस प्रकार समुचित शारीरिक और मानसिक विकास के लिए व्यायाम आवश्यक है, उसी प्रकार उचित विश्राम भी। व्यायाम करते समय मांसपेशियाँ अधिक सक्रिय हो जाती हैं। फलतः इनमें लैक्टिक अम्ल जमा हो जाता है जिससे अंगविशेष में हमें थकावट का अनुभव होने लगता है। परिश्रम के बाद थोड़ा विश्राम कर लेने से पेशियों में जमा हुआ लैक्टिक अम्ल 'ग्लायकोजन' के रूप में परिवर्तित हो जाता है और हमारी थकावट दूर हो जाती है।

क्षणिक विश्राम— यों तो पूर्ण निद्रा द्वारा ही शरीर के सभी अंगों और मस्तिष्क को पूरा विश्राम मिलता है, लेकिन क्षणिक विश्राम के लिए कामों में हेर-फेर कर लेने से थोड़ा विश्राम मिल जाता है। अधिक समय तक मानसिक क्रिया करते रहने के उपरान्त थोड़ा टहल लेने या अपने बाग में हलका काम कर लेने से मस्तिष्क को थोड़ा विश्राम मिल जाता है।

विश्राम के अन्य साधन— इसी प्रकार अधिक शारीरिक परिश्रम करने के बाद बिस्तरे पर लेटकर अखबार आदि पढ़कर या मनोरंजन-कार्यों में भाग लेकर, मित्रों से वार्तालाप कर या अपने दैनिक कार्यों में हेर-फेर कर शरीर और मन को क्षणिक विश्राम दिया जा सकता है।

प्रश्न ६. नींद की क्या आवश्यकता है?।

उत्तर— निम्नलिखित कारणों से नींद आवश्यक है—

(i) थकावट दूर करने के लिए नींद नितान्त आवश्यक है।

(ii) दिन भर के काम में मस्तिष्क एवं मांसपेशियों में जितने विषैले पदार्थ जमा होते हैं, वे सभी सोते समय रक्त-परिभ्रमण द्वारा साफ हो जाते हैं।

(iii) तन्तुओं में जो टूट-फूट होती है, उसकी मरम्मत के लिए अवकाश देने के लिए सोने की आवश्यकता है।

(iv) बालकों की उचित वृद्धि के लिए नींद नितान्त आवश्यक है। सोने के समय शरीर को कम ऊर्जा की आवश्यकता होती है, अतः टूट-फूट की मरम्मत करने के लिए तथा वृद्धि के लिए अधिक ऊर्जा उपलब्ध रहती है।

(v) मधुर निद्रा स्पष्ट चिन्तन के लिए नितान्त आवश्यक है। नींद अच्छी तरह आने पर मस्तिष्क की कोशाओं की थकावट पूर्णतया दूर हो जाती है और वे अधिक चेतना के साथ काम करती हैं।

निद्रा की मात्रा— प्रत्येक व्यक्ति के लिए पूर्ण विश्राम या निद्रा की मात्रा निर्धारित करना कठिन ही नहीं, बल्कि असम्भव भी है। प्रत्येक व्यक्ति को अपने आवश्यकतानुसार निद्रा की जरूरत पड़ती है। फिर भी, उम्र और परिश्रम के भेद से निद्रा की मात्रा, मोटे तौर से यों निर्धारित की गयी है कि साधारणतः बच्चों को दस घंटा और बड़ों को कम-से-कम आठ घंटा प्रत्येक रात्रि में जरूर सोना चाहिए।

अध्याय ५

वस्त्र

प्रश्न १. हम वस्त्रों का व्यवहार किस उद्देश्य से करते हैं ? समझाकर लिखें।

उत्तर— स्वस्थ जीवन व्यतीत करने के लिए जिन चीजों की जरूरत होती है, उनमें वस्त्र भी एक है। वस्त्रों का व्यवहार निम्नलिखित उद्देश्यों की पूर्ति

के लिए किया जाता है—

(i) शरीर की सुरक्षा— वस्त्र सर्दी, गर्मी, वर्षा, आघात, कीड़े-मकोड़े इत्यादि से शरीर की रक्षा करता है। इसके अभाव में मनुष्य स्वस्थ जीवन नहीं व्यतीत कर सकता।

(ii) लज्जा-निवारण— लज्जा-निवारणार्थ अपने अंगों को ढकने के लिए मनुष्य को वस्त्र की आवश्यकता होती है।

(iii) सौन्दर्य वृद्धि— हमलोगों की यह स्वाभाविक इच्छा रहती है कि हम अधिक सुन्दर दिखाई दें। सभ्यता के विकास के साथ-साथ इस प्रवृत्ति का भी विकास होता गया है; अत: वस्त्रों का एक उद्देश्य सौन्दर्य-वृद्धि भी है। वस्त्रों के द्वारा मनुष्य अपनी कुरूपता को भी छिपाकर स्वच्छन्दतापूर्वक घूम-फिर सकता है।

प्रश्न २. ऊनी, सूती और रेशमी कपड़ों के गुणों का उल्लेख कीजिए।

उत्तर— ऊनी वस्त्र— ऊनी वस्त्र का व्यवहार लोग सर्दी के मौसम में करते हैं। ऊन कुचालक है, अत: ऊनी वस्त्रों के पहनने से शरीर की गर्मी सहज ही बाहर नहीं निकल पाती है। यह ज्यों-की-त्यों बनी रहती है। इनमें पसीना और गीलापन सोखने का गुण भी रहता है फलत: इनपर सिलवटें कम पड़ती हैं। पर ऊनी वस्त्रों में एक भारी ऐब यह रहता है कि जल से मलने पर ये सिकुड़ जाते हैं। अपेक्षाकृत महँगे रहने के कारण ऊनी वस्त्र जनसाधारण के लिए उपयोगी तथा सहज-सुलभ नहीं हैं।

सूती वस्त्र— भारतवर्ष में सूती वस्त्रों का अधिक व्यवहार होता है क्योंकि अन्य वस्त्रों की अपेक्षा ये सस्ते होते हैं। गर्मी के दिनों में इस वस्त्र का अधिक व्यवहार होता है। ताप के उत्तम संवाहक, नमीशोषक और सस्ते होने के कारण ये जनसाधारण के वस्त्र हैं। इनकी सफाई सहज-सुलभ है, पर इनमें सिलवटें शीघ्र पड़ जाती हैं।

रेशमी वस्त्र— रेशमी वस्त्र सूती या ऊनी वस्त्रों की अपेक्षा अधिक मजबूत और टिकाऊ होते हैं। ये पसीना सोख सकते हैं, इसी कारण गर्म होते

हुए भी ये हलके होते हैं और गर्मी के मौसम में पहनने पर ठंढे मालूम पड़ते हैं। ये चिकने और मुलायम भी होते हैं तथा इनमें सिलवटें कम पड़ती हैं। महँगे, धुलाई में कठिनाई तथा खर्चीले होने के कारण इनका उपयोग जन-साधारण नहीं कर पाते। रेशमी वस्त्र उबालने से खराब हो जाते हैं।

प्रश्न ३. वस्त्रों के लिए कपड़े का चुनाव करते समय किन-किन बातों पर ध्यान देंगे ?

उत्तर—कपड़ों का चुनाव करते समय निम्नलिखित बातों पर ध्यान देना आवश्यक है—

(i) मौसम— वस्त्रों का मुख्य उद्देश्य शरीर की सुरक्षा ही है। यह हमें सर्दी, गर्मी आदि से बचाता है। अतः हमारा वस्त्र ऐसा होना चाहिए जो विशेष मौसम में सर्दी, गर्मी आदि से हमारी सुरक्षा कर सके। गर्मी के मौसम में सूती या रेशमी एवं जाड़े में ऊनी वस्त्र का उपयोग करना चाहिए।

(ii) आर्थिक अवस्था— परिवार की आर्थिक अवस्था को ध्यान में रख-कर ही वस्त्रों के लिए कपड़े की खरीद में खर्च करना चाहिए।

(iii) कपड़े की कोटि— आकर्षक और सन्तोषप्रद सिले वस्त्रों के लिए कपड़े का चुनाव करते समय इसकी कोटि (Quality) पर ध्यान देना चाहिए। कुशल गृहिणी पहनने वाले के रंग, कद, उम्र, टिकाऊपन, अभिरुचि, मौसम इत्यादि पर ध्यान रखते हुए उपयुक्त कोटि का यथासाध्य सिकुड़नहीन (San-forised) कपड़ा खरीदती है।

(iv) उपयोगिता— वस्त्र के कपड़े सूती, रेशमी, लीनेन, ऊनी इत्यादि जैसे भी हों, इनकी उपयोगिता बहुत हदतक इनकी बुनावट पर भी निर्भर है। झीनी बुनावट का हल्का कपड़ा कमजोर और महीन सूत का ठोस बना हुआ कपड़ा अपेक्षाकृत मजबूत, ठंढा और टिकाऊ होता है। इसके अलावा कपड़ा खरीदते समय इसपर भी ध्यान रखना चाहिए कि खरीदे कपड़े से कौन-सा वस्त्र सिलाना है। ब्लाउज, पेटीकोट, फ्रॉक, कमीज, सूट, चेस्टर इत्यादि के

कपड़ों की बुनावट में भिन्नता रहती है। अतः उपयोगिता को दृष्टिकोण में रखकर ही परिवार के लिए कपड़ा खरीदना चाहिए।

(v) रंग—सभी रंगीन कपड़े का रंग पक्का नहीं होता है। अतः रंगीन कपड़ा लेते समय यह ध्यान रखना चाहिए कि इसका रंग पक्का हो। यथा-साध्य प्रसिद्ध मिलों के रंगीन कपड़े जिनके रंग के पक्के होने की गारंटी कपड़े पर छपी रहती है, खरीदने चाहिए।

(vi) सुमेलन—सभी रंग के कपड़े सभी प्रकार के शरीर वालों को एक जैसे नहीं फबते हैं। कुछ विशेष रंग के कपड़े निश्चित विशेष शरीर-वर्ण वालों को विशेष आकर्षक बना देते हैं। रंगों में भी कुछ रंग ऐसे हैं जो बच्चों को अधिक फबते हैं और अन्य अवस्थावालों को नहीं। अतः पोशाक के लिए रंगीन कपड़े खरीदते समय प्रत्येक गृहिणी को निम्नलिखित बातों पर ध्यान रखना चाहिए—

(क) श्याम वर्ण के शरीर-चर्म वालों को पीले, हल्के, सुनहरे या गाढ़े चमकीले, लाल, बादामी या अन्य कोई भड़कीले या कोई सफेद रंग के कपड़े नहीं फबते हैं। अतः यथासाध्य इनके लिए हल्के रंग के कपड़े ही खरीदे जायँ।

(ख) गौर वर्ण वालों को नारंगी, पीले, लाल, बादामी, गुलाबी तथा सफेद वस्त्र नहीं खिलते हैं। अतः इनके लिए गृहिणी को गहरे रंग के कपड़े खरीदने चाहिए।

(vii) अनुरूपता—सुन्दरता की वृद्धि के लिए यदि एक से अधिक रंगों के कपड़ों के मेल से वस्त्र सिलाने हों या विभिन्न रंगों के कपड़े एक ही समय पहनने हों तो रंगों की अनुरूपता पर भी ध्यान देना आवश्यक है। पीले-हरे रंग के साथ लाल-बैंगनी और बैंगनी-नीले के साथ पीला-लाल अधिक फबता है।

(viii) डिज़ाइन—कपड़ा खरीदते समय गृहिणी को यह भी ख्याल रखना चाहिए कि किसके लिए किस डिजाइन का कपड़ा लेना चाहिए। लम्बी खड़ी धारी की पोशाक से कद लम्बा प्रतीत होता है और आड़े धारीदार

कपड़े से कद छोटा दिखाई पड़ता है। अतः नाटे-मोटे व्यक्ति के लिए खड़ी धारी और लम्बे-पतले के लिए आड़ी धारा का वस्त्र उपयुक्त होता है।

(ix) अर्ज— कपड़ा खरीदते समय इसके अर्ज पर भी ध्यान देना आवश्यक है। कपड़े कई अर्ज के होते हैं। साधारणतः दोबर अर्ज के कपड़े महँगे होते हुए भी इकहरे अर्ज वाले से सस्ते पड़ते हैं। कपड़ा खरीदने के पहले हिसाब लगा लेना चाहिए कि अर्ज के अनुसार कौन-सा कपड़ा सस्ता और कौन-सा महँगा पड़ेगा। बड़े-बड़े शहरों में टुकड़े कपड़े (Cutpieces) की पृथक दूकानें रहती हैं। बच्चों के फ्राक, जाँघिया आदि के कपड़े यहाँ से प्रायः सस्ते दामों पर मिल जाते हैं। अतः यथासाध्य यहीं से छोटे बच्चों के लिए कपड़ा खरीदना चाहिए।

प्रश्न ४. "कपड़ों का चुनाव मौसम पर ही निर्भर है," इस कथन की पुष्टि कीजिए।

उत्तर—वास्तव में कपड़ों का चुनाव मौसम पर निर्भर है। जिन देशों में अधिक ठंढा पड़ता है वहाँ के लोग सालों भर ऊनी वस्त्र पहनते हैं। अधिक शीतप्रधान देशों में 'फर' (Fur) वाले कोटों का व्यवहार करते हैं। ऊनी वस्त्र कुचालक होते हैं फलतः शरीर की गर्मी बनी रहती है, बाहर नहीं निकल पाती। इसके विपरीत गर्मी के मौसम में या गर्म-प्रधान देशों में सूती, सफेद और ढीले-ढाले कपड़े अधिक व्यवहार में आते हैं। सूती कपड़ों द्वारा ताप के परिवहन में कोई रुकावट नहीं होती है तथा पसीने के वाष्पीकरण में भी कम अवरोध होता है। अतः ऐसे कपड़े आरामदायक होतें हैं। अगर गर्मी के मौसम में ऊनी कपड़े और जाड़े के मौसम में सूती कपड़े का व्यवहार किया जाय तो जीवन कष्टमय हो जायगा। इसीलिए कहा गया है कि कपड़ों का चुनाव मौसम पर ही निर्भर है।

अध्याय ६

संक्रामक रोग

प्रश्न १. संक्रामक रोग किसे कहते हैं? यह कैसे फैलता है? उदाहरण देकर समझाइए।

उत्तर–हैजा, प्लेग, चेचक, निमोनिया इत्यादि रोग अपने उत्पादक जीवाणुओं से फैलते हैं। इस प्रकार के जीवाणु से जो-जो रोग पैदा होते हैं उन्हें ही संक्रामक रोग कहते हैं। इन रोगों के जीवाणु किसी प्रकार शरीर में प्रविष्ट होकर भिन्न-भिन्न अंगों में पहुँचकर विशेष प्रकार के विष उत्पन्न करते हैं तथा स्वयं अपनी संख्या में भी वृद्धि करते हैं जिससे रोग के लक्षण उत्पन्न हो जाते हैं। इस प्रकार निमोनिया के जीवाणु फुस्फुस या फेफड़ों में पहुँचकर ज्वर, खाँसी आदि लक्षण उत्पन्न करते हैं। हैजे के जीवाणु अंत्रियों में पहुँचकर पतले दस्त और वमन उत्पन्न कर देते हैं। प्लेग के जीवाणु लिम्फ की गाँठों में पहुँचकर सारे शरीर में विष फैला देते हैं।

संक्रामक रोग तीन श्रेणियों में बाँटे जा सकते हैं—(i) वायु द्वारा फैलने वाले रोग, जैसे—इन्फ्लुएन्जा, सर्दी, खसरा, काली खाँसी, राजयक्ष्मा, न्यूमोनिया इत्यादि, (ii) जल और भोजन द्वारा फैलने वाले रोग, जैसे—टाइफाइड, हैजा आदि, (iii) कीड़ों और मच्छड़ों द्वारा फैलने वाले रोग, जैसे—प्लेग, मलेरिया, खुजली इत्यादि।

संक्रामक रोग निम्नलिखित कारणों से फैलते हैं—(i) रोगी के साँस से निकले हुए जल-कण को साँस में लेने से संक्रामक रोग होता है। जल-कण में रोग के जीवाणु रहते हैं। रोगी के खाँसने तथा सामने बैठकर बात करने से रोगी के साँस के जल-कण मनुष्य अपनी साँस में लेते हैं। इस प्रकार सर्दी,

खसरा और इन्फलुएन्जा रोग फैलते हैं। (ii) जीवाणु मिले धूल-कण साँस में लेने से जीवाणु फेफड़ों में जाते हैं, फिर खून में चले जाते हैं। (iii) जीवाणु-युक्त भोजन खाने या कोई पेय पीने से राजयक्ष्मा, हैजा आदि रोग इस तरह फैलते हैं। (iv) रोगी के पाखाना मिले हुए पानी में पाखाने का जीवाणु मिल जाता है, जैसे—टायफाइड का जीवाणु। (v) पिस्सू या मच्छड़ों के काटने से भी संक्रामक रोग फैलता है। काटने के पहले प्लेग के पिस्सू, मलेरिया के मच्छड़ आदि अपने रोग का जीवाणु-पूर्ण खून शरीर में देते हैं और तब खून खींचते हैं। (vi) रोगी के साथ सोने से या रोगी के काम में लाये हुए रूमाल, कपड़े आदि के प्रयोग से या रोगी के बिछावन को बिना साफ किये काम में लाने से रोग फैलता है। (vii) एक ही बरतन में खाने से राजयक्ष्मा, डिप्थीरिया आदि रोग फैलते हैं। (viii) केरियर्स द्वारा कुछ लोग स्वयं तन्दुरुस्त रहते हैं लेकिन वे रोग पैदा करने वाले जीवाणु छोड़ते रहते हैं। ये जीवाणु उन्हें नुकसान नहीं पहुँचाते लेकिन ये दूसरों को रोग देते हैं। डिप्थीरिया इसी तरह फैलता है।

प्रश्न २. संक्रामक रोग के जीवाणु कितने प्रकार के होते हैं ? प्रत्येक का संक्षिप्त विवरण दीजिए।

उत्तर — प्राप्ति, आकार-प्रकार और गुणों के भेद से सूक्ष्म रोग-उत्पादक जीवाणुओं को निम्नलिखित वर्गों में रखा जा सकता है—

(क) बैक्टीरिया — ये एककोशीय वानस्पतिक शाकाणु हैं तथा विभिन्न आकार के होते हैं। पर सभी अणुवीक्षणीय हैं। आकार के विचार से कुछ तो गोलाकार होते हैं जिन्हें कोकस (Cocus) कहते हैं। दण्डाकार या लम्बे आकार के जीवाणु बेसिलस (Bacillus) कहे जाते हैं। पेंचदार जीवाणु स्पिरिला के नाम से सम्बोधित होते हैं। इनके अतिरिक्त कुछ बैक्टीरिया ऐसे भी हैं जिनका सम्बन्ध सिरका, शराब, दही इत्यादि के बनाने से है। इन सभी जीवाणुओं में कोकस जातिवाले अधिक रोग-उत्पादक होते हैं। प्रायः ये गुच्छे में रहते हैं। ऐसी अवस्था में इन्हें स्टेफिलो कोकस कहते हैं। कोकसजातीय जीवाणु जब

चेन या लड़ी के रूप में मिले पाये जाते हैं तो उन्हें स्ट्रेप्टो कोकस कहते हैं।

बैक्टीरिया से हैजा, क्षय, डिप्थीरिया, टाइफाइड इत्यादि रोग फैलते हैं।

(ख) प्रोटोजोआ— ये प्राणिजवर्गीय एककोशीय जीवाणु हैं। आकार में ये बैक्टीरिया से बड़े होते हैं, फिर भी बिना अणुवीक्षण-यंत्रों के यह भी दिखाई नहीं पड़ते हैं।

ऐसे जीवाणुओं द्वारा मलेरिया, फाइलेरिया, पेचिश इत्यादि रोगों का जन्म और प्रसार होता है।

(ग) वायरस— वायरस जाति के रोग-उत्पादक जीवाणु बैक्टीरिया से भी सूक्ष्म होते हैं। इन्हें इलेक्ट्रोन सूक्ष्मदर्शक यंत्र से देखा जा सकता है। इस जाति के जीवाणुओं द्वारा चेचक, जुकाम, इन्फलुएंजा इत्यादि रोग उत्पन्न होते हैं।

इनके अलावा फफूंद, स्पाईरोचेट्स इत्यादि भी रोग-उत्पादक जीवाणुओं में गिने जाते हैं।

प्रश्न ३. रोग-उत्पादक जीवाणुओं की प्रतिक्रिया हमारे शरीर में किस प्रकार होती है ? समझाकर लिखिए।

उत्तर— रोग-उत्पादक जीवाणु सजीव होते हैं। अतः इनको भोजन, जल, वायु और गर्मी चाहिए। इन जीवाणुओं में अधिकतर जीवाणु पराश्रयी हैं, अर्थात् ये अपना भोजन अन्य जीवों से प्राप्त करते हैं।

स्थानीय संक्रमण— शरीर में प्रवेश कर ये रोग-उत्पादक जीवाणु स्थानविशेष में अवस्थित हो जाते हैं और वहीं इनकी संख्या में वृद्धि होती है। ऐसे संक्रमण स्थानीय संक्रमण (Local infection) कहाते हैं। अपनी वृद्धि और विकास के लिए ये अपना भोजन स्थानविशेष के तन्तुओं या रक्त से प्राप्त करते हैं। उदाहरण के लिए टाइफाइड, पेचिश, हैजा इत्यादि के रोग-उत्पादक जीवाणु भोजन या जल के साथ मुँह द्वारा शरीर में प्रवेश कर आँतों में अवस्थित हो जाते हैं। इनफ्लुएंजा, कुकुर-खाँसी के रोग-उत्पादक जीवाणु

साँस द्वारा नासिकामार्ग से शरीर में प्रवेश कर श्वास-प्रणाली में अपना डेरा डाल देते हैं। टिटेनस रोग के जीवाणु जख्मों द्वारा चर्म के अन्दर चले जाते हैं और रक्त में मिलकर शरीर में विशिष्ट प्रकार के लक्षण उत्पन्न करते हैं।

साधारण संक्रमण— स्थानविशेष में अवस्थित होने पर ये आस-पास के तन्तुओं में फैल जाते हैं। पुनः लसीका या रक्त द्वारा ये सारे शरीर में फैल जाते हैं। फलतः सारा शरीर आक्रान्त हो जाता है। ऐसी अवस्था के संक्रमण को साधारण संक्रमण (General infection) कहते हैं। उदाहरण के लिए टाइफाइड ज्वर-उत्पादक-जीवाणुओं की क्रिया आँतों से आरम्भ होती है। पुनः दो-चार दिन के बाद ये रक्त-प्रवाह में मिल जाते हैं।

संक्रान्ति-काल—शरीर में रोग-उत्पादक जीवाणुओं के पहुँचते ही रोग के लक्षण उत्पन्न नहीं हो जाते बल्कि रोगविशेष के भेद से इनके प्रवेश करने और रोग के लक्षण उत्पन्न होने में कुछ समय लगता है। इस अवधि को संक्रान्ति-काल (Incubation period) कहते हैं। इस अवधि में जीवाणुओं तथा उनकी संख्या में वृद्धि होती है। धीरे-धीरे इनके शरीर से निकले हुए विष (Toxin) द्वारा रोग के लक्षण प्रकट होते हैं। यों तो प्रत्येक रोग के अपने-अपने विशेष लक्षण हैं लेकिन प्रायः सभी संक्रामक रोगों में ज्वर अवश्य होता है।

उपसर्ग-काल— संक्रामक रोग से आक्रान्त रोगियों के सम्पर्क में रहने या संक्रामक रोग से मुक्त हो जाने पर मलमूत्र आदि के साथ रोग के जीवाणु निकलते हैं। ऐसी अवस्था में इनके द्वारा रोगों का प्रसार सम्भव है। एक निश्चित अवधि बीत जाने पर रोगी का शरीर रोग के जीवाणुओं से पूर्णतया मुक्त हो जाता है। इस अवधि को उपसर्ग-काल कहते हैं।

प्रश्न ४. रोग-संक्रमण के कौन-कौन-से साधन हैं? समझाकर लिखिए।

उत्तर— शरीर में रोग के लक्षण उत्पन्न होने के लिए विशेष प्रकार के रोग-उत्पादक जीवाणुओं का शरीर के अन्दर प्रवेश होना तथा इनकी संख्या में वृद्धि होना आवश्यक है। ये रोग-उत्पादक जीवाणु वस्तुतः प्रत्यक्ष रूप से किसी

मनुष्य या अन्य जीव से निकलकर आक्रान्त व्यक्ति के शरीर में प्रवेश करते हैं। संक्रामक रोग से आक्रान्त रोगियों के मल-मूत्र, साँस, थूक, कफ, चर्म इत्यादि में विशिष्ट रोग के जीवाणु रहते हैं। बहुधा ऐसा होता है कि व्यक्ति-विशेष रोग से मुक्ति प्राप्त कर लेता है; फिर भी इसके शरीर में विशेष रोग के जीवाण वर्त्तमान रहते हैं। इन्हें रोगवाहक (Disease carriers) कहते हैं। प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से इनके संसर्ग में रहने से स्वस्थ व्यक्ति को भी रोग हो जाता है। कभी-कभी ऐसा भी देखा जाता है कि व्यक्तिविशेष स्वयं स्वस्थ है, लेकिन इसके शरीर में रोग के जीवाणु वर्त्तमान रहते हैं।

साधारण रोग के जीवाणुओं के प्रसार के साधन और मार्ग निम्न-लिखित हैं—

(i) प्रत्यक्ष सम्पर्क द्वारा (चर्म)—चेचक, फोड़ा, फुंसी, दाद, खुजली इत्यादि।

(ii) भोजन और जल द्वारा (मुँह)— टाइफाइड, पेचिश, हैजा, चेचक, क्षय इत्यादि।

(iii) वायु द्वारा (नाक)—क्षय, कुकुर-खाँसी, जुकाम, इनफ्लुएंजा इत्यादि।

(iv) गहरे जख्मों द्वारा (चर्म) – टिटेनस।

(v) मच्छड़ों द्वारा—मलेरिया, फाइलेरिया आदि।

(vi) पिस्सू (चर्म)—प्लेग।

(नोट— मलेरिया, फाइलेरिया आदि रोगों के जीवाणुओं के स्वयं मानव-शरीर में प्रविष्ट होने के पहले मच्छड़ के शरीर में इनका विकास होना जरूरी है।)

संक्रमण की शृंखला— एक व्यक्ति से दूसरे व्यक्ति में रोग-उत्पादक जीवाणुओं के जाने के मार्ग को संक्रमण- शृंखला (Chain of infection) कहते हैं। रोग-उत्पादक जीवाणुओं के प्राकृतिक भेद से संक्रमण-शृंखला छोटी या बड़ी हो सकती है।

रोगियों के शरीर से निकलकर स्वस्थ व्यक्तियों के शरीर में शीघ्र स्थापना नहीं होने से जुकाम, इन्फ्लुएंजा, खसरा इत्यादि रोगों के जीवाणुओं

का विनाश शीघ्र हो जाता है। इसके विपरीत क्षय रोग के जीवाणु महीनों धूल के कणों में सजीव अवस्था में वर्त्तमान रह सकते हैं। टिटेनस रोग के जीवाणु वर्षों बाद मिट्टी में सजीव अवस्था में पाये जाते हैं।

प्रश्न ५. साम्मुख्य-शक्ति (रोग-निरोध-क्षमता) किसे कहते हैं ? इसके कितने भेद हैं ? समझाकर लिखें।

उत्तर—साम्मुख्य-शक्ति क्या है ?— संक्रामक रोग से आक्रान्त रोगियों की सेवा करते या उनके संसर्ग में रहते हुए भी कुछ लोगों को संक्रामक रोग नहीं होता है। बहुधा ऐसा देखा गया है कि व्यक्तिविशेष को एक बार चेचक या टाइफाइड हो जाने पर, उसे पुनः वे रोग नहीं होते। यदि होते भी हैं, तो मन्द रूप से होते हैं। व्यक्तिविशेष की रोग से बचने की ऐसी क्षमता को साम्मुख्य-शक्ति (Immunity) कहते हैं। अर्थात् ऐसे व्यक्तियों में प्राकृतिक रूप से रोग से बचने की क्षमता आ जाती है, जिसके द्वारा ये विशेष संक्रामक रोग से बच जाते हैं।

साम्मुख्य-शक्ति के भेद—

साम्मुख्य-शक्ति
- प्राकृतिक
- अर्जित
- कृत्रिम

प्राकृतिक साम्मुख्य-शक्ति— जानवरों के बहुतेरे ऐसे संक्रामक रोग हैं, जिनसे केवल जानवर ही आक्रांत होते हैं; मनुष्यों पर उनका कोई प्रभाव नहीं पड़ता है। मनुष्यों में प्राकृतिक रूप में ऐसे रोगों से बचने की क्षमता वर्त्तमान रहती है, जिसके कारण इनके शरीर में रोग-उत्पादक जीवाणुओं के प्रवेश होने पर भी रोग के लक्षण दिखलाई नहीं पड़ते हैं। ऐसी रोग-निरोध-क्षमता को जातीय रोग-निरोध-शक्ति (Specific immunity) कहते हैं। ऐसी क्षमता प्राकृतिक साम्मुख्य-शक्ति के अन्तर्गत आती है। फिर भी कुछ ऐसे रोग-उत्पादक जीवाणु हैं जो पशुओं द्वारा भी फैलते हैं। इनमें क्षय और एन्थ्रेक्स

(Anthrax) प्रमुख हैं। जब व्यक्तिविशेष में स्वत: ऐसे रोगों से बचने की शक्ति वर्त्तमान रहती है, तो इस शक्ति को हम प्राकृतिक साम्मुख्य-शक्ति (Natural immunity) कहते हैं।

अर्जित साम्मुख्य-शक्ति— चेचक, टाइफाइड आदि रोगों के एक बार हो जाने पर जब व्यक्तिविशेष में उस रोग से बचने की क्षमता आ जाती है, तो ऐसी शक्ति को अर्जित साम्मुख्य-शक्ति (Acquired immunity) कहते हैं।

कृत्रिम साम्मुख्य-शक्ति— संक्रामक रोगों से बचने के लिए या रोग होने पर उनसे मुक्ति प्राप्त करने के लिए बहुधा सूई द्वारा विशेष संक्रामक रोग के मृतप्राय जीवाणु या इनसे उत्पन्न हुआ प्रतिविष व्यक्तिविशेष के शरीर में प्रविष्ट कराया जाता है। इसके प्रविष्ट होने पर शरीर में स्वयं प्रतिविष उत्पन्न होने लगता है, जिससे व्यक्तिविशेष में कृत्रिम सक्रिय साम्मुख्य-शक्ति (Artificial immunity) उत्पन्न हो जाती है—जैसा कि चेचक के टीके में। सक्रिय कृत्रिम साम्मुख्य-शक्ति भविष्य में आने वाले रोगों से हमें सुरक्षित रखती है।

प्रश्न ६. संक्रामक रोगों से प्रतिरक्षा के प्राकृतिक साधन क्या हैं? संक्षेप में समझाकर लिखें।

उत्तर— हमारे शरीर में संक्रामक रोगों से प्रतिरक्षा के निम्नलिखित साधन हैं—

(i) चर्म— रोगजनित जीवाणुओं से सुरक्षा प्रदान करने की पहली पंक्ति चर्म (Skin) है। चर्म की बनावट ही ऐसी है कि बहुत कम जीवाणु इसके द्वारा शरीर के भीतर प्रविष्ट हो सकते हैं। नाक की भीतरी दीवार एक विशेष प्रकार की श्लैष्मिक खाल द्वारा मढ़ी रहती है, जिससे हमेशा एक प्रकार का स्राव निकलता रहता है, जो जीवाणुओं को अन्दर जाने में रुकावट डालता है।

(ii) रक्त के सफेद कण— रक्त के सफेद कण (ल्यूकोसाइट) हमारी आन्तरिक सुरक्षा की दूसरी पंक्ति हैं। रोग के जीवाणुओं तथा अन्य विजातीय

पदार्थों को नष्ट करने की इनमें विशेष क्षमता वर्त्तमान है। आवश्यकता पड़ने पर रक्त में ल्यूकोसाइट की वृद्धि भी हो जाती है। यथासाध्य ये जावाणुओं को नष्ट कर डालते हैं।

(iii) सामुख्य-शक्ति— शरीर में रोग-उत्पादक जीवाणुओं के प्रविष्ट होते ही प्रतिरोधी वस्तुएँ प्रतिरोधी रासायनिक तत्त्व बनाने लगती हैं। रक्त-प्रवाह में मिलकर ये शरीर के आक्रान्त भागों में पहुँच जाती हैं और वहाँ जाकर रोग के जीवाणुओं को नष्ट करना आरम्भ कर देती हैं। डिप्थीरिया, टिटेनस आदि रोगों में प्रतिरोधी रासायनिक तत्त्व जीवाणुओं द्वारा सर्जित विषों (Toxin) को नष्ट कर देते हैं। ऐसे सर्जित विष को प्रतिविष (Anti-toxin) कहते हैं।

(iv) ज्वर— साधारण लोग ज्वर को रोग मानते हैं, लेकिन वास्तव में ज्वर रोगों, विशेषकर संक्रामक रोगों के लक्षणों में से एक प्रमुख लक्षण है। साधारण ज्वर शरीर को संक्रामक रोगों से बचने में मदद पहुँचाता है। इसके अतिरिक्त बहुत-से रोगों के जीवाणु अपेक्षाकृत अधिक शारीरिक तापमान पर कम सक्रिय हो पाते हैं, साथ ही यथोचित तापमान पर शरीर जीवाणुओं का मुकाबला डटकर कर सकता है। लेकिन यहाँ यह भी ध्यान रखना है कि १०५° फा० से अधिक शारीरिक तापमान बढ़ने पर शरीर का अपना पोषण-कार्य भी शिथिल पड़ जाता है। शरीर का तापमान ११०° फा० हो जाने पर मृत्यु अवश्यम्भावी है।

प्रश्न ७. संक्रामक रोग की तीन अवस्थाओं के नाम लिखें तथा प्रत्येक का संक्षेप में वर्णन करें।

उत्तर— साधारणतः संक्रामक रोग की निम्नलिखित तीन अवस्थाएँ होती हैं—

(i) संक्रान्ति-काल, (ii) रोग-काल और (iii) स्वास्थ्य-लाभ-काल।

(i) संक्रान्ति-काल— जिस काल में संक्रामक रोग के जीवाणु साँस, भोजन, जल या अन्य किसी विधि द्वारा शरीर में प्रवेश कर वहाँ अपनी संख्या

में वृद्धि करते हैं, उसे संक्रान्तिकाल कहते हैं। इसी समय शरीर में विशिष्ट रोग के लक्षण दिखाई पड़ने लगते हैं।

(ii) रोग-काल— विशिष्ट रोग के लक्षण दिखाई पड़ने के समय से लेकर रोगी के चंगा होने तक के काल को रोग-काल कहते हैं। शरीर में प्रतिरक्षा के साधन (साम्मुख्य शक्ति) के मजबूत रहने से रोग के लक्षण दिखाई ही नहीं पड़ते हैं या यदि दिखाई भी पड़ते हैं तो धीरे-धीरे ये लक्षण लुप्त हो जाते हैं। साधन कमजोर होने पर रोग उग्र रूप धारण कर लेता है। ऐसी स्थिति में रोगी मर जाता है या धीरे-धीरे चंगा (उपयुक्त चिकित्सा के कारण) हो जाता है।

(iii) स्वास्थ्यलाभ-काल— रोग के लक्षण लुप्त हो जाने पर भी रोगी पूर्ण रूप से अच्छा नहीं होता। उसके शरीर में रोग के जीवाणु वर्त्तमान रहते हैं जो शरीर की साम्मुख्य शक्ति की वृद्धि होते रहने से धीरे-धीरे नष्ट हो जाते हैं। पर रोगी बहुत समय तक कमजोर बना रहता है। इसलिए कुछ दिनों तक रोगी को संयम से काम लेना चाहिए। उसके लिए पुष्टिकारक भोजन और विश्राम आवश्यक है। कुसंयम होने से पुनः उसी रोग का वह शिकार हो जाता है।

अध्याय ७

कुछ संक्रामक रोग और उनकी रोकथाम

(क) भोजन और जल द्वारा फैलनेवाले रोग

प्रश्न १. हैजा रोग के क्या लक्षण हैं? यह रोग कैसे फैलता है? इस रोग से बचने के लिए क्या उपाय करेंगी?

या, हैजा रोग के क्या कारण हैं ? हैजे से अपने परिवार को बचाने के लिए आप कौन-कौन उपाय करेंगी ?

उत्तर—हैजा रोग का कारण एक जीवाणु होता है जिसको Vibric Cholera कहते हैं। यह देखने में मुड़ा हुआ अँगरेजी के Comma के समान दिखाई देता है। खुर्दबीन से देखने पर ये ताजा मल में बड़ी तेजी से गति करते हुए दिखाई देते हैं। ये सदा रोगियों के मल में रहते हैं और वहाँ से जल में अथवा भोज्य पदार्थ में पहुँच जाते हैं।

लक्षण— रोगी को कै और दस्त होता है। कै में पहले भोजन का अंश होता है; पीछे सिर्फ जल के समान रंग-रहित पदार्थ रहता है। दस्त सिर्फ चावल के धोवन की तरह होता है। इसे Rice water stool कहते हैं। यही हैजे की असल पहचान है। एक और रोग में कै और दस्त होता है लेकिन चावल के धोवन की तरह दस्त नहीं होता है। वास्तव में खून का सीरम ही दस्त के रूप में बाहर जाता है जिससे शरीर में खून की कमी हो जाती है। पेशियों में ऐंठन होती है। रोगी बहुत कमजोर होता है। कभी-कभी कै और दस्त में एक ही चीज होती है जिससे रोगी की मृत्यु और जल्द हो जाती है। इसका विष अधिक होने से या कमजोरी होने से या खून की कमी से दिल का काम रुक जाता है और रोगी मर जाता है।

रोग-प्रसार के साधन—

(क) मक्खियाँ— हैजे से आक्रान्त व्यक्तियों के मल और वमन में रोग के जीवाणु रहते हैं। इनपर मक्खियाँ बैठती हैं जिससे उनके पैरों और पंखों में रोग के जीवाणु लग जाते हैं। फिर वहाँ से उड़कर वे खुले भोजन, दूध, जल इत्यादि पर बैठकर इन वस्तुओं में रोग के जीवाणु पहुँचा देती हैं। ऐसे भोजन, दूध, जल इत्यादि के व्यवहार से शरीर में हैजे के लक्षण उत्पन्न हो जाते हैं।

(ख) दूषित हाथ— हैजा रोग से आक्रान्त व्यक्ति के परिचारक की असावधानी द्वारा भी यह रोग फैलता है। प्रायः परिचारक रोगी के मल और वमन को छूकर अपना हाथ भली-भाँति साफ नहीं करते हैं, फलतः उनका

उंगलियों में रोग के जीवाणु लगे रहते हैं। उनके द्वारा छुए हुए भोजन, जल आदि पदार्थों में रोग के जीवाणु प्रविष्ट हो जाते हैं।

(ग) दूषित भोजन और जल— दूषित भोजन, जल आदि इस रोग के प्रसार के मुख्य साधन हैं। हैजे के जीवाणुओं से युक्त भोजन के व्यवहार से व्यक्तिविशेष में रोग के लक्षण दिखाई पड़ने लगते हैं। पोखर आदि में रोगियों के दूषित कपड़े को फींचने या धोने से जल दूषित हो जाता है। ऐसे जल के पीने से या इससे धुले बरतन-बासन आदि के व्यवहार से व्यक्ति रोग के शिकार हो जाते हैं।

(घ) रोगवाहक— रोग से युक्त व्यक्तियों या ऐसे व्यक्तियों द्वारा भी रोग फैल जाता है जो देखने में स्वस्थ मालूम पड़ते हैं पर उनकी पाचन-प्रणाली में रोग के जीवाणु वर्त्तमान रहते हैं और ये मल के साथ बाहर निकल आते हैं। ऐसे ही व्यक्तियों को हैजे का रोगवाहक कहते हैं।

(च) अन्य कारण – ठंढ लगना, कमजोरी, गन्दे स्थानों में रहना, कच्चे फल और नहीं पचने योग्य भोजन खाने से इस रोग के होने में सहायता मिलती है। इस रोग के फैलाने वाले असल तीन एजेण्ट हैं— Finger, fly and food—F^3.

रोग से बचने के उपाय— अन्य व्यक्तियों को रोग से बचाना, अर्थात् इसके प्रसार को रोकने के साथ ही आक्रान्त व्यक्ति की चिकित्सा का प्रबन्ध करना समाज का पहला कर्त्तव्य है। चिकित्सा के लिए निकटतम डाक्टर की सलाह लेनी चाहिए। यदि रोग महामारी के रूप में फैला हुआ मालूम पड़े, तो उसके प्रसार को रोकने के लिए निम्नलिखित उपाय करना चाहिए—

(i) हैजा रोग होने की सूचना निकटतम सरकारी जनस्वास्थ्य-विभाग को देनी चाहिए और उसकी मदद से गाँव या मुहल्ले के सभी व्यक्तियों को टीका लगवा देना चाहिए। साथ ही, सभी कुएँ में ब्लीचिंग पाउडर डलवा देना चाहिए।

(ii) हैजा फैलने के साथ लोगों को बीमारी से बचने के सारे उपाय बता

देने चाहिए और संगठित रूप से इसे रोकने का उपाय करना चाहिए।

(iii) हैजा से बचने का टीका सबों को ले लेना चाहिए। टीका ले लेने से हैजा हाने का भय नहीं रहता। टीका का असर ३-४ महीनों से ज्यादा नहीं रहता, इसलिए जब-तक बीमारी का प्रकोप रहे तब तक बीच-बीच में फिर टीका ले लेना चाहिए।

(iv) सभी को सहज पाच्य पदार्थ खाना चाहिए। ज्यादा खाना नहीं चाहिए तथा पेट कभी खाली नहीं रखना चाहिए।

(v) रोग से आक्रान्त व्यक्ति को यथासम्भव शीघ्र अस्पताल भेजवा देना चाहिए। यदि ऐसा सम्भव नहीं हो, तो उसे घर के अन्य व्यक्तियों से अलग रखने का प्रबन्ध करना चाहिए।

(vi) रोगी के मल-मूत्र और वमन को खुला नहीं रखना चाहिए तथा उनमें विसंक्रामक द्रव्य डालकर यथाशीघ्र मिट्टी में गड़वा देना चाहिए।

(vii) रोगी के हल्के कपड़े को विसंक्रामक द्रव्यों से शुद्ध कर धोबी को देना चाहिए। रोगी के भारी वस्त्रों को जलवा देना चाहिए।

(viii) घर के भोजन, जल आदि को ढककर रखना चाहिए तथा मक्खियों को नष्ट करने का उपाय करना चाहिए।

(ix) यथासाध्य गर्म और ताजा भोजन करना चाहिए। कच्चे या बाजार से आये हुए कटे फलों तथा मिठाइयों का व्यवहार नहीं करना चाहिए।

(x) जल की सफाई पर विशेष ध्यान देना चाहिए। यथासम्भव जल को गर्म कर व्यवहार में लाना चाहिए।

(xi) रोगी का कमरा साफ-सुथरा रहना चाहिए तथा मक्खियों को वहाँ से दूर रखना चाहिए।

(xii) रोगी के बरतन-बासन आदि घर के बरतनों से अलग रखने चाहिए तथा उनकी सफाई पर विशेष ध्यान देना चाहिए।

(xiii) परिचारकों को विशेष सावधान रहना चाहिए। रोगी के मल-मूत्र, वमन आदि को फेंककर अपने हाथों को विसंक्रामक द्रव्यों से जरूर धो लेना चाहिए।

(xiv) यदि दुर्भाग्यवश रोगी की मृत्यु हो जाय, तो उसके कपड़ों तथा कम मूल्य की वस्तुओं को जलवा देना चाहिए तथा कमरों की दीवाल, छत बरतन-बासन इत्यादि को विसंक्रामक द्रव्यों से शुद्ध कर लेना चाहिए।

प्रश्न २. टायफाइड (आन्त्रिक ज्वर) के क्या लक्षण हैं? यह कैसे फैलता है? इस रोग से बचने के क्या उपाय हैं?

या, टायफाइड कैसे होता है? यदि आपके परिवार में कोई टायफाइड रोग से ग्रस्त हो जाय तो आप क्या करेंगी?

उत्तर—लक्षण—इस रोग में २१ या २८ दिन तक निरन्तर ज्वर चढ़ा रहता है। ज्वर १०३ से १०५ डिग्री तक रहता है। किसी समय भी नहीं उतरता। ज्वर प्रथम सप्ताह में नित्यप्रति आधा या एक डिग्री बढ़ता है। दूसरे सप्ताह में ज्वर एकसमान रहता है। प्रातः और सायंकाल के ज्वर में बहुत थोड़ा अन्तर होता है। तीसरे सप्ताह में ज्वर कम होना आरम्भ होता है और धीरे-धीरे तीसरे सप्ताह के अन्त तक उतर जाता है। कभी चार, पाँच या छः सप्ताह तक ले लेता है। शरीर पर दूसरे सप्ताह के अन्त में बड़े-बड़े लाल रंग के दाने निकल आते हैं जिनको Rose spots कहते हैं। किन्तु यह ३०% से अधिक रोगियों में नहीं देखे जाते। दूसरे सप्ताह में पतले दस्त भी आने लगते हैं। यह समय सबसे अधिक भयंकर होता है। अँतड़ियों में घाव पड़ जाते हैं और कभी-कभी वे इतने गहरे हो जाते हैं कि घाव के स्थान में छेद हो जाता है, जिससे रोगी की मृत्यु हो जाती है।

रोग-प्रसार के कारण—मनुष्य के शरीर में एक जीवाणु, जिसे Bacillus typhosus कहते हैं, के प्रवेश करने से यह होता है। ये कीटाणु मुख्यतः विष्ठा तथा पेशाब के द्वारा रोगी के शरीर से निकलकर पानी, दूध तथा भोज्य एवं पेय सामग्रियों को मक्खी, धूल तथा मल-मूत्र के उड़नशील सूक्ष्म कण (Fomites) की सहायता से संक्रामित कर देते हैं। इन रोगों के कीटाणुओं के विशेष वाहक (Cemin) होते हैं। ये लोग अपने मल द्वारा रोग के फैलने में

सहायता करते हैं (यद्यपि उनमें रोग का लक्षण प्रकट नहीं होता)। मुख्यतः चालीस साल से अधिक आयु की स्त्रियाँ ही वाहक होती हैं।

रोग के ये कीटाणु मुँह के जरिये अंत्र (Intestine) में पहुँचते हैं तथा लिम्फाइड फालिक्ल (Lymphoid follicle) पर आक्रमण करते हैं। इसके बाद ये प्रवहमान रक्त (Circulating blood) में जाते हैं। फिर ये मल तथा मूत्र द्वारा बाहर निकलते हैं।

रोग का संक्रमण स्पष्ट (Direct) या गौण (Indirect) रूप से हो सकता है। आंत्रिक ज्वर से पाड़ित रोगी की सेवा करने वाला यदि सावधानी से कार्य न करे तो वह स्पष्टतः (Directly) आक्रान्त हो सकता है। गौण रूप से खाद्य सामग्रियों के सहारे ही रोग फैलता है। मिट्टी इन रोगों को फैलाने का उत्तम माध्यम है।

इस रोग के अलावा इसी से मिलते-जुलते दो और रोग होते हैं जो इससे कम खतरनाक होते हैं—

(i) पारा टायफाइड 'अ' (Para typhoid 'A') और (ii) पारा टायफाइड 'ब' (Para typhoid 'B')।

रोग से बचने के उपाय—

(i) रोगी को अन्य व्यक्तियों से अलग एक खास कोठरी में रखना चाहिए जहाँ प्रयोग का कोई दूसरा सामान न हो।

(ii) रोगी का कमरा खुला रहना चाहिए।

(iii) कमरे को कार्बोलिक एसिड से धोकर साफ रखना चाहिए।

(iv) रोगी के मल-मूत्र, श्लेष्मा को नष्ट करने का विशेष प्रबन्ध करना आवश्यक है, नहीं तो इधर-उधर फेंकने से इस रोग के जीवाणु, पानी और भोजन के सहारे दूसरे मनुष्य तक पहुँच जाते हैं।

(v) मक्खियाँ इसे तेजी से फैलाती हैं। इसीलिए भोजन की सामग्री को उनसे बचाकर रखना चाहिए।

(vi) रोग फैलने पर कभी बासी, गन्दी या सड़ी चीजें लोग न खायें।

(vii) लोगों को इस रोग का टीका ले लेना चाहिए।

(viii) जिन पात्रों को रोगी व्यवहार में लायें उनमें कार्बोलिक लोशन या इलेक्ट्रोलिटिक क्लोरीन लोशन अथवा अन्य कोई लोशन भरा रहना चाहिए।

(ix) रोगी के परिवार तथा मुहल्ले के सभी व्यक्तियों को आन्त्रिक ज्वर का टीका लेना चाहिए।

(x) मक्खी मारने की व्यवस्था करनी चाहिए।

(xi) आंत्रिक ज्वर के वाहकों को पहचानने तथा उन्हें पृथक् करने की व्यवस्था करनी चाहिए।

(xii) आंत्रिक ज्वर होने की खबर स्थानीय स्वास्थ्यकेन्द्र को अवश्य देनी चाहिए।

(xiii) आंत्रिक ज्वर रोकने के उपायों की सार्वजनिक शिक्षा की व्यवस्था करनी चाहिए।

प्रश्न ३. पेचिश के क्या लक्षण हैं? इसके प्रसार के साधन का उल्लेख करते हुए इस रोग से बचाव का उपाय बतलाइए।

उत्तर—लक्षण—इस रोग से आक्रान्त व्यक्ति को मरोड़ के साथ पतले-पतले दस्त दिन में कई बार होते हैं। दस्त में प्रायः आंव और रक्त मिला रहता है। रोग में अधिक वृद्धि हो जाने पर केवल आँव और रक्त ही पाखाने के रूप में निकलता है। जल्द-जल्द पाखाना होने के कारण आक्रान्त व्यक्ति पाखाने में बैठा रहना ही अधिक पसन्द करता है। प्रायः आक्रान्त व्यक्ति को ज्वर भी हो जाता है। रोगी दिनानुदिन कमजोर होता जाता है और अन्त में उसकी मृत्यु हो जाती है।

भेद—यह रोग दो तरह का होता है। एक 'बेसिलस डिसेण्ट्री' (Bacillus dysenterae) नामक जीवाणु से होता है और दूसरा 'इण्ड एमीबा हिस्टोलिटिका' (End amoeba histolytica) नामक जीवाणु द्वारा होता है।

पहले तरह के जीवाणु से होने वाले रोग में प्रतिदिन १५-२० और उससे भी अधिक १०० तक दस्त होते हैं। उदर में तीव्र ऐंठन और पीड़ा होती है। रोगी को शौच से उठना कठिन हो जाता है। ज्वर कभी-कभी १०३-१०४°

तक रहता है। दस्त में मल की कमी और रक्त एवं आँव की अधिकता रहती है। प्रत्येक समय जब रोगी मल-त्याग को बैठता है तो थोड़ा-सा रक्त और श्लेष्मा गिर जाती है।

दूसरे तरह के जीवाणु से जो रोग उत्पन्न होता है उसमें इतने दस्त नहीं होते। लगभग २४ घंटे में ३ या ४ बार दस्त होता है। ऐंठन भी उतनी नहीं होती। परन्तु रक्त और आँव के साथ मल निकलता है। रोगी को ज्वर नहीं होता। रोग की अवधि लम्बी होती है।

रोग प्रसार के साधन — रोग के जीवाणु आक्रान्त व्यक्ति तथा रोग-वाहकों के मल-मूत्र, जूठे बरतन तथा दूषित जल इत्यादि में पाये जाते हैं। मक्खियाँ, धूल तथा परिचारकों के दूषित हाथ, दूषित जल आदि इसके प्रसार के विशेष माध्यम हैं।

रोग से बचने के उपाय— रोग से बचने के लिए खाने-पीने में पूर्णतया सफाई के नियमों का पालन करना चाहिए। भोजन, दूध, जल इत्यादि को मक्खियों से बचाकर रखना चाहिए अर्थात् इन्हें ढककर रखना चाहिए। इनके अतिरिक्त व्यक्तिगत और प्रतिवेश की सफाई के नियमों का भी पालन करना चाहिए। आक्रान्त व्यक्ति की चिकित्सा सुयोग्य डाक्टरों की सलाह से होनी चाहिए।

प्रश्न ४. अतिसार के लक्षण, कारण और उसे रोकने के उपाय लिखिए।

उत्तर— यह रोग वर्षा-ऋतु में होता है। एक माह से पाँच वर्ष तक के बच्चों को ही यह रोग अधिक होता है।

लक्षण— (i) फटे-फटे अथवा हरे रंग के पतले दस्त होते हैं। (ii) दस्त की संख्या ८-१० से २५ तक रहती है। (iii) बच्चे को साधारण ज्वर रहता है।

कारण— यह उन्हीं बच्चों को होता है जिन्हें माँ के दूध के अभाव में ऊपरी दूध मिलता है। इस रोग का कारण बहुतेरे सूक्ष्म जीवाणु हैं जो कच्चे

कन्द-मूल आदि फल के सहारे प्रसारित होते हैं।

रोकने के उपाय—(i) बहुत देर का रखा दूध बच्चों को न देना चाहिए। (ii) रोगी बच्चे के मल-मूत्र को ऐसे पात्र में रखा जाय जिसमें कोई विसंक्रामक पदार्थ भरा हो। (iii) पीने वाले दूध को मक्खियों से बचाकर रखा जाय। (iv) अन्य वे सब उपाय जो हैजा से बचने एवं रोकने के हैं, काम में लाये जायँ।

प्रश्न ४. (a) अंकुशकृमि (Hookworm) रोग के क्या लक्षण हैं? यह रोग कैसे फैलता है? इस रोग से बचने के लिए क्या-क्या उपाय करेंगी?

उत्तर—लक्षण—(i) रोगी के मल के साथ खून निकलता है। (ii) रक्त के क्षय से रोगी दुर्बल और पीला हो जाता है। (iii) रोगी का चर्म रक्तहीन और श्वेत रंग का हो जाता है। (iv) रोगी के शरीर से शक्ति जाती रहती है। परिश्रम करने से श्वास फूलने लगती है। (v) मलत्याग के समय कुछ दर्द भी मालूम पड़ता है। (vi) कुछ दिन के बाद रोगी दुर्बल होकर मर जाता है।

कारण—यह रोग ऐंकिलोस्टोमा ड्यूडोनेल (Ankylostoma duodonal) नामक कृमि के शरीर में प्रवेश करने से होता है। यह मुख द्वार अथवा चर्म-द्वार से शरीर में प्रवेश करता है। यह कभी-कभी भोजन या जल के साथ आँत में पहुँच जाता है। यह कृमि चर्म को छेदकर खून की नलियों में पहुँचता है। यहाँ से फेफड़े और दिल में से होता हुआ श्वास की नली में और फिर श्वास की नली से आँत में पहुँचता है। यह कृमि लगभग ½ इंच लम्बे धागे की तरह होता है। मादा नर से लम्बी होती है। यह एक ओर मोटी और दूसरी ओर पतली होती है।

रोग से बचने के उपाय—कृमि-रोग से आक्रान्त व्यक्तियों की चिकित्सा सुयोग्य डाक्टरों से करानी चाहिए। रोग से बचने के निम्नलिखित

साधारण नियमों का पालन करना चाहिए—

(i) मल-मूत्र का त्याग खुली जगहों पर नहीं करनी चाहिए। यदि खुली जगहों पर ही मल-मूत्र का त्याग करना हो तो गढ़ों में मल-त्याग कर उसे मिट्टी से ढक देना चाहिए।

(ii) विना उबाली हुई या बिना भली-भाँति धोयी हुई कच्ची वस्तुओं का व्यवहार भोजन के रूप में नहीं करना चाहिए। यदि कच्ची वस्तुओं का व्यवहार करना हो तो उन्हें पोटाश के जल से धो लेना चाहिए।

(iii) जिन स्थानों में कृमि-रोगों के लार्वा के होने का भय हो, वहाँ के लोगों को नंगे पैर घूमना-फिरना नहीं चाहिए। उन्हें हमेशा जूता, खड़ाऊँ आदि पहनकर ही बाहर निकलना चाहिए।

(iv) रोगाक्रान्त स्थानों में उत्तम शौचस्थान बनाया जाय जिसका प्रयोग केवल वहाँ की जनता द्वारा ही हो।

(v) मलत्याग के बाद विसंक्रामक पदार्थों से बिना हाथ धोये खाने की कोई चीज न छुई जाय।

(ख) हवा द्वारा फैलनेवाले रोग

प्रश्न ५. चेचक रोग कैसे फैलता है? इसके क्या लक्षण हैं? इससे बचने के लिए क्या उपाय करेंगी?

उत्तर—चेचक किस प्रकार होता है?—इस रोग की उत्पत्ति का कारण एक विशेष प्रकार का सूक्ष्मातिसूक्ष्म जीवाणु है, यह निश्चित है। विशेषज्ञों का विश्वास है कि ये वायु तथा संसर्ग दोनों तरह से फैलते हैं। आक्रान्त होने से लेकर संक्रान्ति-काल तक व्यक्तिविशेष के शरीर से इसके वायरस (Virus) निकलकर वायु में मिलते रहते हैं। रोगी की त्वचा, थूक, नासा-स्राव, फफोलों के पीब, उनके खुरण्ड इत्यादि में वायरस (Virus) रहते हैं। रोगी के वस्त्र, जूठे बरतन, बिछावन इत्यादि भी इनसे मुक्त नहीं रहते हैं। ये वायरस अत्यन्त सबल होते हैं। इनका विनाश शीघ्र नहीं होता है। रोगी की साँस, खाँसी, छींक इत्यादि से निकलकर ये हमेशा प्रतिवेश में वर्तमान रहते हैं।

उनके समीप जाने से श्वास-मार्ग द्वारा या उनके साथ बैठने-उठने से संसर्ग द्वारा चर्म होकर वायरस शरीर में प्रविष्ट हो जाते हैं। संक्रान्ति-काल के बीतने पर शरीर में रोग के लक्षण दिखाई पड़ने लगते हैं।

रोग के लक्षण—आक्रान्त व्यक्ति में रोग का प्रारम्भ तीव्र सिर-दर्द से होता है। साथ ही सारे शरीर में अधिक पीड़ा होती है। पुनः तेज ज्वर हो जाता है। प्रायः तीसरे दिन नन्हे-नन्हे लाल दाने सारे शरीर में निकल आते हैं। पुनः इनमें पानी भरने लगता है। साधारणतः दस-बारह दिन के बाद से ही ये दाने सूखने लगते हैं। इनसे पपड़ियाँ उतरकर गिरने लगती हैं। सारे शरीर में गहरे दाग दिखाई पड़ने लगते हैं। बहुधा ये दाने आपस में सटकर घावों का रूप धारण कर लेते हैं। ऐसी अवस्था में कमजोरी के कारण आक्रान्त व्यक्ति को श्वास-सम्बन्धी अन्य रोग भी बहुधा हो जाते हैं, जिनसे आक्रान्त व्यक्ति मर जाता है या जिन्दगी भर के लिए बेकार हो जाता है।

रोग से बचने के उपाय—चेचक रोग की कोई विशेष औषधि नहीं है। उत्तम भोजन, स्वच्छ और नरम बिछावन, अच्छी सेवा-शुश्रूषा का प्रबन्ध करने से रोगी शीघ्र अच्छा हो जाता है। इस रोग से आक्रान्त व्यक्ति तथा उसके प्रतिवेश को साफ-सुथरा रखना अनिवार्य है।

रोग के प्रसार को रोकने के लिए निम्नलिखित नियमों का पालन करना उचित है—

(i) आक्रान्त व्यक्ति के परिवार के सभी लोगों को चेचक का टीका लगवा लेना चाहिए। यदि टीका लगे बहुत दिन हो गये हों, तो पुनः टीका लगवाना चाहिए। (ii) रोगी को अन्य लोगों से यथासाध्य दूर रखने का प्रबन्ध करना चाहिए। (iii) रोगी का कमरा हवादार और प्रकाशयुक्त होना चाहिए। (iv) रोगी के सम्पर्क में परिचारक के अतिरिक्त अन्य लोगों को नहीं आना चाहिए। (v) रोगी के वस्त्र पृथक् रहें और उसके रोगमुक्त हो जाने के बाद जला दिये जायँ, क्योंकि उनमें चेचक के जीवाणु रहते हैं। (vi) रोगी के शरीर से गिरने वाले दाने के खुरंडों को जला देना चाहिए क्योंकि इनमें भी चेचक के जीवाणु भरे रहते हैं। (vii) रोगी के शरीर में कार्बोलिक एसिड

मिलाकर वैसलीन मलने से खुरंड वायु में उड़ नहीं पायेंगे। वे सब आपस में चिपककर शय्या पर ही रह जायेंगे। (viii) जब तक रोगी के सब खुरंड झड़कर गिर न जायँ तब तक उसे घर से बाहर न जाने देना चाहिए और न किसी स्वस्थ व्यक्ति के सम्पर्क में उसे आने देना चाहिए। (ix) रोगी की जूठी वस्तु के खाने की मनाही कर देनी चाहिए। (x) रोगी के व्यवहार के बरतन-बासन, कपड़े-लत्ते आदि का अन्य कोई व्यवहार नहीं करे, इसपर ध्यान रखना चाहिए।

रोगी की सेवा—(i) जब तक रोगी रोग से मुक्त न हो जाय उसे घर में ही रखना चाहिए। (ii) जब रोगी को अधिक गरमी का अनुभव हो तो उसे मयूरपंख से हवा देनी चाहिए। (iii) समय-समय पर रोगी को प्यास लगने पर 'ग्लूकोज जल' (Glucose water) या 'डाभ' का जल देना चाहिए। (iv) रोगी की सेवा के लिए उसी आदमी को रखा जाय जो टीका लिये हुए हो। (v) रोगी की कोठरी सुगन्धमय हो। (vi) रोगी के बिछावन पर केला या नीम की पत्तियाँ पर्याप्त हों जो सूखने पर बराबर बदल दी जायँ।

प्रश्न ५. (a) खसरी कैसे होता है? इसके क्या लक्षण हैं? इससे बचने के लिए क्या उपाय करेंगी?

उत्तर— चेचक-जैसा ही खसरा एक भयानक संक्रामक रोग है। बड़ों के लिए यह कष्टकर है, लेकिन बच्चों के लिए तो वह प्रायः घातक है। इस रोग के फलस्वरूप आक्रान्त व्यक्ति की आँख, कान, गुर्दे इत्यादि प्रायः खराब हो जाते हैं।

लक्षण— इस रोग का आरम्भ जुकाम से होता है। पुनः खाँसी और बुखार उत्पन्न हो जाता है। बच्चों का शरीर लाल दिखाई पड़ने लगता है। तीन-चार दिन के उपरान्त कपाल, कनपट्टी, गाल इत्यादि स्थानों में नन्हे नीलाभ लाल दाने नजर आने लगते हैं। पुनः सारे शरीर में दाने दिखाई देने लगते हैं। साधारणतः तीन-चार दिन के बाद ज्वर जाता रहता है और दाने भी सूख जाते हैं। बालक भला-चंगा और रोगमुक्त हो जाता है।

रोग-प्रसार के साधन— इस रोग का विष नाक और मुँह से निकलने वाले स्राव में रहता है और वायु तथा सम्पर्क द्वारा दूसरों तक जाता है। यह अत्यन्त संक्रामक है। यदि घर में एक बच्चे को होता है तो दूसरे को भी अवश्य ही होता है। प्रायः जुकाम की अवस्था में जब बालकों या अभिभावकों को रोग होने की आशंका भी नहीं रहती है, उसी समय यह रोग अन्य बालकों में भी फैल जाता है।

रोग से बचने के उपाय— (i) रोग का कीटाणु रोगी की नाक और मुँह से निकलता है। अतः नाक और मुँह से निकलनेवाले स्राव को एक जगह एकत्र कर दूर मिट्टी में गाड़ देना चाहिए। (ii) यदि घर में एक बच्चे को यह रोग हो जाता है तो उसके सम्पर्क में आने से दूसरे बच्चे को भी बहुत जल्द ही पकड़ लेता है। अतएव रोगी बच्चे को अन्य बच्चों से पृथक् रखना चाहिए। (iii) इससे बचने के लिए किसी टीके का आविष्कार नहीं हो सका है। शारीरिक स्वच्छता, गले को साफ रखना, किसी रोगी के पास नहीं जाना, विसंक्रामक पदार्थों से कुल्ला करना, नाक को स्वच्छ रखना, इस रोग से बचने के उपाय हैं।

रोगी की सेवा— (i) रोगी की सेवा के लिए किसी एक खास आदमी को नियुक्त कर देना चाहिए। (ii, रोगी की शय्या मुलायम और बराबर साफ रहनी चाहिए।

प्रश्न ५. (b) छोटी माता (Chicken pox) के लक्षण, प्रसार के साधन तथा इससे बचने के उपाय पर प्रकाश डालिए।

उत्तर— छोटी माता एक साधारण संक्रामक रोग है, जो प्रायः सभी बच्चों को बचपन में हुआ करता है। आक्रान्त बच्चा मजे में खेलता-कूदता है, उसे रोग का ज्ञान भी नहीं रहता है।

लक्षण— आक्रान्त बालक के चेहरे तथा शरीर के अन्य भागों में लाल-लाल दाने निकल आते हैं। बहुधा इसके साथ हल्का ज्वर भी हो आता है। दस-पन्द्रह दिन के अन्दर-अन्दर दाने सूखकर उनके छिलके गिर जाते हैं।

छिलका गिरने के उपरान्त बहुत खुजली होती है। बच्चे प्राय: गन्दे नखों से खुजलाते हैं, फलस्वरूप स्थानविशेष में जख्म हो जाता है।

रोग-प्रसार के साधन—इसकी उत्पत्ति और प्रसार एक प्रकार के वायरस (Virus) जीवाणु द्वारा होता है। आक्रान्त बालक के कण्ठ और नाक की झिल्लियों में ये बहुतायत से पाये जाते हैं। फलत: खाँसने, छींकने, जोर से हँसने, बोलने से बिन्दूत्क्षेप द्वारा ये शरीर के बाहर निकल आते हैं। साँस द्वारा स्वस्थ व्यक्तियों की श्वास-प्रणाली में प्रविष्ट होकर ये रोग के लक्षण उत्पन्न कर देते हैं।

रोग से बचने के उपाय—(i) इस रोग से बचने का कोई टीका नहीं है। आक्रान्त व्यक्ति को परिवार या समाज के अन्य व्यक्तियों के सम्पर्क में नहीं आना चाहिए। (ii) छींकते या खाँसते समय मुँह के सामने रूमाल रखना चाहिए। आक्रान्त व्यक्ति की सेवा-शुश्रूषा आदि के लिए चेचक के सारे नियमों का पालन करना चाहिए।

प्रश्न ६. कुकुरखाँसी (हूपिंग कफ, काली खाँसी) के लक्षण, इसके फैलने के तरीके तथा रोकने के उपायों पर प्रकाश डालिए।

उत्तर—लक्षण—इस रोग का आरम्भ साधारण जुकाम से होता है। बालकों की नाक से पानी जैसा स्राव निकलने लगता है। उन्हें बार-बार छींक आती है और हल्का ज्वर भी हो जाता है। आठ-दस दिन के बाद खाँसी का दौर आरम्भ हो जाता है। खाँसी इतने जोर से तथा लगातार होती है कि बालक का चेहरा लाल हो जाता है तथा नसें उभर जाती हैं। प्राय: उन्हें वमन भी हो जाता है। यह रोग सात-आठ सप्ताह तक रहता है। बालकों को यह रोग एक बार हो जाने से उनके फेफड़े कमजोर हो जाते हैं। फलत: उन्हें क्षय रोग आदि श्वास-सम्बन्धी रोगों के होने का भय हमेशा बना रहता है।

रोग का प्रसार—यह रोग निम्नलिखित विधियों से फैलता है—

(i) रोगी के कफ से निकले कीटाणु वायुमण्डल में चले जाते हैं एवं नीरोग बच्चों को ग्रस्त कर लेते हैं।

(ii) रोगी बच्चे के साथ खेलने, बैठने या सोने से अन्य बच्चों को यह बीमारी हो जाती है।

(iii) रोगी के बिछावन पर सोने या उसके वस्त्रों के पहनने से भी यह बीमारी हो सकती है।

रोग से बचने के उपाय—

(i) रोगी के कफ, थूक एवं कै का विसंक्रमण करना चाहिए।

(ii) रोगी बालक को अन्य बच्चों से पूर्णतया पृथक् रखना चाहिए।

(iii) रोगी के स्वस्थ हो जाने पर उसके कपड़ों, बिछावन एवं खिलौनों का विसंक्रमण करना चाहिए।

(iv) एक बार रोग हो जाने पर इस रोग के प्रति रोग-निरोध-क्षमता हो जाती है और रोग दुबारा नहीं होने पाता।

प्रश्न ७. कनपेड़ (मम्स) के लक्षण, प्रसार के साधन तथा इससे बचने के उपाय का संक्षिप्त विवरण दीजिए।

उत्तर— इस रोग को जनसाधारण 'कनफेर', 'कँनपेड़', 'गलसूआ', 'गलफुल्ली' इत्यादि नामों से सम्बोधित करते है। यह भी एक संक्रामक रोग है। यह रोग विशेषकर बच्चों और नवयुवकों को होता है। प्रायः एक बार रोग हो जाने पर व्यक्तिविशेष को आजीवन रोग के होने से छुटकारा मिल जाता है।

लक्षण— आक्रान्त व्यक्ति की दोनों कर्णमूल-ग्रंथियाँ फूल जाती हैं तथा उसे हल्का-हल्का ज्वर हो जाता है। सूजन के कारण पीड़ा होती है। खाने-पीने में कष्ट होता है। साधारणतः सात-आठ दिन में सूजन कम हो जाती है। साथ ही, ज्वर भी समाप्त हो जाता है।

रोग-प्रसार के साधन— इस रोग का प्रसार एक प्रकार के रोग-उत्पादक सूक्ष्म जीवाणुओं (Virus) द्वारा होता है। ये जीवाणु आक्रान्त बालक की लसीका-ग्रंथियों में रहते हैं। खांसते, छींकते या जोर से बोलते समय मुँह के स्राव के साथ मिलकर ये प्रतिवेश की वायु में मिल जाते हैं। पुनः ऐसी वायु में

साँस लेने पर स्वस्थ बालकों में भी यह रोग फैल जाता है। इसका संक्रान्ति-काल चौदह से अट्ठाइस दिन है।

रोग से बचने के उपाय— इस रोग की कोई विशेष चिकित्सा नहीं है। आक्रान्त बालक को ठंढी हवा से परहेज करना चाहिए तथा हल्के आहार पर तब तक रहना चाहिए, जब तक गले की सूजन और ज्वर बन्द न हो जाय। इसके अतिरिक्त रोग से बचाव के लिए वायु द्वारा प्रसारित रोग-सम्बन्धी अन्य साधारण नियमों का पालन करना चाहिए।

रोगी की सेवा— रोगी को पोटाश के पानी से दिन में ३-४ बार कुल्ला करवाना चाहिए। रोगी के व्यवहार के तौलिया, वस्त्र इत्यादि गरम जल में बराबर उबालना चाहिए।

प्रश्न ६. डिफ्थेरिया (गलरोहिणी) किस प्रकार होता है? इस रोग के प्रसार को रोकने के लिए क्या उपाय करेंगी?

उत्तर— यह एक भयानक और संक्रामक रोग है जो 2 से 15 वर्ष के बालकों को अधिक होता है। यह रोग अक्टूबर और नवम्बर में अधिक होता है और इन्हीं महीनों में मृत्यु भी अधिक होती है। इस रोग में प्राय: गले के भीतर एक मैले सफेद रंग की झिल्ली बन जाती है। धीरे-धीरे यह झिल्ली चारों ओर बढ़ने लगती है जिससे गले का मार्ग बन्द होने लगता है और अन्त में झिल्ली इतनी बढ़ जाती है कि वायु तक के जाने का मार्ग नहीं रहता है। बच्चे को श्वास लेने में बहुत कष्ट होता है और अन्त में श्वास न ले सकने के कारण मृत्यु हो जाती है। ज्वर 103° या 104° फारेनहाइट रहता है। बच्चा बेसुध-सा और दुर्बल दिखाई देता है। यह रोग गले के अतिरिक्त नाक, कान या अन्य अंगों में भी हो सकता है। वहाँ भी झिल्ली बनती है। श्वासावरोध के लक्षण उत्पन्न नहीं होते, किन्तु शरीर में जीवाणुओं द्वारा उत्पन्न हुए विष के व्याप्त हो जाने से शारीरिक लक्षण उत्पन्न होते हैं जिससे रोगी की मृत्यु हो जाती है।

इस रोग का कारण जीवाणु होते हैं जो वायु तथा संसर्ग द्वारा फैलते हैं। बहुत बार पेंसिल या होल्डर द्वारा यह रोग फैलता है। बच्चों में इन वस्तुओं को

मुँह में डालने की आदत होती है, इस कारण एक से अनेक को रोग हो जाता है। जो लोग रोगमुक्त हो जाते हैं उनके गले में रोग छूट जाने पर भी रोग के जीवाणु उपस्थित रहते हैं। इस कारण ये लोग रोग फैलाने में बहुत बड़ा भाग लेते हैं।

रोग से बचने के उपाय—(i) सर्वप्रथम रोगी को पृथक् स्थान में रखना चाहिए। विशेष रूप से गले की शुद्धि और सफाई पर ध्यान देना चाहिए। इस रोग के प्रकोप-काल में सिनेमा, सभा, भीड़ इत्यादि से रोगी को अलग रखना चाहिए।

(ii) ई० सी० लोशन से कुल्ला करना चाहिए।

(iii) कुछ औषधि गले के निचले हिस्सों में डाली जानी चाहिए।

(iv) Antitoxin का इन्जेक्शन लेना चाहिए। यही इस रोग की अचूक दवा है।

(v) रोगी बच्चे के खाने-पीने के बरतन-बासनों तथा उसके कपड़ों को घर के अन्य बालक व्यवहार में न लायें, इसपर ध्यान रखना चाहिए।

(vi) बच्चे की नाक से निकले स्राव या इनसे युक्त कपड़ों को जला देना चाहिए।

(vii) रोगी बच्चे का परिचारक प्रायः रोग का एक सक्रिय वाहक बन-जाता है अतः उसे अन्य बालकों के सम्पर्क में यथासम्भव नहीं आने देना चाहिए। परिचारक जो वस्त्र पहने उसे रोगी के कमरे में छोड़कर ही निकले, इसपर ध्यान देना चाहिए।

(viii) घर के अन्य बच्चों को स्कूल नहीं भेजना चाहिए।

(ix) घर के अन्य बच्चों को प्रतिरोधी सूई दिलवा देनी चाहिए।

(x) रोगी बालक की चिकित्सा किसी सुयोग्य डाक्टर की सलाह से होनी चाहिए।

रोगी की सेवा—(i) रोगी को स्वच्छ रखने का प्रबन्ध हो। (ii) विसंक्रामक पदार्थ द्वारा उसके गले की बराबर सफाई की जाय।

(iii) रोगी को अधिक ठंढक से बचाकर रखना चाहिए। (iv) बराबर नाक और गले को शुद्ध और साफ करना परमावश्यक है।

प्रश्न ६. इन्फ्लुएंजा के लक्षण, कारण और इससे बचने के उपायों पर प्रकाश डालिए।

उत्तर—लक्षण—यह एक संक्रामक ज्वर है जो भीषण दर्द के साथ उत्पन्न होता है। सिर में इतना दर्द होता है कि मालूम पड़ता है कि सिर फट जायगा। कुछ जुकाम या सर्दी भी रहती है। रोगी को बराबर छींकें आती रहती हैं। साधारणतः दो-तीन दिन में यह ठीक हो जाता है। परन्तु इतने ही अल्प समय में रोगी काफी दुर्बल हो जाता है। ज्वर १००° से १०४° तक रहता है। छींकें आना, नाक बहना, गले में हल्की-सी सूजन, खाँसी के साथ कुछ बलगम निकलना, सम्पूर्ण शरीर में दर्द होना इस ज्वर के प्रधान लक्षण हैं।

रोग का कारण—इस रोग का कारण 'वैसिलस इन्फ्लुएंजी' (Bacillus influenzee) नामक जीवाणु है। कुछ लोग इस रोग का उत्पादक 'वैक्ट्रे न्यूमासिण्टेस' (Bactre Pneumasintes) नामक जीवाणु को भी मानते हैं। जीवाणु रोगी की छींक, खाँसी आदि से निकलकर श्वास-मार्ग द्वारा आक्रमण करता है।

रोग को रोकने एवं बचने के उपाय—इस रोग की महामारी इतनी शीघ्रता से फैलती है कि इसको रोकने के लिए कोई प्रबन्ध सम्भव नहीं है। रोगियों को पृथक् रखना और उनकी सेवा-सुश्रूषा करना कठिन हो जाता है।

प्रत्येक व्यक्ति का यह उचित कर्त्तव्य है कि वह रोग के दिनों में सभा, सिनेमा, मेला इत्यादि जगहों में न जाय और न किसी रोगग्रस्त व्यक्ति के पास बैठे। शुद्ध वायु के लिए समुचित प्रबन्ध हो। सोने के कमरे की खिड़कियाँ खुली हों। बरामदे में सोना और उत्तम है। शरीर स्वच्छ रखें। गले और

नाक को जल में नमक मिलाकर साफ रखें। यदि किसी रोगी के पास जाना हो तो नाक और मुँह पर एक मलमल के टुकड़े में यूकलिप्टस का तेल लगाकर रखना चाहिए। संक्षेप में, रोगकाल में पूर्ण विश्राम और परहेज ही इसकी मूल चिकित्सा है।

रोगी की सेवा एवं चिकित्सा— रोगी को अलग कमरा में सुलाया जाय। रोगी के छींकते और खाँसते समय रूमाल (नाक या मुँह के पास) रख दिया जाय। रूमाल में यूकलिप्टस का तेल लगा देने से रोगी को आराम भी पहुँचता है। रोगी को गरम कपड़ा पहनाना चाहिए तथा उसे ठंढक से बचाकर रखना चाहिए। रोगी के भोजन में गरम दूध, हरा साग, टमाटर, प्याज इत्यादि देना चाहिए।

प्रश्न ६. (a) जुकाम के क्या लक्षण हैं ? यह कैसे फैलता है ? इस रोग से बचने के लिए क्या उपाय करना चाहिए ?

उत्तर—साधारण बोलचाल में जुकाम को सर्दी कहते हैं। यों तो हमलोग इसे कोई रोग नहीं समझते, लेकिन यह भी एक संक्रामक रोग है जिसका शरीर पर बुरा प्रभाव पड़ता है। प्रायः साधारण जुकाम ही कभी-कभी निमो-निया या अन्य श्वास-सम्बन्धी रोगों का रूप धारण कर लेता है। अतः इस साधारण रोग पर भी हमें ध्यान देना उचित है।

रोग के लक्षण—साधारणतः आक्रान्त व्यक्ति की नाक-आँख से पानी गिरने लगता है। उसे बार-बार छींकें आती हैं और श्वास-प्रणाली में जलन होने लगती है। सिर भारी मालूम पड़ता है। प्रायः सिरदर्द भी उत्पन्न हो जाता है। अकसर सिरदर्द के साथ-साथ सारे शरीर में दर्द होने लगता है। मन सुस्त पड़ जाता है। किसी काम को करने में आलस्य मालूम पड़ता है। प्रायः ऐसी अवस्था में हल्का-हल्का ज्वर भी हो जाता है।

रोग-प्रसार के साधन— इस रोग की उत्पत्ति का कारण एक विशेष प्रकार का रोग-उत्पादक सूक्ष्म जीवाणु है। आक्रान्त व्यक्तियों की श्वास-प्रणाली

के ऊर्ध्व भाग में ये बहुतायत से पाये जाते हैं। फलतः उनके छींकने, खाँसने या जोर से बोलने पर विन्दूत्क्षेप (Droplets) के रूप में ये बाहर निकल आते हैं। बहुधा आक्रान्त व्यक्ति के रूमाल, तौलिया आदि के व्यवहार से भी यह रोग अन्य व्यक्तियों में फैल जाता है।

रोग से बचने के उपाय— पूर्ण विश्राम ही इस रोग की मुख्य चिकित्सा है। अतः जुकाम से आक्रान्त व्यक्ति को बाहर के सभी कामों को छोड़कर बिस्तरे पर तब तक पूर्ण विश्राम लेना चाहिए, जब तक रोग के लक्षण दूर न हो जायें। प्रायः तीन-चार दिन में रोग के सभी लक्षण दूर हो जाते हैं। यह रोग शीतकाल में अधिक होता है। उस समय रोगी को गर्म वस्त्र पहन लेना चाहिए। साथ ही, उसे ठंढी हवा से बचना चाहिए। छींकते या खाँसते समय नाक और मुँह के सामने रूमाल रखना चाहिए। रूमाल में यूकलिप्टस का तेल लगाकर सूँघने से लाभ होता है। ऐसे लोगों को यथासम्भव अपने परिवार या अन्य लोगों से सावधानी से मिलना चाहिए। यदि मिलना बिलकुल बन्द कर दिया जाय, तो अत्युत्तम हो।

प्रश्न १०. यक्ष्मा रोग के क्या लक्षण हैं? यह कैसे फैलता है? इसे रोकने का क्या उपाय करेंगी?

उत्तर— राजयक्ष्मा को Captain of death कहा जाता है। यह एक छूत का रोग है जो कभी तीव्र होता है और कभी चिरस्थायी भी। इसका लक्षण खाँसी, ज्वर का होना तथा दुबला होना है। यह रोग सबसे अधिक फुफ्फुस में होता है। यह रोग छड़ी के समान एक प्रकार के जीवाणु से होता है जिसे Bacillus tuberculosis कहते हैं। प्रत्येक मनुष्य के शरीर में इस रोग के जीवाणु वर्त्तमान रहते हैं। लेकिन जब तक मनुष्य की रोग-निरोध-क्षमता कम नहीं हाती, इस रोग के लक्षण दिखलाई नहीं पड़ते।

लक्षण— शरीर के भार में कमी, रक्त की कमी, सुस्ती, थोड़े परिश्रम से थकावट, हल्की खाँसी, भूख की कमी, शरीर में दुर्बलता, धीरे-धीरे दिन-रात में चौबीसों घंटे ज्वर का रहना, थूक के साथ रक्त आना, रोगी का

स्वभाव चिड़चिड़ा और क्रोधी हो जाना इत्यादि इस रोग के लक्षण हैं।

रोग का रूप— (i) सबसे अधिक यह रोग फुफ्फुस में होता है। यह Pulmonary tuberculosis या 'थाइसिस' (Phthisis) कहलाता है। खाँसी, ज्वर, बढ़ती हुई दुर्बलता ही इसके लक्षण हैं।

(ii) इस रोग का दूसरा रूप वह है जो आंत में होता है। यह बच्चों को अधिक होता है। इसे Intestinal tuberculosis कहते हैं। कब्ज रहना, पतला दस्त होना, उदर में दर्द, पेट कड़ा रहना, ज्वर रहना इत्यादि इसके प्रधान लक्षण हैं।

(iii) इस रोग का जीवाणु हड्डियों एवं हड्डियों की संधियों (Joints) पर भी आक्रमण करता है। तब इस रोग को Bone tuberculosis या Bone T. B. कहते हैं।

(iv) पशुओं को भी यह रोग हो जाया करता है। जब पशुओं को यह रोग होता है तो उसे Bovine tuberculosis कहते हैं। यह रोग गाय को अधिक होता है।

इस रोग के निम्नलिखित कारण हैं—

(i) उत्तम पौष्टिक भोजन न मिलना। (ii) गन्दे स्थानों में छोटे-छोटे कमरों में रहना जिसमें शुद्ध वायु तथा सूर्य के प्रकाश का प्रवेश न हो (iii) अथवा थोड़े स्थान में बहुत-से मनुष्यों के साथ रहना। (iv) शरीर की दुर्बलता, इस रोग के किसी रोगी के साथ रहना तथा अन्य सब कारण जिससे किसी भी प्रकार शरीर की दुर्बलता बढ़ती है, इस रोग की उत्पत्ति में सहायक होते हैं। (v) बाल-विवाह से क्योंकि सन्तानोत्पत्ति के कारण लड़के-लड़कियाँ कमजोर हो जाती हैं। अधिकतर लड़कियों के शरीर की सहन-शक्ति नष्ट हो जाती है। (vi) अनियमित रूप से रहने से। (vii) विलास की अधिकता से। (viii) लगातार सर्दी और इन्फ्लुएंजा होते रहने से।

यक्ष्मा फैलने का तरीका— क्षयरोग निम्नलिखित रूप से फैलता है—

(i) क्षयरोगग्रस्त व्यक्ति अपनी खाँसी, छींक द्वारा या जोर से बोलने के समय ३ फुट की दूरी तक मुँह से जल-कण (Droplets) फेंकते हैं। इन जल-

कणों के साथ क्षयरोग के कीटाणु रहते हैं तथा नजदीक के स्वस्थ मनुष्य के शरीर में श्वास-क्रिया के जरिये वे प्रवेश करते हैं।

(ii) थूक या अन्य कीटाणुयुक्त स्राव रोगग्रस्त व्यक्ति के शरीर से निकल-कर एवं सूखकर हवा के साथ सूक्ष्म कणों के रूप में तैरते रहते हैं। स्वस्थ व्यक्ति श्वास द्वारा उन्हें अपने शरीर में प्रविष्ट कर लेते हैं।

(iii) रोगी की थूक तथा अन्य कीटाणुयुक्त स्राव से सेवा करनेवाले के हाथों द्वारा खाद्य तथा पेय पदार्थ संक्रामित हो जा सकते हैं।

(iv) कीटाणुयुक्त खाद्य-सामग्री खाने से यह रोग फैल सकता है।

(v) रोगी के गिलास, थाली आदि के व्यवहार करने से नीरोग व्यक्ति इससे प्रत्यक्ष रूप से (Directly) संक्रमित हो जाते हैं।

(vi) यक्ष्मारोगग्रस्त गाय का दूध पीने से भी यह रोग होता है।

(vii) यक्ष्मारोगग्रस्त परिवार में रहने से भी यह रोग होता है।

(viii) मक्खियों या अन्य कीड़ों द्वारा भोजन की सामग्री संक्रमित हो जाती है।

लेकिन नीरोग व्यक्ति का रोगग्रस्त हो जाना निम्नलिखित विषयों पर निर्भर करता है—

(i) यक्ष्मा के कीटाणु की प्रचण्डता (Virulence)।

(ii) प्रविष्ट कीटाणुओं की संख्या।

(iii) संपर्क की आवृत्ति (Frequency of infection)।

(iv) कीटाणुओं के प्रवेश-पथ (प्रभाव पड़ने योग्य है या नहीं)।

(v) व्यक्ति की रोग-निरोध-क्षमता (Immunity)

उपर्युक्त विषयों पर रोग का संक्रमण निर्भर करता है।

यक्ष्मा रोकने के उपाय—

(a) सामान्य व्यवस्था (General measures)—

(i) सामान्य सफाई (General sanitation) पर ध्यान देना चाहिए। विशुद्ध वायु तथा सूर्य की रोशनी वासगृह में काफी परिमाण में आनी चाहिए।

(ii) गाँव तथा शहरों में वासगृह एवं सड़कें नियन्त्रित रूप से बनानी चाहिए।

(iii) अस्वास्थ्यकर व्यवसाय नियन्त्रित करने चाहिए।

(iv) धूल से कमरे को मुक्त करना चाहिए।

(v) भोजन तथा पेय सामग्रियों की जाँच करनी चाहिए (घरेलू जानवरों की भी परीक्षा करनी चाहिए)।

(vi) यक्ष्मा रोकने की विधियों की जानकारी इश्तहार, चल-चित्र आदि द्वारा देनी चाहिए।

(b) विशिष्ट व्यवस्था (Specific measures)—

(i) किसी व्यक्ति को यक्ष्मा होने पर इसकी खबर सभी को देनी चाहिए।

(ii) जन्म के बाद सन्तान को यक्ष्मारोगग्रस्त माता-पिता से अलग कर देना चाहिए।

(iii) यक्ष्मा-निरोधक संस्था (Anti-tuberculosis Organisation) की स्थापना करनी चाहिए। इसका कार्य निम्नलिखित होना चाहिए—

(a) यक्ष्मा के अस्पताल (Hospital) का परिचालन।

(b) यक्ष्मा के बाद आरोग्य-निकेतनों की व्यवस्था करना।

(c) B.C.G टीके की व्यवस्था करना।

(d) वासगृहों को जीवाणुमुक्त (Disinfect) करने की व्यवस्था करना।

प्रश्न १०. (a) क्षयरोग के साधारण लक्षण क्या हैं? घर में यदि कोई क्षयरोग से आक्रान्त हो गया है तो उसके लिए क्या व्यवस्था करेंगी?

उत्तर— साधारणतः क्षयरोग से आक्रान्त व्यक्ति का शरीर-भार अकारण ही दिनानुदिन घटता जाता है। थोड़ा भी परिश्रम करने से थकावट मालूम पड़ने लगती है। इसमें भूख मन्द पड़ जाती है। प्रायः हल्की सूखी खाँसी होती है। धीरे-धीरे शरीर के तापक्रम में वृद्धि होती है। विशेषकर संध्या-काल में

शरार का तापक्रम कुछ बढ़ जाता है। रात में अधिक पसीना निकलता है। क्रमशः खाँसी बढ़ती जाती है, बलगम निकलने लगता है। प्रायः बलगम में रक्त के कण भी मिले रहते हैं। उचित चिकित्सा नहीं करने से रोगी मर जाता है।

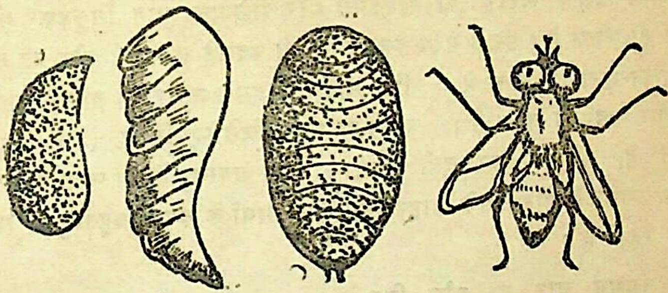
यदि व्यक्तिविशेष के घर में कोई क्षय का रोगी हो, तो उसके सोने, खाने-पीने आदि का प्रबन्ध अलग होना चाहिए। ध्यान रखना चाहिए कि रोगी का कमरा साफ-सुथरा और हवादार हो, उसमें सूर्य का प्रकाश पर्याप्त मात्रा में आता हो। साथ ही वह कमरा घर के अन्य कमरों से यथासम्भव दूर हो। रोगी के खाने-पीने के बरतन-बासन अलग हों तथा उन्हें व्यवहृत होने पर प्रत्येक बार विसंक्रामक द्रव्यों से धो दिया जाय। इसी प्रकार रोगी के कपड़े धोने की अलग व्यवस्था हो। रोगी के कमरे के फर्श, मेज, कुर्सी इत्यादि को फिनाइल-युक्त जल में भीगे कपड़े से दिन में कई बार पोंछे जाने का प्रबन्ध हो। रोगी को यत्र-तत्र थूकने की मनाही हो। रोगी के थूकने के लिए एक अलग ढक्कन-दार पात्र हो, जिसमें फिनाइल का घोल रखा हो। रोगी की थूक और बलगम को दूर हटाकर गाड़ देना उचित है। बरतन प्रत्येक दिन पोटाश के जल से धुले, इसपर ध्यान रखा जाय।

(ग) कीट और उनके द्वारा फैलनेवाले रोग

प्रश्न १. घरेलू मक्खी के जीवन-चक्र का संक्षेप में वर्णन करें। इससे कौन-कौन-सी बीमारियाँ फैलती हैं? इसके विनाश का उपाय बतावें।

उत्तर— घर की मक्खियाँ—जीवन-चक्र—मक्खी के जीवन में चार अवस्थाएँ होती हैं—(a) अण्डा (Egg), (b) लार्वा (Larva), (c) प्यूपा

(Pupa), (d) साधारण मक्खी (Fly)। इन चारों अवस्थाओं में शरीर की



बनावट में इतनी असमानता होती है कि हम इन्हें भली-भाँति पहचान नहीं सकते हैं।

मक्खियाँ साधारणतः सड़ी-गली वस्तुओं, गन्दे स्थानों तथा गोबर या लीद इत्यादि पर अण्डे देना अधिक पसन्द करती हैं। इनके अण्डे एकदम सफेद, चमकीले तथा कुछ लम्बे होते हैं। ये एक दिन में लगभग १००-१५० अण्डे दे सकती हैं। ये अण्डे एक-दूसरे के ऊपर समूहों में विन्यस्त रहते हैं। लगभग आठ घंटे से चौबीस घंटे के भीतर ही प्रत्येक अण्डे से एक लार्वा उत्पन्न होता है।

जिस समय लार्वा उत्पन्न होता है उस समय उसका शरीर मक्खन के समान सफेद तथा चिकना होता है। लार्वा में सिर, आँखें या पैर नहीं होते। परन्तु इसका अग्रभाग, जिसे केफालिक (Cephalic) कहते हैं, पिछले भाग की अपेक्षा पतला और छोटा होता है। लार्वा के शरीर के शेष भाग को बारह खण्डों में विभक्त देखा जाता है। यह प्रकाश में नहीं रहता है बल्कि अँधेरी जगहों में पाया जाता है। भोजन की खोज में यह इधर-उधर रेंगता भी है। इस प्रकार लगभग तीन से पाँच सप्ताह में यह बढ़कर सयाना हो जाता है।

सयाना हो जाने पर लार्वा शुष्क स्थान में चला जाता है और जमीन में एक या दो फुट की गहराई तक भी पहुँच जाता है। जब इसके प्यूपा बनने का

समय आता है तब यह भोजन बन्द कर देता है। तब यह एक स्थान पर जाकर निश्चित हो जाता है। धीरे-धीरे इसका शरीर कुछ सिकुड़ने लगता है और इसके शरीर का आगेवाला और पीछेवाला भाग सिकुड़कर गोलाकार हो जाता है। इसके साथ इसका रंग भी बदलने लगता है और यह सफेद से गाढ़ा-भूरा हो जाता है। फिर धीरे-धीरे इसके शरीर का बाहरी आवरण सूखकर कड़ा हो जाता है। वह कड़ा भाग, जिसे प्यूपेरियम (Puparium) कहते हैं, झड़कर गिर नहीं पड़ता। इस अवस्था में वह प्यूपा के रूप में जाना जाता है और इसके बाहरी रूप और लार्वा के रूप में बहुत-कुछ समानता रहती है।

लगभग चार या पाँच दिन के बाद, प्यूपा के पूर्ण रूप से बढ़ जाने के बाद, उसके अग्रभाग में एक गोल छिद्र हो जाता है। इसी छिद्र से होकर एक तैयार मक्खी निकलती है।

उपर्युक्त बातों से स्पष्ट है कि मक्खी के जीवन-चक्र में पूर्ण रूपान्तर (Metamorphosis) होता है। अर्थात्, इसके शरीर के आकार में कई बार परिवर्तन होते हैं जिस कारण इसका एक रूप दूसरे रूप से भिन्न होता है।

मक्खियों द्वारा फैलनेवाली बीमारियाँ—

(i) हैजा (Cholera), (ii) इनफैण्टाइल डायरिया (Infantile diarrhoea), (iii) पेचिश (Dysentery), (iv) टायफायड (Typhoid), (v) परजीवी कीड़े (Parasitic worms), (vi) यक्ष्मा (Tuberculosis), (vii) ओरियण्टल सोर (Oriental sore), (viii) कुष्ठ (Leprosy), (ix) ग्लैण्डर्स (Glanders) तथा (x) ऐन्थ्राक्स (Anthrax)।

मक्खियों द्वारा चर्म तथा चक्षु की बीमारियाँ, ट्रकोमा (Trachoma), अफथैलमिया (Ophthalmia) आदि भी होती हैं।

मक्खियाँ दो प्रकार से रोग के कीटाणुओं का वहन करती हैं—

(i) बाह्य वहन— रोग के कीटाणु मक्खी के शरीर, पंख या पैर से सटकर एक स्थान से दूसरे स्थान पर स्थानान्तरित होते हैं।

(ii) आन्तरिक वहन—मक्खी अपने भोजन के साथ टायफायड के कीटाणुओं को ग्रहण करती है और उसके शरीर में इनका पोषण होता है। मक्खी जब पुनः भोजन करने बैठती है तो उसके शुंड से एक तरल पदार्थ निकलता है, जिसमें भोजन घुल जाता है और मक्खियाँ शुंड के सहारे उसे ग्रहण करती हैं। इस तरल पदार्थ के साथ कीटाणु निकल आते हैं और मक्खी के उड़ जाने पर वे भोजन में उपस्थित रहकर बीमारी उत्पन्न कर सकते हैं।

मक्खियों के विनाश के उपाय—(क) मक्खियों की वृद्धि रोकनी चाहिए—

(i) मक्खियाँ गन्दे स्थानों में रहती हैं। गर्म देशों में ठंढे देशों की अपेक्षा ये अधिक रहती हैं, क्योंकि गर्म देशों में चीजें जल्दी सड़ती हैं जिससे गन्दगी अधिक होती है। वर्षा-ऋतु में तो इनकी संख्या और भी अधिक बढ़ जाती है। सफाई पर पूरा ध्यान देने से मक्खियों का नाश हो जाता है।

(ii) गोबर, घोड़े की लीद, मल और सड़ी-गली चीजों पर मक्खियाँ अण्डे देती हैं, अतः गंदगी नष्ट कर मक्खियों की वृद्धि रोकनी चाहिए।

(iii) ये रोगियों के मल, कै और अन्य वस्तुओं पर, जिनपर रोगों के जीवाणु रह सकते हैं, बैठती हैं। रोग के कुछ जीवाणु इनके शरीर में सट जाते हैं। यही मक्खियाँ जब भोजन पर बैठती हैं तब रोग के कीटाणु भोजन में मिल जाते हैं और खानेवाले मनुष्य को रोगी बना देते हैं। टायफायड, हैजा, राजयक्ष्मा इत्यादि रोग इसी तरह फैलते हैं। अतः रोगी के मल, कै आदि को मिट्टी के नीचे गाड़ देना चाहिए।

(iv) मल, थूक, कै इत्यादि से मक्खियाँ रस चूसती हैं। रस के साथ-साथ रोग के जीवाणु भी मक्खी के शरीर में चले जाते हैं। ये जीवाणु मक्खी के मल के साथ निकलते हैं। मक्खियाँ भोजन पर बैठकर अकसर मलत्याग करती हैं जिससे रोग फैल जाते हैं। अतः मक्खी का नाश करने के लिए कूड़ा-कर्कट गाँव से दूर ले जाकर जलाया जाय। कूड़े के ढेरों पर मिट्टी का तेल या नीम की पत्ती देकर उबाला हुआ पानी छींट देना चाहिए।

(v) घर को फिनाइल से अकसर धोना चाहिए। गली-कूचों में ब्लीचिंग पाउडर देना चाहिए। मोरियाँ कच्ची नहीं रहनी चाहिए। मोरियाँ ढकी होनी चाहिए। जहाँ-तहाँ पाखाना करना या फेंकना रोकना चाहिए। गोशाला या अस्तबल का सफाई का पूरा ध्यान रखना चाहिए।

(ख) जवान मक्खियों को मारना चाहिए— इसके लिए डा. डी. टी. एवं अन्य मक्खी मारनेवाली दवाओं का उपयोग करना चाहिए। टूगीन नामक दवा एक स्थान पर रख देने पर मक्खी को आकर्षित करती है और उसे मार डालती है।

प्रश्न २. मलेरिया रोग के क्या लक्षण हैं ? यह कैसे फैलता है ? इसे रोकने के लिए आप क्या उपाय करेंगी ?

उत्तर—रोग के लक्षण— इसका प्रधान लक्षण जोरों से जाड़ा देकर तेज बुखार का आना है। ऐसी अवस्था में कँपकँपी होने लगती है, शरीर से पसीना छूटने लगता है। पुनः धीरे-धीरे ज्वर छूट जाता है। तीसरे-चौथे दिन पुनः इसी प्रकार ज्वर आता है। यह क्रिया महीनों चलती रहती है। फलतः रोगी बहुत कमजोर हो जाता है। उसका शरीर पीला पड़ जाता है। उसकी प्लीहा और यकृत बढ़ जाते हैं। उचित चिकित्सा के अभाव में रोगी दिनानुदिन निर्बल होता जाता है। ऐसी अवस्था में वह अन्य रोगों का शिकार बन जाता है।

रोग-प्रसार के कारण— यह रोग 'मलेरिया पैरासाइट' (Malaria Parasite) नामक प्रोटोजोआ वर्ग के जीवाणु के कारण होता है। जीवाणु पराश्रयी होता है। जीवाणुओं के विकास की दो विशिष्ट अवस्थाएँ हैं। पहली अवस्था के विकास का चक्र मच्छरों के शरीर में आरम्भ होकर वहीं समाप्त हो जाता है। दूसरा चक्र मनुष्य के रक्त में समाप्त होता है। इस प्रकार इन जीवाणुओं के विकास का प्रथम चक्र मच्छरों और द्वितीय चक्र मनुष्यों में समाप्त होता है। केवल एनोफिलीज जाति की मादा मच्छर ही इस रोग के

जीवाणुओं का संवहन करती है। अन्य जाति के मच्छरों का मलेरिया रोग के प्रसार से कुछ भी सम्बन्ध नहीं है।

एनोफिलीज जाति की मादा मच्छर जब मलेरिया रोग से आक्रान्त व्यक्ति का रक्त चूसती है, तब रक्त के साथ रोग के जीवाणु इसके शरीर में प्रविष्ट हो जाते हैं। रोग के जीवाणुओं का विकास मच्छर के शरीर में होता रहता है। पुनः जब मच्छर किसी स्वस्थ मनुष्य को काटता है, तब दंश के साथ ये विकसित जीवाणु मनुष्य के रक्त में पहुँच जाते हैं। रक्त में जाकर ये रक्त के लाल कणों को आक्रान्त करते हैं। वहाँ इनकी वृद्धि और विकास होता है। फलतः मलेरिया रोग के लक्षण दिखाई पड़ने लगते हैं। ऐसे आक्रान्त व्यक्ति को यदि कोई मच्छर काटता है, तो उसके शरीर में भी मलेरिया रोग के जीवाणु प्रविष्ट हो जाते हैं।

मलेरिया से बचने के उपाय—(क) मच्छरों का विनाश करना चाहिए। इसके लिए—(i) पानी को एक स्थान पर जमने नहीं देना चाहिए, क्योंकि इसी प्रकार के जल में मादा मच्छर अंडे देती है। गन्दे नाली और गढ़ों को समय-समय पर साफ करने से अंडे नष्ट होते रहेंगे।

(ii) अगर गन्दे पानी को बहाना सम्भव नहीं हो तो उसपर किरासन तेल छिड़क देना चाहिए। पानी पर तैरते हुए तेल की उपस्थिति में अंडे नहीं जी सकते।

(iii) तालाब आदि में मछलियाँ पालनी चाहिए, ये अंडों को खा जाती हैं।

(iv) गन्दी जगहों एवं घरों में मच्छर मारनेवाली दवा (डी० डी० टी०, फ्लीट आदि) का उपयोग करना चाहिए। इससे मच्छर मर जाते हैं।

(v) सफाई का पूरा प्रबन्ध होना चाहिए। विसंक्रामक पदार्थ गलियों, नालियों इत्यादि में कुछ-कुछ दिन पर डालते रहना चाहिए।

(ख) मच्छरों के काटने से बचना चाहिए—इसके लिए—

(i) घरों को गँदले पानी से दूर ऊँची सतह पर बनाना चाहिए।

(ii) मसहरी के अन्दर सोना चाहिए।

(iii) कड़ुआ तेल लगाकर सोना चाहिए।

(iv) मच्छरवाले इलाकों में घरों में पतले जाल लगे रहने चाहिए।

(ग) मलेरिया से बचने के लिए मलेरियावाले इलाकों में हफ्ते में एक बार पैल्यूड्रीन खाना चाहिए।

(घ) मलेरिया होने पर तुरत उसकी दवा करनी चाहिए। इसके लिए कुनैन, मैपाक्रीन, कैमोक्वीन, ऐटेब्रिन इत्यादि अत्यंत प्रभावशाली दवाएँ हैं। मलेरिया का इन्जेक्शन भी दिया जाता है। जूड़ीताप आदि पेटेण्ट दवाइयाँ भी बन गयी हैं और डाक्टर लोग कुनैन का मिक्सचर भी देते हैं।

प्रश्न ३. प्लेग रोग के क्या लक्षण हैं? यह कैसे फैलता है तथा इससे बचने के उपाय क्या हैं?

उत्तर—रोग के लक्षण—प्लेग से आक्रान्त व्यक्ति की जाँघ, काँख या गर्दन की ग्रंथियों में सूजन हो जाती है। इसमें बहुत पीड़ा होती है। आँखें लाल हो जाती हैं। जाड़ा देकर तेज बुखार आता है। प्यास बहुत लगती है। सारे शरीर में दर्द मालूम पड़ता है। ज्वर बढ़ता जाता है, रोगी की हालत बिगड़ती जाती है। साधारणतः उचित चिकित्सा से सूजी हुई गिल्टियाँ या तो फूट जाती हैं, या बैठ जाती हैं। रोगी धीरे-धीरे चंगा हो जाता है। अन्यथा रोग-वृद्धि से आक्रान्त व्यक्ति मृत्यु को प्राप्त हो जाता है।

रोग-प्रसार के साधन—प्लेग की उत्पत्ति एक विशेष प्रकार के संक्रामक रोग-उत्पादक जीवाणु द्वारा होती है। इसे बैसिलस पेस्टिस (Bacillus Pestis) कहते हैं। यह जीवाणु पराश्रयी है। यह सर्वप्रथम चूहे पर आक्रमण करता है। फलतः महामारी उत्पन्न होने के पहले चूहे मरने लगते हैं। अधिक संख्या में चूहों का मरना, महामारी आने की पूर्वसूचना है। आक्रान्त चूहों के शरीर में पिस्सू नामक नन्हे-नन्हे कीड़े रहते हैं। चूहों के रक्त पर जीवित रहने के कारण रक्त चूसते समय ये जीवाणु उनके शरीर में चले जाते हैं। चूहों के मर जाने पर ये उन्हें छोड़कर भोजन की खोज में मनुष्यों या अन्य चूहों पर आक्रमण करते हैं। रक्त चूसते समय रोग के जीवाणु पिस्सू के

शरीर से मनुष्य के शरीर में पहुँच जाते हैं। पिस्सुओं के अतिरिक्त चूहे और मनुष्य भी रोग-प्रसार में भाग लेते हैं। आक्रान्त स्थान के निवासियों के पहनने के वस्त्रों और बिछावनों में पिस्सू छिपे रहते हैं। पुनः इनके सम्पर्क में आने से अन्य व्यक्तियों के शरीर तक ये पिस्सू पहुँच जाते हैं। इस प्रकार रोग दूर-दूर तक फैल जाता है।

रोग से बचाव के साधन— महामारी के रूप में रोग दिखाई पड़ते ही इसकी सूचना निकटतम स्वास्थ्य-विभाग के अफसरों को दे देनी चाहिए तथा तुरन्त ही सुयोग्य डाक्टर से दिखाकर आक्रान्त व्यक्ति की उचित चिकित्सा करानी चाहिए। अच्छा तो यह है कि आक्रान्त व्यक्ति को निकटतम अस्पताल पहुँचाकर परिवार के सभी लोग दो-तीन महीने के लिए घर छोड़कर अन्यत्र चले जायँ।

चूहों से सुरक्षा का उपाय करें। इसके लिए नगरपालिका से सहायता लें। खाने की चीजों को ढककर रखें, जिससे चूहे वहाँ नहीं पहुँचें। घर पक्का बनायें जिससे चूहे बिल न बना सकें।

स्थान-परित्याग— यदि प्लेग रोग किसी क्षेत्र में फैल गया हो या बड़ी संख्या में अकारण ही चूहे मरने लगें तो उचित है कि उस क्षेत्र के निवासी अपने क्षेत्र को छोड़कर कुछ समय के लिए किसी दूसरी जगह चले जायँ।

चूहों का विनाश— चूहों को नष्ट करने का प्रयत्न करें। नगरपालिका तथा स्वास्थ्य-विभाग द्वारा चूहों को मारने के लिए मुफ्त प्रबन्ध है। इनके बिलों में हाइड्रोसियानिक गैस दिलवाकर नष्ट करवा दें। उक्त गैस एक तीव्र विष है अतः इससे सावधान रहें।

प्लेग-निरोधक सीरम का व्यवहार— आक्रान्त स्थान के सभी व्यक्तियों को प्लेग के सीरम की सूई लगवा देनी चाहिए। इससे प्लेग रोग से रक्षा हो जाती है। यदि टीका लगे व्यक्ति को प्लेग हो भी जाता है तो यह उतना घातक नहीं होता, व्यक्तिविशेष शीघ्र चंगा हो जाता है।

घरों का विसंक्रमण—आक्रान्त चूहे और पिस्सुओं को नष्ट करने के लिए घरों के फर्शों को विसंक्रामक पदार्थों से धो देना चाहिए। इसके लिए क्रीजोल का

धुआँ अधिक उपयुक्त है। इन विसंक्रामक द्रव्यों के अभाव में मरे हुए तथा स्थानविशेष पर किरासन तेल छींटकर आग लगा देनी चाहिए। करने से चूहे और पिस्सू दोनों नष्ट हो जाते हैं।

व्यक्तिगत सुरक्षा—प्लेग के पिस्सू एक फुट से अधिक उछल पाते। अतः आक्रान्त क्षेत्र में जाते समय मोजे और बूट-जूते का व्यवहार चाहिए तथा वहाँ से लौटने पर वस्त्रों को धूप में सुखा लेना चाहिए प्रकार आक्रान्त क्षेत्र से आये हुए लोगों को भी अपने वस्त्रों और बिछाव काफी समय तक धूप में रखकर उन्हें पिस्सू से विमुक्त कर लेना चाहिए

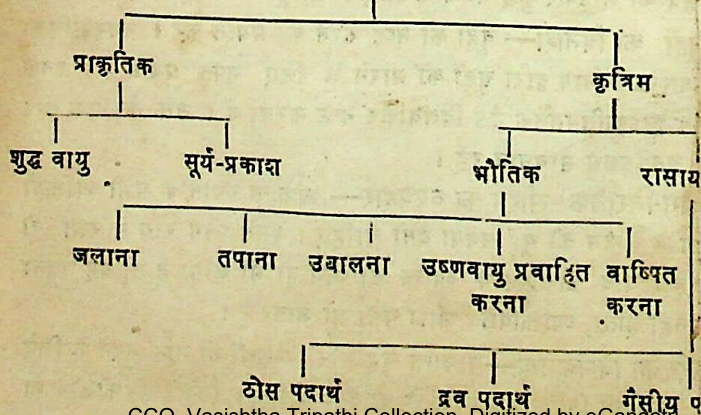
अध्याय ८

विसंक्रमण-क्रिया और विसंक्रामक पदार्थ (परिनाशक)

प्रश्न १. विसंक्रामक (परिनाशक) किसे कहते हैं ? इसके कौन-से साधन हैं ? प्रत्येक का संक्षिप्त विवरण दीजिए।

उत्तर—साधारण बोलचाल में जो वस्तु रोगों के कीटाणु आ विनाश के काम में लायी जाती है, वह विसंक्रामक वस्तु (Disinfecta कही जाती है। क्रियाविशेष को विसंक्रमण (Disinfection) कहते हैं।

विसंक्रमण के साधन



(iv) घर ऐसे स्थान पर हो जहाँ पीने के लिए ताजा और शुद्ध जल आसानी से प्राप्त हो सके।

(v) घर ऐसे स्थान पर हो जहाँ धूप तथा स्वच्छ वायु उपलब्ध हो सके।

(vi) घर सड़क से कुछ हट कर बनाया जाय।

(ख) जमीन की बनावट — मकान का स्वस्थ और मजबूत होना इसकी जमीन की मिट्टी की रचना पर बहुत हद तक निर्भर है। चिकनी मिट्टी पर बने हुए मकान प्रायः सर्द होते हैं, भरी हुई जमीन पर बने मकान कमजोर होते हैं। ऊँची कंकड़ीली तथा रेतीली भूमि मकान बनाने के लिए अधिक उपयुक्त है। ऐसी जमीन पर बने मकान सील से मुक्त रहते हैं। अगर ऐसी जमीन उपलब्ध न हो तो विशेष वैज्ञानिक प्रविधियों से उपयुक्त पुश्ता देकर मकान बनाना चाहिए।

(ग) घर की रचना — इसके लिए निम्नलिखित तथ्यों को दृष्टिकाण में रखना आवश्यक है—

(i) मकान बनाते समय सील से बचने के लिए जमीन की सतह से ऊपर मकान की पूरी दीवाल पर एक पाँच-छः इंच की कंकरीट की तह जमा ली जाय। ऐसा करने से मिट्टी की सील दीवारों के जरिये ऊपर नहीं जा पाती है, फलतः कमरे सूखे रहते हैं।

(ii) घरों को सूखा रखने के लिए मकान का फर्श ऊँचा, कड़ा और सूखा होना चाहिए। ऐसा करने के लिए फर्श पर सीमेंट की एक मोटी तह चढ़ी रहनी चाहिए।

(iii) एक घर दूसरे घर से सटे हुए न हों।

(iv) यथासम्भव घर का रुख पूरब या उत्तर हो। ऐसे रुख वाले मकानों में काफी समय तक सूर्य का प्रकाश मिलता है।

(v) घर में पर्याप्त खिड़कियाँ हों तथा क्रास वेण्टीलेशन (आमने-सामने खिड़कियाँ एवं दरवाजा) का प्रवन्ध हो।

(vi) घर में जितने व्यक्तियों को रहना है, सबके लिए पर्याप्त स्थान हो। प्रत्येक व्यक्ति को प्रायः १००० घन फुट हवा की आवश्यकता है।

(vii) रसोई-घर रहने के घरों से कुछ दूरी पर रहे, इस पर भी ध्यान देना आवश्यक है।

(viii) प्रत्येक घर के साथ बरामदे की व्यवस्था होनी चाहिए। गर्मी, वर्षा और सर्दी से बचने के लिए कमरों के दोनों ओर बरामदे का रहना स्वास्थ्य की दृष्टि से अधिक हितकर है।

(ix) घर के इर्द-गिर्द छोटी-छोटी वाटिका लगायी जाय।

(x) घर के चारों ओर यथासम्भव खुला स्थान रहना चाहिए।

(xi) रसोई-घर पृथक्, हवादार और सूखा हो।

(घ) गन्दे जल का निकास, मलोत्सर्जन एवं कूड़े-कर्कट का विसर्जन— इनके लिए निम्नलिखित व्यवस्था होनी चाहिए—

(i) यथासम्भव पाखाना एवं पेशाबखाना सेप्टिक किस्म का हो।

(ii) वर्षा तथा अन्य प्रकार के गन्दे जलों के निकास के लिए मकान, रसोई-घर और पाखाने के चारों ओर नाली होनी चाहिए। देहातों में दूषित जल के निकास के लिए जल शोषक गढ़े बनाये जा सकते हैं।

(iii) नालियाँ ऊपर से बन्द हों और जमीन के अन्दर से ही पानी बहे तो अधिक अच्छा हो।

(iv) घर के कूड़ा-कर्कट को कुछ दूर पर एकत्र करने की व्यवस्था हो।

प्रश्न २. आप अपने रहने के लिए एक आदर्श कोठरी बनवाने के समय स्वास्थ्य की किन-किन बातों पर ध्यान देंगी ? कारण बतायें।

उत्तर— रहने के लिए आदर्श कोठरी बनवाने में निम्नलिखित बातों पर ध्यान देना चाहिए।

(i) विस्तार और प्रकाश— कमरा यथासम्भव प्रशस्त हो। साथ ही, वह ऐसा हो कि उसमें पर्याप्त मात्रा में सूर्य-प्रकाश और वायु आती हो। क्षेत्र-फल के विचार से प्रत्येक व्यक्ति के लिए एक सौ वर्गफुट स्थान प्राप्त हो, इसका ध्यान रखना उचित है। नियमानुकूल कमरा का क्षेत्रफल का दसांश खिड़कियों का क्षेत्रफल रखना जरूरी है। इससे अधिक होना और भी हितकर

है। कमरे में आमने-सामने कम-से-कम दो खिड़कियों और एक दरवाजा का रहना आवश्यक है। ऐसी खिड़कियों द्वारा वायु के गमनागमन में सुविधा होती है।

(ii) कमरे की ऊँचाई— ऊँचा कमरा अपेक्षाकृत अधिक ठण्ढा होता है। अतः फर्श से उसकी छत की ऊँचाई जितनी अधिक हो उतना ही अच्छा है। साधारणतः बारह फुट ऊँचा कमरा अच्छा समझा जाता है।

(iii) सुरक्षा और सुविधा— सुरक्षा, स्वास्थ्य और आराम की दृष्टि से कमरे की दीवाल ईंटों की हो तथा इसका फर्श पक्का और जल-अभेद्य हो। इसकी प्रत्येक खिड़की में लोहे की छड़ें हों और किवाड़ों के अतिरिक्त इसमें शीशे जड़े अतिरिक्त किवाड़ हों। मच्छरों और मक्खियों से बचाव के लिए बाहर से महीन जाली लगी हो।

कमरे की आन्तरिक व्यवस्था— कमरे की आन्तरिक व्यवस्था व्यक्ति-विशेष की आवश्यकता, उनकी आर्थिक अवस्था, रुचि इत्यादि पर निर्भर है। सोने के कमरे में बिस्तरे के अतिरिक्त जितनी भी कम चीजें हों, उतना ही उत्तम है। लेकिन प्रत्येक वस्तु ऐसी व्यवस्थित रीति से रखी हो जिसे देखकर मन प्रसन्न हो जाय। कमरे में प्रत्येक वस्तु रखने के लिए निश्चित स्थान हो और विशेष वस्तुएँ निश्चित स्थान पर रखी जायँ।

प्रश्न ३. किन-किन सिद्धान्तों को सामने रखकर रसोईघर का चुनाव करेंगी ? धूल और मक्खियों से उसे कैसे बचायेंगी ?

उत्तर— रसोईघर के चुनाव एवं व्यवस्था में निम्नलिखित बातों को ध्यान में रखना चाहिए—

(i) रसोईघर अन्य घरों से पृथक् रहना चाहिए।

(ii) रसोईघर मकान के पिछले भाग में तथा पाखाने या पेशाबस्थान से दूर होना चाहिए।

(iii) सड़क के किनारे रसोईघर नहीं रहना चाहिए नहीं तो धूल, कूड़ा-कर्कट आदि उड़कर भोजन को दूषित करेंगे।

(iv) रसोईघर अन्य कमरों की तरह ही हवादार होना चाहिए।

(v) रसोईघर का फर्श पक्का होना चाहिए जिससे दिन में कई बार सहज ही भलीभाँति धुल सके।

(vi) दूषित जल के निकास के लिए अच्छी नाली की व्यवस्था रहनी चाहिए।

(vii) रसोईघर में सुविधानुसार एक या एक से अधिक चूल्हा धुआँ के निकास की चिमनी, मसाला आदि रखने के लिए रैक या ढक्कनदार आलमारी धुले हुए बरतनों को रखने के लिए छोटी चौकी या रैक, बैठने के लिए पीढ़ा या स्टूल, झाड़न तौलिया आदि रहना चाहिए।

(viii) रसोईघर के निकट ही भण्डारघर रहना चाहिए।

(ix) मक्खियों से बचाव के लिए इसकी खिड़कियों पर महीन जाली मढ़ी रहनी चाहिए।

प्रश्न ४. एक साधारण मध्यम श्रेणी के परिवार के घर में कितने कमरे होने चाहिए तथा इनकी सजावट कैसी होनी चाहिए ?

उत्तर—दैनिक जीवन की आवश्यकताओं को ध्यान में रखकर एक मध्यम श्रेणी के छोटे परिवार के लिए निम्नांकित कमरों की आवश्यकता होगी—

(i) बैठक का कमरा—बैठक के कमरे को 'ड्राइंग रूम' कहा जाता है। इसी कमरे में अतिथियों का सत्कार किया जाता है तथा मित्रों के साथ बैठ कर गप-शप होता है। खुले बरामदे के बाद ही बैठक का कमरा रहना चाहिए ताकि अतिथियों के स्वागत में किसी प्रकार की असुविधा न हो।

सुसज्जा—परिवार की आर्थिक क्षमता के अनुसार ही बैठक का कमरा सुसज्जित होना चाहिए। कमरे में सोफासेट के अलावे दो-चार तिपाई, गोलमेज, गुलदस्ते, पीकदान एवं राखदान आवश्यक हैं। कमरे की दीवालों के अनुरूप ही खिड़कियों और दरवाजे पर पर्दा लगाना चाहिए। कमरे के कोने

में छोटी-छोटी तिकोनी मेज पर कढ़ हुए मेजपोश डालकर उनपर छोटी-छोटी सुन्दर चीजें सजा देने से कमरे का शोभा बढ़ जाती है।

(ii) सोने का कमरा—परिवार के सदस्यों के अनुसार ही सोने के कमरे होने चाहिए। विवाहित व्यक्तियों के लिए अलग-अलग कमरा अवश्य होना चाहिए। दस-बारह वर्ष की उम्र से अधिक के बच्चों के लिए भी अलग कमरा हो तो अच्छा होगा पर साधारण मध्यम श्रेणी के परिवार के लिए यह शायद सम्भव नहीं हो। पर प्रत्येक छोटे या बड़े व्यक्ति के सोने के लिए खाट, पलंग अलग-अलग जरूर होना चाहिए।

सुसज्जा—सोने के कमरे में अधिक सामान नहीं रहना चाहिए। यथा-साध्य प्रत्येक व्यक्ति के लिए अलग पलंग या चारपाई, एक छोटी मेज, हल्की कुर्सी या स्टूल और तौलिया रहना चाहिए। कपड़े के लिए स्टैण्ड तथा सुराही-स्टैण्ड पर सुराही भी अवश्य रहनी चाहिए। सुराही को गिलास से ढँक कर रखना चाहिए। उस गिलास का उपयोग पानी पीने के समय करना चाहिए।

(iii) नहाने का कमरा—नहाने का कमरा ६×६ फुट जरूर होना चाहिए। इसमें एक रैक या ताक हो जिसपर साबुन, तेल, मंजन, दाढ़ी बनाने के सभी जरूरी सामान रखे जा सकें। पानी रखने के लिए बाल्टी और नहाने के लिए मग एवं तौलिया टाँगने के लिए एक खूँटी भी रहनी चाहिए।

(iv) पढ़ने-लिखने का कमरा – प्रत्येक गृह में गृहस्वामी तथा पढ़नेवाले लड़कों के लिए एक कमरा अवश्य रहना चाहिए। प्रत्येक के लिए अलग-अलग कमरा सम्भव नहीं है। ऐसा कमरा मकान के उस भाग में हो जहाँ काफी सूर्य-प्रकाश आता हो। इस कमरे में मेज, कुर्सी, दावात, कलम तथा पढ़ने-लिखने के अन्य सामान (प्रत्येक व्यक्ति के लिए अलग-अलग सामान) अवश्य हों।

(v) रसोईघर—रसोईघर का कमरा मकान के पिछले हिस्से में तथा पाखाना, पेशाबखाना से दूर रहना चाहिए। अन्य कमरों की तरह इसे भी हवा-दार होना चाहिए।

सुसज्जा—प्रत्येक रसोईघर में सुविधानुसार एक या अधिक चूल्हा, धुआँ निकलने के लिए चिमनी, मसाला एवं अन्य आवश्यक सामान रखने के लिए आलमारी या छोटी चौकी, झाड़न, सलाई आदि अवश्य रखना चाहिए।

(vi) भण्डार—रसोईघर के पास ही भण्डारघर रहना चाहिए। इन दिनों रसोईघर-सह-भण्डारघर का रिवाज चल पड़ा है। अर्थात्, एक ही कमरे का उपयोग रसोईघर एवं भण्डारघर के रूप में होता है। भण्डारघर में अनाज एवं अन्य सामान रखने के लिए ऊँचा रैक होना आवश्यक है।

(vii) भोजन करने का कमरा—जगह के अभाव में लोग रसोईघर के सामने के बरामदे में ही बैठकर भोजन करते हैं। पर यथासाध्य भोजन करने के लिए एक अलग कमरा रहना चाहिए। भोजन करने का कमरा रसोईघर के निकट होना चाहिए ताकि भोजन परोसने में सुविधा हो। इसकी जमीन पक्की होनी चाहिए। अगर जमीन पर बैठकर खाते हों तो परिस्थिति या सुविधानुसार बैठने के लिए पीढ़ा, आसनी आदि का प्रबन्ध हो। आजकल लोग मेज पर खाना पसन्द करते हैं। ऐसा स्थिति में भोजन के कमरे में एक लम्बी मेज और उसके दोनों ओर परिवार के सदस्यों की संख्या के अनुसार बिना बाँह वाली कुर्सियाँ रहनी चाहिए।

(viii) पाखाना—पाखाना घर या कुएँ से यथासाध्य दूर खुले स्थान में रहना चाहिए। शहर के नये ढंग के घरों में रहने, उठने-बैठने, सोने, अतिथिशाला आदि सभी कमरों के साथ पाखाने का कमरा लगा रहता है। ऐसी व्यवस्था, जहाँ जलवाहक-विधि द्वारा मल-मूत्र-वाहन का प्रबन्ध रहता है, विशेष उपयोगी होती है।

(ix) अतिथिशाला—प्रत्येक सम्पन्न गृह में एक अतिथिशाला का रहना जरूरी है। पाखाना और स्नानगृह से युक्त अतिथिशाला अत्युत्तम होता है। अतिथिशाला का कमरा अन्य कमरों जैसा ही प्रकाशयुक्त और हवादार होना चाहिए। साथ ही, इसमें सोने के लिए चारपाई, मेज, कुर्सी, सुराही, गिलास,

आलमारी, स्टैण्ड, लैम्प तथा शृंगार के अन्य सामान का भी रहना जरूरी है।

प्रश्न ४. (a) कूड़ा-कर्कट के कितने भेद हैं? प्रत्येक का संक्षिप्त विवरण दीजिए।

उत्तर—कूड़ा-कर्कट के भेद—प्राप्ति के विचार से कूड़ा-कर्कट को हम निम्नलिखित भागों में विभाजित कर सकते हैं—

(क) शहरों के कूड़ा-कर्कट,

(ख) घरों के कूड़ा-कर्कट,

(ग) मानव मल-मूत्र, दूषित जल आदि।

शहरों के कूड़ा-कर्कट—शहरों के कूड़ा-कर्कट में राख, कागज, सूखे पत्ते, बोरे, चीथड़े, सड़े फल-मूल, साग-सब्जियों के छिलके, गोबर, लीद, मल-मूत्र तथा घरों और सड़कों के बुहारन प्रमुख हैं। प्रत्येक सुव्यवस्थित नगरपालिका नके समुचित विधि से एकत्र करने तथा इनको शहर से दूर फेंकवाने या इनके द्वारा कम्पोस्ट खाद बनवाने का प्रबन्ध करती है।

घरों का कूड़ा-कर्कट—घरों का कूड़ा-कर्कट भी तीन भागों में बाँटा जा सकता है—

(क) शरीर से निकले हुए वर्ज्य पदार्थ, मल-मूत्र आदि।

(ख) दूषित जल—स्नानागार, रसोईघर, घर धुलाई इत्यादि का दूषित जल।

(ग) रसोईघर के कूड़ा-कर्कट—राख, साग-सब्जियों के छिलके, सड़े फल-मूल, साग-सब्जियाँ इत्यादि।

मानव-मल-मूत्र—मानव-मल-मूत्र का अर्थ है, पाखाना और पेशाव। इनके निष्कासन की मुख्यत: दो विधियाँ हैं—

(क) सूखी विधि—मेहतरों द्वारा बन्द टीनों या गाड़ियों में मल-मूत्र का संकलन और उनका विसर्जन।

(ख) तर विधि—इस विधि में जल, मल-मूत्र को अपने साथ बहाकर

छोटी-बड़ी बन्द नालियों द्वारा, निश्चित विशेष-स्थान में ले जाता है जहाँ इसका समुचित रूप से विनाश होता जाता है। इस विधि को जलवाहन (Sewage)-विधि कहते हैं।

प्रश्न ५. कूड़ा-कर्कट को फेंकने की रीति एवं उसे नष्ट करने की विधि का वर्णन कीजिए।

उत्तर— घर के कूड़ा-कर्कट को फेंकने की रीति— घर के कूड़ा-कर्कट को लोग जहाँ-तहाँ फेंक देते हैं, जिससे गन्दगी और बीमारियाँ फैलती हैं। शहरों में कूड़ा-कर्कट को फेंकने के लिए सड़कों के किनारे जहाँ-तहाँ कूड़ा-टबों का प्रबन्ध रहता है, जिसमें लोगों को कूड़ा-कर्कट फेंकना चाहिए। नगर-पालिका की गाड़ियाँ उस कूड़ा-कर्कट को एकत्र कर उसे नष्ट करने का प्रबन्ध करती है।

देहातों में इस प्रकार के प्रबन्ध नहीं रहते। देहातवासियों को भी कूड़ा-कर्कट गाँव से बाहर गड्ढों में फेंकना चाहिए और इसके बाद उसे नष्ट करने की व्यवस्था करनी चाहिए।

कूड़ा-कर्कट को नष्ट करने की विधियाँ - (i) दलदली जमीनों में एवं गड्ढों में फेंकना — कूड़ा-कर्कट शहर या देहात के बाहर गड्ढों या दलदली जमीनों में फेंक दिये जाते हैं, जिससे गड्ढे और दलदल भर जाते हैं। कालान्तर में इस प्रकार की भूमि का विसंक्रमण कर उसमें मकान बनाये जाते हैं।

(ii) कूड़ा-कर्कट से मिश्र खाद बनाना— कूड़ा-कर्कट साग-सब्जियों के छीलन, गोबर आदि के साथ खाइयों में डाल दिये जाते हैं और इसके बाद खाइयों को भर दिया जाता है। कालान्तर कूड़ा-कर्कट भूरे रंग की खाद में परिवर्तित हो जाता है, जो भूमि को उपजाऊ बनाने का काम करता है।

(iii) अग्नि द्वारा नाश करना — इसमें कूड़ा-कर्कट, मलादि, सूखी पत्तियों एवं लकड़ी के साथ विशेष प्रकार की भट्ठियों में जला दिये जाते हैं।

मल को एकत्र करना और उसे नष्ट करना—मल भी घर के कूड़ा-कर्कटों में एक है। शौचालय स्वच्छ और हवादार होना चाहिए और उसमें

सूर्य की किरणें भलीभाँति पहुँचनी चाहिए। मल-मूत्र पृथक् बरतनों में एकत्र किये जाने चाहिए। मल को एकत्र करने के बरतन ऐसे हों जो चूते न हों।

मल को एकत्र कर खाइयों में गाड़ कर या तो खाद बनाया जाता है या उसे विशेष प्रकार की भट्ठियों में जला दिया जाता है। मल के उत्सर्जन की आधुनिक विधि में रासायनिक क्रियाओं से मल से अनेक प्रकार के बहुमूल्य रसायन एवं गैस तैयार किये जाते हैं।

आधुनिक शहरों में शाचालय 'फ्लश' किस्म के होते हैं। इसमें मल को पानी के झोंके से बहा दिया जाता है। जल जमीन के नीचे बनी नालियों के सहारे मल को बहा ले जाता है। मल को तालाबों में एकत्र कर उसे नष्ट करने की व्यवस्था की जाती है।

प्रश्न ६. प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष उद्दीपन से क्या समझते हैं ?

उत्तर— जब किसी दीप्त वस्तु से प्रकाश की किरणें निकल कर सीधे आँखों को प्रभावित करती हैं, तो ऐसे प्रकाश को हम प्रत्यक्ष प्रकाश (Direct light) और उसके द्वारा उद्दीपन को प्रत्यक्ष दीपन (Direct lighting) कहते हैं। सूर्य स्वयं-दीप्त है। इससे जो प्रकाश हमें सीधे मिलती है उसे हम प्रत्यक्ष प्रकाश कहते हैं। सूर्य की प्रकाश-किरणें चन्द्रमा पर पड़ती हैं और वहाँ से परावर्तित (Reflect) हो कर पृथ्वी को उद्भासित करती हैं। अतः चन्द्रमा के प्रकाश को हम अप्रत्यक्ष प्रकाश (Indirect light) की संज्ञा देंगे। दिन के समय कमरे का बाहर वाला खुला भाग सूर्य के प्रत्यक्ष प्रकाश और अन्दर वाला भाग सूर्य के अप्रत्यक्ष प्रकाश से प्रकाशित होता है।

प्रश्न ७. गृह-उद्दीपन के कौन-कौन से साधन हैं ? इनमें सबसे अच्छा साधन कौन-सा है और क्यों ?

उत्तर— आदिकाल से ही लोग गृह-उद्दीपन के लिए विभिन्न प्रसाधनों का उपयोग करते आ रहे हैं। प्रागैतिहासिक काल में जंगल के वासी गृह-उद्दीपन में काठ का व्यवहार करते थे, जिससे उन्हें ताप और प्रकाश दोनों साथ-साथ प्राप्त हो जाते थे।

सभ्यता के विकास के क्रमानुसार गृह-उद्दीपन की कला में भी विकास होता चला। क्रम से दीपक, मोमबत्ती, लालटेन, लैम्प-प्रज्वलित गैस और बिजली-बत्ती गृह-उद्दीपन के प्रसाधन बने। प्रज्वलित गैस और बिजली-बत्ती को छोड़कर अन्य प्रकार के प्रसाधनों का प्रकाश उतना चकाचौंध करने वाला नहीं होता है। अतः उनसे आँखों को विशेष हानि नहीं होती है।

बिजली का प्रकाश— बिजली का प्रकाश बहुत तेज होता है। बिजली के बल्वों में फिलामेण्ट (Filament) होता है। बिजली के प्रवाहित होने से यह गर्म हो कर चमकने लगता है। पर बिजली-बत्ती में एक भारी दोष है। प्रकाश के साथ-साथ यह ताप भी विमुक्त करती है। साथ ही, इसका फिलामेण्ट इतना चमकने लगता है कि आँखों को कष्ट होने लगता है। बिजली की बत्ती की चमक (Glaze) से बचने के लिए बहुधा उसके शीशे के बल्व को घिस दिया (Frosted) जाता है, जिससे फिलामेण्ट अदृश्य हो जाता है और सारा बल्व एक-सा प्रकाशमान दिखलाई पड़ने लगता है। फिर भी, बल्व की चमक इतनी तेज होती है कि आँखें इस पर टिक नहीं पाती हैं। बिजली की चमक से बचने के लिए आजकल अप्रत्यक्ष उद्दीपन (Indirect lighting) या अर्ध-अप्रत्यक्ष उद्दीपन (Semi-indirect lighting) का उपयोग किया जाता है।

अप्रत्यक्ष उद्दीपन— अप्रत्यक्ष उद्दीपन के लिए कमरों में बल्व इस प्रकार से लगाये जाते हैं कि उनका प्रकाश छत या दीवाल से परावर्त्तित होकर टेबुल, फर्श आदि पर पड़ता है। बिजली की बत्ती स्वयं आँखों से अदृश्य रहती है। जहाँ तक आँखों का प्रश्न है अप्रत्यक्ष उद्दीपन विधि सर्वोपरि है। लेकिन यह विधि अधिक खर्चीली है। इसमें साधारण प्रकाश के लिए भी तेज बल्व लगाना पड़ता है।

अर्ध-अप्रत्यक्ष उद्दीपन— कमरों के अर्ध-अप्रत्यक्ष उद्दीपन विधि में न तो बिजली की बत्ती ही खुली रहती है और न अदृश्य ही। संक्षेप में, यह प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष विधियों के बीच एक समझौता है। इसमें बिजली की बत्ती के नीचे एक अपारभासक काँच का तवा लगा रहता है जिसके कारण

कुछ प्रकाश तवा होकर और कुछ प्रकाश छत और दीवारों से परावर्त्तित होकर नीचे आता है।

टेबुल पर प्रकाश— टेबुल पर बैठकर साधारण काम करने लिए १० बत्ती बल और बारीक अक्षर की किताबों को पढ़ने के लिए २० बत्ती बल से अधिक उद्दीपन प्रकाश आवश्यक नहीं है। ऐसा प्रकाश लालटेन से भी प्राप्त हो जाता है। अगर लालटेन का व्यवहार करना आवश्यक हो तो इस पर कागज का एक पर्दा लगा देना चाहिए कि इसका प्रकाश पुस्तक या कापियों पर पड़े। लेकिन इसका प्रज्वलित भाग आँखों से अदृश्य हो। बिजली के लैम्प के व्यवहार करते समय ध्यान रखना चाहिए कि बल्ब इस प्रकार का हो कि इसकी चमक आँखों पर नहीं पड़े, लेकिन प्रकाश सारे टेबुल पर पड़े। यदि प्रकाश पीछे या बायीं ओर से आता हो तो अत्युत्तम है।

पठन-कक्ष का उद्दीपन— साधारणतः हमलोगों के यहाँ दिन में स्कूल की पढ़ाई होती है, अतः कृत्रिम प्रकाश द्वारा पठन-कक्ष के उद्दीपन का प्रश्न नहीं उठता है। नियमानुसार दक्खिन-मुखी स्कूल की इमारत होने तथा उपयुक्त परिमाण में दरवाजे और खिड़कियों का प्रबन्ध होने से अतिरिक्त प्रकाश की आवश्यकता नहीं पड़ती है। फिर भी जहाँ कृत्रिम उद्दीपन की आवश्यकता हो वहाँ प्रकाश का प्रबन्ध ऐसा हो कि प्रत्येक लड़के को अपने-अपने टेबुल पर कम-से-कम दस बत्ती बल और श्यामपट (Black board) पर बीस बत्ती-बल का प्रकाश जरूर उपलब्ध हो।

कम खर्च में अधिक प्रकाश— साधारण बिजली की बत्ती में वैद्युत्-ऊर्जा का अधिकांश भाग बल्ब के फिलामेण्ट को गर्म करने में लग जाता है, जो बेकार हो जाता है। आजकल एक विशेष प्रकार का वैद्युत् प्रकाश-उत्पादक-प्रसाधन काम में लाया जाता है। इसे फ्लोरेसेण्ट (Fluorescent) लैम्प या स्टिक कहते हैं। बड़े-बड़े शहरों में सड़कों और दूकानों को प्रकाशित करने के लिए इनका ही व्यवहार होता है।

इन लैम्पों की अपनी विशेषता है। इनमें सूत्र लम्बा होता है, बल्ब जैसा एक स्थान पर केन्द्रित नहीं होता। इसके अतिरिक्त इसका प्रकाश सौर-

प्रकाश के समकक्ष होता है। इसकी कार्यक्षमता साधारण बिजली की बत्ती से दो-तीन गुनी अधिक होती है। ६० वॉट के साधारण बल्ब से जितना प्रकाश मिलता है, उससे कहीं अधिक प्रकाश २५ वॉट के फ्लोरेसेण्ट लैम्प से प्राप्त होता है। इस प्रकार कम खर्च में अपेक्षाकृत अधिक प्रकाश प्राप्त होता है। इसमें एक और विशेषता यह है कि ट्यूब के अन्दर विभिन्न लवणों की परत चढ़ा कर विभिन्न रंगों का प्रकाश प्राप्त किया जाता है।

अध्याय १०

गृह-उपकरण एवं अलंकरण

E.P.H.

प्रश्न १. गृह-उपकरणों का चुनाव करते समय आप किन-किन बातों पर ध्यान देंगी ?

उत्तर— गृह-उपकरणों का चुनाव करते समय निम्नलिखित बातों पर ध्यान देना चाहिए—

(i) घर का प्रत्येक उपकरण मजबूत, टिकाऊ, सुन्दर और सुरुचिपूर्ण होना चाहिए।

(ii) हमारे जैसे गर्म और आर्द्र जलवायु वाले देश में धूल अधिक उड़ती है तथा गर्मी में आँधी चलती है। फलत: धूल से कमरा भर जाता है। ऐसी स्थिति में भारी गद्देदार सोफासेट को हटाकर प्रत्येक दिन कमरे को साफ करना मुश्किल हो जाता है। अत: हमारे यहाँ के उपकरण यथासाध्य हल्के होने चाहिए।

(iii) कमरे के फर्श पर अपने सामर्थ्य के अनुसार कालीन, दरी आदि बिछाया जाना चाहिए। परन्तु भारी मोटे कालीन की सफाई नियमित तथा

ठीक तरह से नहीं हो सकती है। अतः यथासाध्य हल्की ही दरी या कालीन का उपयोग करना चाहिए।

(iv) कमरे की खिड़कियों और दरवाजों पर कमरे के रंग के अनुरूप पर्दे का व्यवहार करना चाहिए।

प्रश्न २. गृह-अलंकरण (घरों की सजावट) में किन-किन बातों पर ध्यान देंगी ?

उत्तर— घर या कमरे का सुन्दर होना बहुत हद तक व्यक्ति या परिवार की संस्कृति और सुरुचि पर निर्भर है। प्रायः सुन्दर से सुन्दर और महँगे-से-महँगे सजावट के सामान के रहते हुए भी उनका अव्यवस्थित और कुरुचिपूर्ण ढंग से रखा जाना कमरे को भद्दा बना देता है। अतः प्रत्येक कमरे की सजावट सुरुचिपूर्ण हो, इसका ध्यान रखना आवश्यक है। इसके लिए निम्नलिखित बातों पर ध्यान देना चाहिए।

(i) कमरे की दीवाल— कमरे की रंगीन दीवाल देखने में सुन्दर मालूम पड़ती है। अतः कमरे की दीवाल पर उपयोगिता के अनुसार उपयुक्त रंग चढ़वा देना चाहिए।

(ii) कमरों के फर्श— सामर्थ्य के अनुसार कमरे के फर्श पर दरी या कालीन बिछा देना चाहिए। इससे कमरे की शोभा बढ़ जाती है। दरी या कालीन हल्की हो ताकि उसकी सफाई नियमित रूप से की जा सके। अगर कमरे का फर्श रंगीन हो तो कालीन या दरी का उपयोग नहीं भी किया जा सकता है।

(iii) कमरे के पर्दे— पर्दे का मुख्य उद्देश्य है सूर्य की तीव्र किरणों से रक्षा करना एवं गौण उद्देश्य है कमरे की शोभा बढ़ाना। अतः कमरे की खिड़कियों तथा दरवाजों पर कमरे के रंग के अनुरूप पर्दे का व्यवहार करना चाहिए। मोटे तथा गाढ़े रंग के पर्दे से प्रकाश की तीव्रता कम हो जाती है और गर्मी में कमरा ठण्ढा लगता है। कढ़ा या छपा हुआ रंगीन पर्दा कमरे की शोभा अधिक बढ़ा देता है।

(iv) काष्ठ-उपकरण— कमरे में काष्ठ-उपकरण जैसे मेज, कुर्सी, पलंग, रैक, खूँटी, स्टैंड आदि उतना ही रहना चाहिए जितना नितांत आवश्यक हो। वे सुन्दर, हल्के, टिकाऊ और सुरुचिपूर्ण हों। साथ ही, समय-समय पर इनमें पालिश लगती हो। पालिश-उचरा सामान देखने में भद्दा मालूम पड़ता है।

अलंकरण के अन्य प्रसाधन— कमरों को अलंकृत करने के लिए स्थान-विशेष पर फूल के गमले या गुलदस्ते रखे जायँ तथा सवेरे और संध्या के समय गुलदस्ते के फूल जरूर बदल दिये जायँ। इसी प्रकार, मैला होने पर या कम-से-कम प्रत्येक सप्ताह के बाद मेज-पोश (Table cloth) भी अवश्य बदल दिये जायँ। समय-समय पर, और विशेष कर संध्या के समय, कमरे में धूप, गुग्गुल या अगरबत्ती जलाने से कमरे का वातावरण शुद्ध और मनमोहक हो जाता है।

अध्याय ११

गृहिणी के कर्त्तव्य

प्रश्न १. एक आदर्श गृहिणी के क्या गुण हैं? (1958 A)

उत्तर— एक आदर्श गृहिणी के निम्नलिखित गुण हैं—

(i) एक आदर्श गृहिणी घर के कामों की देख-रेख उचित ढंग से करती है।

(ii) वह परिवार के सभी व्यक्तियों के शारीरिक, मानसिक स्वास्थ्य का ख्याल रखते हुए उसी तरह का प्रबन्ध करती है।

(iii) वह अपने कार्यों द्वारा परिवार के व्यक्तियों में सद्भावना की शृंखला जोड़ती है।

(iv) वह अपने कार्यों से घर में सुख और शान्ति का साम्राज्य स्थापित करती है।

(v) वह अपने कर्त्तव्यों को (भोजन-सम्बन्धी, कपड़े-सम्बन्धी, मकान-सम्बन्धी, समाज-सम्बन्धी, स्वास्थ्य-सम्बन्धी, निज-सम्बन्धी कर्त्तव्य—इनका विवरण आगे के प्रश्न में है) अच्छी तरह समझती है और उनका पालन करती है।

(vi) वह परिवार के बच्चों की उचित देख-रेख करती है तथा बड़े-बूढ़ों की उचित सेवा करती है।

(vii) वह अपने कार्यों को मन लगाकर करती है तथा सभी सदस्यों के प्रति अपनत्व दिखाती है।

(viii) वह अपने समस्त कार्यों को सुचारु रूप से सम्पादित करने के लिए अपनी गृहकार्य-योजना इस तरह बनाती है कि आवश्यकतानुसार सभी काम उपयुक्त समय में सम्पन्न हो जाय।

(ix) वह अपने परिवार की आय के अनुसार ही खर्च करती है और मासिक आय-व्यय की जाँच कर आगामी माह के लिए बजट बनाती है।

(x) वह यथासाध्य मितव्ययी होती है।

इस तरह आदर्श गृहिणी अपने घर को स्वर्ग बना देती है।

प्रश्न २. आदर्श गृहिणी के क्या कर्त्तव्य हैं ? संक्षेप में लिखें।

उत्तर—एक आदर्श गृहिणी के निम्नलिखित कर्त्तव्य हैं—

(i) **भोजन-सम्बन्धी कर्त्तव्य**—भोजन-सम्बन्धी कर्त्तव्य के अन्तर्गत निम्नलिखित कार्य आते हैं—

(i) भोज्य पदार्थों का खरीदना एवं उनकी सुरक्षा।

(ii) भोजन पकाना तथा उससे सम्बन्धित अन्य कार्य जैसे चावल बीनना, दाल साफ करना, तरकारी बनाना, मसाला पीसना, आटा गूँधना आदि।

साधारण आय वाले परिवार की गृहिणी ये कार्य स्वयं करती हैं पर उच्च आय की गृहिणी उपर्युक्त कार्य नौकर, दाई आदि से करवाती है।

(ii) कपड़े-सम्बन्धी कर्त्तव्य— कपड़े-सम्बन्धी कर्त्तव्य के अन्तर्गत निम्न लिखित कार्य आते हैं—

(i) कपड़ों की खरीद एवं उनकी सिलाई।

(ii) कपड़ों की मरम्मत एवं धुलाई।

स्वास्थ्य और आरोग्य के लिए साफ कपड़े पहनना आवश्यक है। जो गृहिणी सफाई का महत्त्व समझती है वह अपने तथा अपने परिवार के सदस्यों के कपड़े घर पर ही धो लेती है। रोजाना साफ करने से कपड़े अच्छे धुलते हैं और वे अधिक टिकते हैं। घर में कपड़ा धोने से हाथों का अच्छा व्यायाम होता है और धोबी के पैसे भी बचते हैं।

(iii) मकान-सम्बन्धी कर्त्तव्य— मकान-सम्बन्धी कर्त्तव्य के अन्तर्गत निम्नलिखित कार्य आते हैं—

(i) घर की दैनिक सफाई एवं झाड़-बुहाड़।

(ii) खाने-पीने के सामानों एवं बरतनों की दैनिक सफाई एवं सुरक्षा तथा उन्हें निश्चित स्थान पर रखना।

(iii) बीच-बीच में नाली, मोरी तथा पाखाने के फर्श आदि की सफाई।

(iv) बच्चों के प्रति कर्त्तव्य— इसके अन्तर्गत निम्नलिखित कार्य आते हैं—

(i) छोटे बच्चों को निश्चित समय पर दूध पिलाना, उन्हें भोजन देना, तेल लगाना, नहलाना, कपड़ा पहनाना एवं सुलाना।

(ii) बड़े बच्चों को पढ़ाना, समय पर खाना खिलाकर स्कूल भेजना तथा उनके स्वास्थ्य पर ध्यान देना।

(v) बूढ़ों के प्रति कर्त्तव्य— हमारे भारतीय परिवारों का संगठन ही ऐसा है कि हर घर में एक दो वृद्धजन अवश्य रहते हैं। गृहिणी का कुछ समय बूढ़ों की सेवा-शुश्रूषा में भी रोज लग जाता है। वृद्ध और अशक्त जनों की सेवा और उनकी समुचित देख-रेख करना गृहिणी का परम कर्त्तव्य है।

(vi) पति और परिवार के अन्य लोगों के प्रति कर्त्तव्य— अपने पति एवं परिवार के अन्य सदस्यों की रुचि के अनुसार भोजन, वस्त्र एवं सुविधाएँ

प्रदान करना आदर्श गृहिणी का कर्त्तव्य है। सफल गृहिणी ऐसे कार्यों को मन लगाकर करती है तथी सभी सदस्यों के प्रति अपनत्व दिखाती है।

(vii) स्वास्थ्य-सम्बन्धी कर्त्तव्य— आकस्मिक दुर्घटना होने पर प्राथमिक चिकित्सा करना, किसी सदस्य के रोगग्रस्त हो जाने पर उसकी सेवा करना, दवा पिलाना, टेम्परेचर देखना और उसका रेकर्ड रखना, उसके लिए पथ्य तैयार करना इत्यादि गृहिणी के स्वास्थ्य-सम्बन्धी कर्त्तव्य के अन्तर्गत हैं। अतः एक सफल गृहिणी को रोगी की परिचर्या-सम्बन्धी ज्ञान रखना एक प्रमुख कर्त्तव्य हो जाता है।

(viii) सामाजिक कर्त्तव्य— पास-पड़ोस में विवाह, जन्म, मृत्यु, पूजा इत्यादि अवसरों पर या यों ही हफ्ते-महीने पर एक घर की स्त्रियाँ दूसरे घरों में मिलने के लिए जाती हैं। ऐसे अवसर पर गृहिणी को उन्हें आदर-सत्कार से बैठाना, उनका सम्मान करना होता है। प्रत्येक सुसंस्कृत गृहिणी उनके बैठने के लिए समुचित स्थान तथा बैठने की वस्तु और उनके स्वागत के लिए समुचित सामान का पूर्व-प्रबन्ध करके रखती है।

(ix) निज के प्रति कर्त्तव्य— उपर्युक्त कर्त्तव्यों के अतिरिक्त गृहिणी का एक और प्रमुख कर्त्तव्य है, यह कर्त्तव्य है अपने प्रति। प्रायः भारतीय स्त्रियाँ अपने पति, बच्चे तथा अपने परिवार के लिए दिन-रात जी-तोड़ खटती रहती हैं, लेकिन अपने स्वास्थ्य की ओर ध्यान नहीं देती हैं। यह उचित नहीं है। एक सफल गृहिणी सभी कर्त्तव्यों पर ध्यान देते हुए अपने स्वास्थ्य पर भी समुचित ध्यान देती है।

प्रश्न ३. घर के कार्यों को सुचारु रूप से चलाने के लिए गृहिणी किस प्रकार योजना बनाती है ?

उत्तर— एक गृहिणी के कर्त्तव्यों के अन्तर्गत जितने भी कार्य हैं उन सबों को स्वयं प्रतिदिन सम्पादित करना सम्भव नहीं है। ऐसी स्थिति में एक कार्य-पटु गृहिणी सभी कार्यों को सुचारु रूप से सम्पादित करने के लिए अपनी दिन-

(ii) कपड़े-सम्बन्धी कर्त्तव्य— कपड़े-सम्बन्धी कर्त्तव्य के अन्तर्गत निम्न लिखित कार्य आते हैं—

(i) कपड़ों की खरीद एवं उनकी सिलाई।

(ii) कपड़ों की मरम्मत एवं धुलाई।

स्वास्थ्य और आरोग्य के लिए साफ कपड़े पहनना आवश्यक है। जो गृहिणी सफाई का महत्त्व समझती है वह अपने तथा अपने परिवार के सदस्यों के कपड़े घर पर ही धो लेती है। रोजाना साफ करने से कपड़े अच्छे धुलते हैं और वे अधिक टिकते हैं। घर में कपड़ा धोने से हाथों का अच्छा व्यायाम होता है और धोबी के पैसे भी बचते हैं।

(iii) मकान-सम्बन्धी कर्त्तव्य— मकान-सम्बन्धी कर्त्तव्य के अन्तर्गत निम्नलिखित कार्य आते हैं—

(i) घर की दैनिक सफाई एवं झाड़-बुहाड़।

(ii) खाने-पीने के सामानों एवं बरतनों की दैनिक सफाई एवं सुरक्षा तथा उन्हें निश्चित स्थान पर रखना।

(iii) बीच-बीच में नाली, मोरी तथा पाखाने के फर्श आदि की सफाई।

(iv) बच्चों के प्रति कर्त्तव्य— इसके अन्तर्गत निम्नलिखित कार्य आते हैं—

(i) छोटे बच्चों को निश्चित समय पर दूध पिलाना, उन्हें भोजन देना, तेल लगाना, नहलाना, कपड़ा पहनाना एवं सुलाना।

(ii) बड़े बच्चों को पढ़ाना, समय पर खाना खिलाकर स्कूल भेजना तथा उनके स्वास्थ्य पर ध्यान देना।

(v) बूढ़ों के प्रति कर्त्तव्य— हमारे भारतीय परिवारों का संगठन ही ऐसा है कि हर घर में एक दो वृद्धजन अवश्य रहते हैं। गृहिणी का कुछ समय बूढ़ों की सेवा-शुश्रूषा में भी रोज लग जाता है। वृद्ध और अशक्त जनों की सेवा और उनकी समुचित देख-रेख करना गृहिणी का परम कर्त्तव्य है।

(vi) पति और परिवार के अन्य लोगों के प्रति कर्त्तव्य— अपने पति एवं परिवार के अन्य सदस्यों की रुचि के अनुसार भोजन, वस्त्र एवं सुविधाएँ

प्रदान करना आदर्श गृहिणी का कर्त्तव्य है। सफल गृहिणी ऐसे कार्यों को मन लगाकर करती है तथा सभी सदस्यों के प्रति अपनत्व दिखाती है।

(vii) स्वास्थ्य-सम्बन्धी कर्त्तव्य— आकस्मिक दुर्घटना होने पर प्राथमिक चिकित्सा करना, किसी सदस्य के रोगग्रस्त हो जाने पर उसकी सेवा करना, दवा पिलाना, टेम्परेचर देखना और उसका रेकर्ड रखना, उसके लिए पथ्य तैयार करना इत्यादि गृहिणी के स्वास्थ्य-सम्बन्धी कर्त्तव्य के अन्तर्गत हैं। अतः एक सफल गृहिणी को रोगी की परिचर्या-सम्बन्धी ज्ञान रखना एक प्रमुख कर्त्तव्य हो जाता है।

(viii) सामाजिक कर्त्तव्य— पास-पड़ोस में विवाह, जन्म, मृत्यु, पूजा इत्यादि अवसरों पर या यों ही हफ्ते-महीने पर एक घर की स्त्रियाँ दूसरे घरों में मिलने के लिए जाती हैं। ऐसे अवसर पर गृहिणी को उन्हें आदर-सत्कार से बैठाना, उनका सम्मान करना होता है। प्रत्येक सुसंस्कृत गृहिणी उनके बैठने के लिए समुचित स्थान तथा बैठने की वस्तु और उनके स्वागत के लिए समुचित सामान का पूर्व-प्रबन्ध करके रखती है।

(ix) निज के प्रति कर्त्तव्य— उपर्युक्त कर्त्तव्यों के अतिरिक्त गृहिणी का एक और प्रमुख कर्त्तव्य है, यह कर्त्तव्य है अपने प्रति। प्रायः भारतीय स्त्रियाँ अपने पति, बच्चे तथा अपने परिवार के लिए दिन-रात जी-तोड़ खटती रहती हैं, लेकिन अपने स्वास्थ्य की ओर ध्यान नहीं देती हैं। यह उचित नहीं है। एक सफल गृहिणी सभी कर्त्तव्यों पर ध्यान देते हुए अपने स्वास्थ्य पर भी समुचित ध्यान देती है।

प्रश्न ३. घर के कार्यों को सुचारु रूप से चलाने के लिए गृहिणी किस प्रकार योजना बनाती है ?

उत्तर— एक गृहिणी के कर्त्तव्यों के अन्तर्गत जितने भी कार्य हैं उन सबों को स्वयं प्रतिदिन सम्पादित करना सम्भव नहीं है। ऐसी स्थिति में एक कार्य-पटु गृहिणी सभी कार्यों को सुचारु रूप से सम्पादित करने के लिए अपनी दिन-

(ii) कपड़े-सम्बन्धी कर्त्तव्य— कपड़े-सम्बन्धी कर्त्तव्य के अन्तर्गत निम्न लिखित कार्य आते हैं—

(i) कपड़ों की खरीद एवं उनकी सिलाई।

(ii) कपड़ों की मरम्मत एवं धुलाई।

स्वास्थ्य और आरोग्य के लिए साफ कपड़े पहनना आवश्यक है। जो गृहिणी सफाई का महत्त्व समझती है वह अपने तथा अपने परिवार के सदस्यों के कपड़े घर पर ही धो लेती है। रोजाना साफ करने से कपड़े अच्छे धुलते हैं और वे अधिक टिकते हैं। घर में कपड़ा धोने से हाथों का अच्छा व्यायाम होता है और धोबी के पैसे भी बचते हैं।

(iii) मकान-सम्बन्धी कर्त्तव्य— मकान-सम्बन्धी कर्त्तव्य के अन्तर्गत निम्नलिखित कार्य आते हैं—

(i) घर की दैनिक सफाई एवं झाड़-बुहाड़।

(ii) खाने-पीने के सामानों एवं बरतनों की दैनिक सफाई एवं सुरक्षा तथा उन्हें निश्चित स्थान पर रखना।

(iii) बीच-बीच में नाली, मोरी तथा पाखाने के फर्श आदि की सफाई।

(iv) बच्चों के प्रति कर्त्तव्य— इसके अन्तर्गत निम्नलिखित कार्य आते हैं—

(i) छोटे बच्चों को निश्चित समय पर दूध पिलाना, उन्हें भोजन देना, तेल लगाना, नहलाना, कपड़ा पहनाना एवं सुलाना।

(ii) बड़े बच्चों को पढ़ाना, समय पर खाना खिलाकर स्कूल भेजना तथा उनके स्वास्थ्य पर ध्यान देना।

(v) बूढ़ों के प्रति कर्त्तव्य— हमारे भारतीय परिवारों का संगठन ही ऐसा है कि हर घर में एक दो वृद्धजन अवश्य रहते हैं। गृहिणी का कुछ समय बूढ़ों की सेवा-शुश्रूषा में भी रोज लग जाता है। वृद्ध और अशक्त जनों की सेवा और उनकी समुचित देख-रेख करना गृहिणी का परम कर्त्तव्य है।

(vi) पति और परिवार के अन्य लोगों के प्रति कर्त्तव्य— अपने पति एवं परिवार के अन्य सदस्यों की रुचि के अनुसार भोजन, वस्त्र एवं सुविधाएँ

प्रदान करना आदर्श गृहिणी का कर्त्तव्य है। सफल गृहिणी ऐसे कार्यों को मन लगाकर करती है तथा सभी सदस्यों के प्रति अपनत्व दिखाती है।

(vii) स्वास्थ्य-सम्बन्धी कर्त्तव्य— आकस्मिक दुर्घटना होने पर प्राथमिक चिकित्सा करना, किसी सदस्य के रोगग्रस्त हो जाने पर उसकी सेवा करना, दवा पिलाना, टेम्परेचर देखना और उसका रेकर्ड रखना, उसके लिए पथ्य तैयार करना इत्यादि गृहिणी के स्वास्थ्य-सम्बन्धी कर्त्तव्य के अन्तर्गत हैं। अतः एक सफल गृहिणी को रोगी की परिचर्या-सम्बन्धी ज्ञान रखना एक प्रमुख कर्त्तव्य हो जाता है।

(viii) सामाजिक कर्त्तव्य— पास-पड़ोस में विवाह, जन्म, मृत्यु, पूजा इत्यादि अवसरों पर या यों ही हफ्ते-महीने पर एक घर की स्त्रियाँ दूसरे घरों में मिलने के लिए जाती हैं। ऐसे अवसर पर गृहिणी को उन्हें आदर-सत्कार से बैठाना, उनका सम्मान करना होता है। प्रत्येक सुसंस्कृत गृहिणी उनके बैठने के लिए समुचित स्थान तथा बैठने की वस्तु और उनके स्वागत के लिए समुचित सामान का पूर्व-प्रबन्ध करके रखती है।

(ix) निज के प्रति कर्त्तव्य— उपर्युक्त कर्त्तव्यों के अतिरिक्त गृहिणी का एक और प्रमुख कर्त्तव्य है, यह कर्त्तव्य है अपने प्रति। प्रायः भारतीय स्त्रियाँ अपने पति, बच्चे तथा अपने परिवार के लिए दिन-रात जी-तोड़ खटती रहती हैं, लेकिन अपने स्वास्थ्य की ओर ध्यान नहीं देती हैं। यह उचित नहीं है। एक सफल गृहिणी सभी कर्त्तव्यों पर ध्यान देते हुए अपने स्वास्थ्य पर भी समुचित ध्यान देती है।

प्रश्न ३. घर के कार्यों को सुचारु रूप से चलाने के लिए गृहिणी किस प्रकार योजना बनाती है ?

उत्तर— एक गृहिणी के कर्त्तव्यों के अन्तर्गत जितने भी कार्य हैं उन सबों को स्वयं प्रतिदिन सम्पादित करना सम्भव नहीं है। ऐसी स्थिति में एक कार्य-पटु गृहिणी सभी कार्यों को सुचारु रूप से सम्पादित करने के लिए अपनी दिन-

चर्या ऐसी बनाती है कि आवश्यकतानुसार सभी कार्य उपयुक्त समय में सम्पादित हो जायँ। इसके लिए वह निम्नलिखित बातों पर ध्यान देती है—

कार्य-वितरण— छोटे परिवार में जहाँ एकमात्र स्त्री होती है, उसे अकेले ही सभी काम करना पड़ता है। सम्पन्न परिवारों में जहाँ एक से अधिक स्त्रियाँ रहती हैं या घरेलू कार्यों में सहयोग देने के लिए नौकर रहते हैं वहाँ गृहिणी सदस्यों की योग्यता के अनुसार कार्यों का वितरण परिवार की स्त्रियों और नौकरों में कर देती है।

कार्य-नियोजन— एक सुघड़ गृहिणी सभी कार्यों को नियत समय में कम-से-कम परिश्रम द्वारा सफलतापूर्वक सम्पादन करने के लिए योजना बनाती है और उसी के अनुरूप कार्य करती है।

स्थान का चुनाव— सुविधा के लिए गृहिणी कुछ विशेष कार्यों के लिए निश्चित स्थान चुन लेती है और कार्य-विशेष के लिए सभी सामग्री पहले से ही वहाँ रख देती है। उदाहरण के लिए कपड़ा साफ करने के स्थान का चुनाव करते समय जलप्राप्ति के साधन की सन्निकटता का ध्यान रखती है। इसी तरह बच्चों के पढ़ने के लिए मेज रखते समय वह प्रकाश की दिशा का ख्याल रखती है।

समय और परिश्रम का सदुपयोग— कम-से-कम समय और परिश्रम में अधिक काम करने के लिए गृहिणी विशेष कार्य हेतु आवश्यक सामग्री की सूची तयार कर लेती है जिससे आवश्यक सामान सहज ही में उपलब्ध हो जाय। फलतः उसे एक-एक चीज के लिए बार-बार दौड़ना नहीं पड़ता है। उदाहरण के लिए, रसोईघर में भोजन बनाने की सभी आवश्यक चीजें—नमक, मसाला, चिमटा, तेल, बरतन, जल, तोलिया इत्यादि रख लेती है ताकि उसे प्रत्येक सामान को खोजने या लाने में समय और परिश्रम का अपव्यय नहीं हो।

प्रश्न ४. गृहिणी के दैनिक, साप्ताहिक और मासिक कार्यक्रम का वर्णन कीजिए।

उत्तर– समय और प्राथमिकता के विचार से घरेलू कार्यों को करने के लिए निम्नलिखित दैनिक, साप्ताहिक एवं मासिक कार्यक्रम बनाये जा सकते हैं—

दैनिक कार्यक्रम—इसके अन्तर्गत निम्नलिखित कार्य आते हैं—

(i) भोजन बनाना, (ii) घर-द्वार की सफाई करना, (iii) बच्चों एवं परिवार के अन्य सदस्यों की देख-रेख करना, (iv) दैनिक जमा-खर्च लिखना।

साप्ताहिक कार्यक्रम – इसके अन्तर्गत निम्नलिखित कार्य आते हैं—

(i) कपड़ा साफ करना, (ii) कमरे की भारी चीजों—जैसे दरी-कालीन, सोफा-सेट—को हटा कर कमरे को साफ करना, (iii) नाली, मोरी की सफाई करना, (iv) जूते में पालिश लगाना, (v) घर के व्यवहार के लिए सेव-दालमोट, खजूर आदि सूखा नाश्ता बनाना, (vi) फटे कपड़ों की मरम्मत करना, (vii) कमीज, कोट आदि के बटन को बदलना, (viii) फटे कपड़ों की मरम्मत करना एवं (ix) धोबी के लिए मैले कपड़ों को छाँटना।

मासिक कार्यक्रम—इसके अन्तर्गत निम्नलिखित कार्य आते हैं—

(i) मासिक आय-व्यय की जाँच करना, (ii) आगामी माह के लिए बजट बनाना, (iii) महीने भर के खाने-पीने का सामान खरीदना, (iv) कपड़ा-लत्ता खरीदना (v) मौसम के अनुसार चटनी, अँचार डालना तथा बरी, पापड़ आदि तैयार करना।

अध्याय १२

घर के सामान की सुरक्षा और सफाई

प्रश्न १. घर के असबाव, कमरे के फर्श और बरतनों की सुरक्षा और सफाई के लिए गृहिणी के क्या कर्त्तव्य हैं?

उत्तर—घर के असबाब (सामान)—एक सफल गृहिणी अपने घर के

सामान की सुरक्षा और सफाई पर विशेष ध्यान देती है। वह विशेष सामान विशेष स्थान पर रखती है ताकि आवश्यकता पड़ने पर आसानी से मिल जाय। हफ्ते में वह एक बार सभी सामानों की झाड़-पोंछ और सफाई नियमित रूप से करती है।

कमरे के फर्श— एक सफल गृहिणी अपने घर के सभी कमरों की सफाई नित्य करती है। वह प्रतिदिन दोनों शाम (सुबह और अपराह्न काल में) सभी कमरों में झाड़ू देती है ताकि गन्दा न रहे। सप्ताह में एक बार कमरे की भारी चीजों (दरी, कालीन सोफासेट इत्यादि) को हटा कर कमरे को अच्छी तरह साफ करती है तथा फर्श को फेनाइल आदि से साफ करती है।

बरतनों की सुरक्षा और सफाई— इसके लिए आगे प्रश्न-संख्या ३ का उत्तर देखें। (जिस घर में जिस तरह के बरतन उपयोग में आते हैं उनकी सफाई उसी तरह करनी चाहिए।)

प्रश्न २. कपड़ों की देखभाल करने में आप किन-किन बातों पर ध्यान देंगी ?

उत्तर— कपड़ों की देखभाल करने में निम्नलिखित बातों पर ध्यान देना चाहिए।

(i) धोबी के यहाँ भेजने या स्वयं साफ करने के पहले कपड़ों की जाँच स्वयं कर लेनी चाहिए। यदि कपड़ा कहीं फट गया हो तो इसकी मरम्मत कर लेनी चाहिए।

(ii) धुलने जाने के पूर्व कपड़ों पर लगे धब्बों को हटा लेना चाहिए।

(iii) जाड़े का मौसम समाप्त होते ही ऊनी वस्त्रों की सूखी धुलाई द्वारा साफ कर आलमारी या बक्से में बन्द कर रख देना चाहिए। कपड़े की तह में नेप्थलीन की गोली दे कर रखना चाहिए।

(iv) गीले कपड़ों को लोहे के लटकनों में नहीं टाँगना चाहिए।

(v) कपड़ों को ठंढे, सूखे लेकिन हवादार जगह में रखना चाहिए।

(vi) कपड़ों को अधिक गंदा नहीं होने देना चाहिए। अधिक गंदा कपड़ा

जल्दी धुलता नहीं है और न अधिक साफ ही होता है। इसलिए कम मैला होते ही कपड़ों को साफ कर लेना चाहिए।

(vii) छोटे-छोटे कपड़े जैसे रूमाल, तौलिया, तकिया का खोल आदि स्वयं साफ कर लेना चाहिए। छोटे-छोटे कपड़ों में धोबी को बेकार पैसे देने पड़ते हैं। साथ-ही-साथ खोने का भी डर रहता है।

(viii) रंगीन, रेशमी तथा हल्के ऊनी वस्त्र घर में ही साफ कर लेना चाहिए। धोबी इन कपड़ों का रंग खराब कर देता है।

(ix) बक्से में रखे गये कपड़ों को बीच-बीच में धूप दिखा देना चाहिए।

(x) व्यवहार करने के बाद ऊनी कपड़ों को ब्रश से झाड़ते रहना चाहिए।

(xi) नख पर पालिश चढ़ाते समय औरतों को सावधान रहना चाहिए। कपड़ों पर पालिश गिर जाने से कपड़े खराब हो जाते हैं। इसी तरह काजल, टीके के घोल आदि शृंगार की सामग्रियों से कपड़ों को बचाना चाहिए।

(xii) धोबी के यहाँ कपड़े देने के पूर्व उसकी जाँच कर लेनी चाहिए। यदि कमीज, पैंट आदि के बटन टूट गये हों तो दूसरा बटन टाँक लेना चाहिए।

(xiii) उसी तरह धोबी के यहाँ से प्राप्त कपड़ों की भी जाँच कर लेनी चाहिए। अगर उसमें बटन टूट गया है तो लगा लें, अगर कहीं फट गया है तो मरम्मत कर लें।

(xiv) कपड़े पर सेंट नहीं लगाना चाहिए। इसके धब्बे से कपड़े खराब हो जाते हैं।

(xv) गर्म और सूती कपड़ों को अलग-अलग रखना चाहिए।

प्रश्न ३. घरेलू बरतनों के टिकाउपन को ध्यान में रखते हुए आप इसकी दैनिक सफाई कैसे करेंगी ?

उत्तर — दैनिक उपभोग की वस्तुओं में पीतल, काँसे, लोहा, एल्यूमीनियम, चीनी मिट्टी इत्यादि के बरतन हैं। इनकी दैनिक सफाई निम्नलिखित विधियों द्वारा की जा सकती है—

(i) धातुओं के बरतनों की सफाई— भोजन के काम में आनेवाले सभी

सामान की सुरक्षा और सफाई पर विशेष ध्यान देती है। वह विशेष सामान विशेष स्थान पर रखती है ताकि आवश्यकता पड़ने पर आसानी से मिल जाय। हफ्ते में वह एक बार सभी सामानों की झाड़-पोंछ और सफाई नियमित रूप से करती है।

कमरे के फर्श—एक सफल गृहिणी अपने घर के सभी कमरों की सफाई नित्य करती है। वह प्रतिदिन दोनों शाम (सुबह और अपराह्न काल में) सभी कमरों में झाड़ू देती है ताकि गन्दा न रहे। सप्ताह में एक बार कमरे की भारी चीजों (दरी, कालीन सोफासेट इत्यादि) को हटा कर कमरे को अच्छी तरह साफ करती है तथा फर्श को फेनाइल आदि से साफ करती है।

बरतनों की सुरक्षा और सफाई— इसके लिए आगे प्रश्न-संख्या ३ का उत्तर देखें। (जिस घर में जिस तरह के बरतन उपयोग में आते हैं उनकी सफाई उसी तरह करनी चाहिए।)

प्रश्न २. कपड़ों की देखभाल करने में आप किन-किन बातों पर ध्यान देंगी ?

उत्तर—कपड़ों की देखभाल करने में निम्नलिखित बातों पर ध्यान देना चाहिए।

(i) धोबी के यहाँ भेजने या स्वयं साफ करने के पहले कपड़ों की जाँच स्वयं कर लेनी चाहिए। यदि कपड़ा कहीं फट गया हो तो इसकी मरम्मत कर लेनी चाहिए।

(ii) धुलने जाने के पूर्व कपड़ों पर लगे धब्बों को हटा लेना चाहिए।

(iii) जाड़े का मौसम समाप्त होते ही ऊनी वस्त्रों की सूखी धुलाई द्वारा साफ कर आलमारी या बक्से में बन्द कर रख देना चाहिए। कपड़े की तह में नेप्थलीन की गोली दे कर रखना चाहिए।

(iv) गीले कपड़ों को लोहे के लटकनों में नहीं टाँगना चाहिए।

(v) कपड़ों को ठंढे, सूखे लेकिन हवादार जगह में रखना चाहिए।

(vi) कपड़ों को अधिक गंदा नहीं होने देना चाहिए। अधिक गंदा कपड़ा

जल्दी धुलता नहीं है और न अधिक साफ ही होता है। इसलिए कम मैला होते ही कपड़ों को साफ कर लेना चाहिए।

(vii) छोटे-छोटे कपड़े जैसे रूमाल, तौलिया, तकिया का खोल आदि स्वयं साफ कर लेना चाहिए। छोटे-छोटे कपड़ों में धोबी को बेकार पैसे देने पड़ते हैं। साथ-ही-साथ खोने का भी डर रहता है।

(viii) रंगीन, रेशमी तथा हल्के ऊनी वस्त्र घर में ही साफ कर लेना चाहिए। धोबी इन कपड़ों का रंग खराब कर देता है।

(ix) बक्से में रखे गये कपड़ों को बीच-बीच में धूप दिखा देना चाहिए।

(x) व्यवहार करने के बाद ऊनी कपड़ों को ब्रश से झाड़ते रहना चाहिए।

(xi) नख पर पालिश चढ़ाते समय औरतों को सावधान रहना चाहिए। कपड़ों पर पालिश गिर जाने से कपड़े खराब हो जाते हैं। इसी तरह काजल, टीके के घोल आदि शृंगार की सामग्रियों से कपड़ों को बचाना चाहिए।

(xii) धोबी के यहाँ कपड़े देने के पूर्व उसकी जाँच कर लेनी चाहिए। यदि कमीज, पैंट आदि के बटन टूट गये हों तो दूसरा बटन टाँक लेना चाहिए।

(xiii) उसी तरह धोबी के यहाँ से प्राप्त कपड़ों की भी जाँच कर लेनी चाहिए। अगर उसमें बटन टूट गया है तो लगा लें, अगर कहीं फट गया है तो मरम्मत कर लें।

(xiv) कपड़े पर सेंट नहीं लगाना चाहिए। इसके धब्बे से कपड़े खराब हो जाते हैं।

(xv) गर्म और सूती कपड़ों को अलग-अलग रखना चाहिए।

प्रश्न ३. घरेलू बरतनों के टिकाउपन को ध्यान में रखते हुए आप इसकी दैनिक सफाई कैसे करेंगी ?

उत्तर—दैनिक उपभोग की वस्तुओं में पीतल, काँसे, लोहा, एल्यूमीनियम, चीनी मिट्टी इत्यादि के बरतन हैं। इनकी दैनिक सफाई निम्नलिखित विधियों द्वारा की जा सकती है—

(i) धातुओं के बरतनों की सफाई—भोजन के काम में आनेवाले सभी

प्रकार के बरतनों को बारीक राख से साफ करना चाहिए। नीबू का रस लगाकर रगड़ने से बरतनों में चमक आ जाती है। अतः रस निचोड़ लेने के उपरान्त नीबू के बचे हुए भाग से बरतनों को रगड़ने से उन पर के धब्बे मिट जाते हैं तथा उनमें चमक भी आ जाती है। साबुन या सोडा मिश्रित जल से भरे टब में बरतनों को डाल कर रखने से इनकी सफाई शीघ्र हो जाती है। अतः यथासम्भव इसका भी उपयोग किया जा सकता है। धुले हुए बरतनों को सूखे कपड़े से भली-भाँति पोंछ कर या सुखाकर रखना चाहिए।

(ii) एल्यूमीनियम के बरतन—एल्यूमीनियम के बरतनों को साबुन से रगड़कर धोना चाहिए या साबुन मिश्रित गर्म जल में उबाल देना चाहिए। जल में नीबू का रस डालकर इन बरतनों को उबालने से इनकी भीतरी सतह पूरी तरह साफ हो जाती है और उनमें चमक भी आ जाती है। एल्यूमीनियम की केतली को कालिख-युक्त ही रखना चाहिए क्योंकि काली सतह अधिक सुगमता से गर्मी शोषित करती है।

(iii) लोहे के बरतन—लोहे के बरतनों (कड़ाही, तवा, चिमटा आदि) को राख या ईंट के बुरादे में जल मिलाकर पुआल या नारियल के छिलके से रगड़ना चाहिए। ऐसे बरतनों को पुनः साफ जल से धोने के उपरान्त सूखे कपड़े से भली-भाँति पोंछ कर या सुखाकर रखना चाहिए।

(iv) तामचीन के बरतन—तामचीन के बरतनों का व्यवहार खाने के बरतनों के रूप में या भोजन रखने के लिए होता है। ऐसे बरतन साबुन या सोडा मिश्रित जल में सहज ही साफ हो जाते हैं; इनकी चिकनई शीघ्र दूर हो जाती है।

(v) काँसे का बरतन—ताँबे और पीतल के बरतनों की अपेक्षा काँसे के बरतन भोजन पकाने या खाना खाने के लिए विशेष उपयोगी होते हैं। बारीक राख से मलने पर ये शीघ्र साफ हो जाते हैं और इनपर चमक आ जाती है।

(vi) चीनी मिट्टी के बरतन—चीनी मिट्टी के बरतनों में प्याले, छोटी-बड़ी तश्तरियाँ, चायदान, दूध और चीनी के पात्रों इत्यादि का व्यवहार बड़े

और सम्पन्न घरों में होता है। इनकी सफाई सहज ही हो जाती है। साबुन या सोडा मिश्रित गर्म जल द्वारा इनमें लगी हुई चिकनई शीघ्र दूर हो जाती है। चिकनई दूर हो जाने पर इन्हें सूखे कपड़े से भली-भांति पोंछ कर या सुखाकर ही यथास्थान रखना चाहिए।

(vii) **काँच के बरतन** — कांच के घरेलू बरतन में गिलास, जग (Jug), फूलदान, मर्तबान (Jar) आदि प्रमुख हैं। चीनी मिट्टी की तरह ये भी अमोनिया, साबुन या सोडा मिश्रित गर्म जल द्वारा शीघ्र साफ हो जाते हैं। सफाई के क्रम में अपेक्षाकृत कम गन्दे बरतन को अमोनिया या साबुन मिश्रित गर्म जल में पहले डुबाना चाहिए। साबुन मिश्रित जल से निकालने के बाद पुनः शुद्ध स्वच्छ गर्म जल में थोड़ा नील डालकर इन्हें पखार लेना चाहिए। प्याली से चाय या काफी का दाग छुड़ाने के लिए इसमें थोड़ा सिरका डालकर फूलने के लिए छोड़ देना चाहिए। पुनः भींगे कपड़े को नमक के घोल में डालकर रगड़ना चाहिए। साफ बरतन को सूखे कपड़े से पोंछकर और सुखाकर रखना चाहिए।

(viii) **धातु के कीमती बरतन** — सम्पन्न घरों में शृंगार या साधारण दैनिक कामों में चांदी, ताँबा, मीना, पीतल, जर्मन सिल्वर इत्यादि के बरतनों का व्यवहार प्रायः होता है। इन बरतनों में ताँबे और पीतल के बरतनों को ब्रासो (Brasso) द्वारा सहज ही चमकाया जा सकता है। ब्रासो एक प्रकार की पालिश होती है जो बाजार में बन्द डिब्बों में बिकती है।

प्रश्न ४. आइने पर तेल के धब्बे आप कैसे छुड़ायेंगी ?

उत्तर— खिड़की के शीशे, आइने आदि को निम्नलिखित ढंग से साफ करना चाहिए।

(i) शुद्ध गर्म जल से उन्हें साफ करने से उनके धब्बे छूट जाते हैं। धूप में रखकर उन्हें साफ नहीं करना चाहिए।

(ii) पाँच सेर जल में चार बड़ी चम्मच भर तनुकृत अमोनिया डालकर ऐसे जल से साफ करने से धब्बे, मैल आदि शीघ्र घुल जाते हैं। अमोनिया के

अभाव में स्पिरिट मिले जल का व्यवहार करना चाहिए ।

(iii) आजकल बाजार में शीशे के सामानों के साफ करने का बना-बनाया मसाला भी मिलता है । ऐसे द्रव्यों में साफ कपड़े के टुकड़े भिगोकर शीशे की सतह को पोंछ देने से उसका मैल दूर हो जाता है और उसमें चमक आ जाती है ।

अध्याय १३

पारिवारिक आय-व्यय

प्रश्न १. हमारे जीवन की मुख्य आवश्यकताएँ क्या हैं ? संक्षेप में लिखें ।

अथवा, आवश्यकताओं का वर्गीकरण करें । क्या ये वर्गीकरण अटल हैं ?

उत्तर— नीचे दी गयी तालिका से हम आवश्यकता के भेदों को अच्छी तरह समझ सकते हैं—

आवश्यकताएँ

- (i) आवश्यक आवश्यकताएँ
  - (क) जीवन-रक्षक आवश्यकताएँ
  - (ख) निपुणतादायक आवश्यकताएँ
  - (ग) प्रतिष्ठारक्षक आवश्यकताएँ
- (ii) आराम-सम्बन्धी आवश्यकताएँ
- (iii) विलासिता-सम्बन्धी आवश्यकताएँ

आवश्यक आवश्यकताएँ—आवश्यक आवश्यकताएँ हमारे जीवन के लिए नितान्त आवश्यक हैं। इनके बिना हमें दुःख होता है और कभी-कभी इनके अभाव में हमारा जीना मुश्किल हो जाता है। उदाहरणार्थ, अन्न और जल के बिना हम जीवित नहीं रह सकते, इसलिए ये आवश्यक आवश्यकताएँ हुईं।

आवश्यक आवश्यकताओं के तीन उपविभाग कर सकते हैं—(क) जीवनरक्षक आवश्यकताएँ, (ख) निपुणतादायक आवश्यकताएँ, (ग) प्रतिष्ठा-रक्षक आवश्यकताएँ।

(क) जीवनरक्षक आवश्यकताएँ—जीवनरक्षक आवश्यकताएँ वे हैं जिनके बिना हम जीवित नहीं रह सकते। भोजन तथा जल इसी वर्ग में आते हैं।

(ख) निपुणतादायक आवश्यकताएँ—निपुणतादायक आवश्यकताएँ वे हैं जिनके बिना हम जीवित तो रह सकते हैं, पर अपने कार्य को अच्छे ढंग से नहीं कर सकते; जिनके प्रयोग के बिना कार्य करने में कुशलता नहीं प्राप्त होती। चावल-रोटी हमारे जीवन के लिए आवश्यक हैं, किन्तु हमारा स्वास्थ्य अच्छा रह सके और हममें काम करने की क्षमता बनी रहे, इसलिए यह आवश्यक है कि हमें चावल-रोटी के अलावे घी, दूध या फल भी मिले। अतः घी, दूध, फल इत्यादि, जिनकी आवश्यकता कार्यक्षमता बनाये रखने के लिए होती है, निपुणतादायक या निपुणतारक्षक आवश्यकताएँ कहलाती हैं।

(ग) प्रतिष्ठारक्षक आवश्यकताएँ—प्रत्येक मनुष्य समाज में प्रतिष्ठा पाना चाहता है। हर व्यक्ति दूसरों की निगाहों में ऊँचा उठना चाहता है। इसलिए कुछ ऐसा आवश्यकताओं का निर्माण हो जाता है जो न तो हमारे जीवन के लिए ही आवश्यक हैं, न कार्यक्षमता के लिए। इस तरह की आवश्यकताओं को प्रतिष्ठारक्षक आवश्यकताएँ कहते हैं। अपनी प्रतिष्ठा कायम रखने के लिए सामाजिक रस्म-रिवाजों का पालन करना, अतिथि का पूर्ण सत्कार करना, शादी या उपनयन के अवसर पर भोज का आयोजन करना इत्यादि आवश्यक हो जाता है। ऐसा नहीं करने से मानसिक कष्ट होता है। इसलिए ये प्रतिष्ठारक्षक आवश्यकताएँ हुईं।

(ii) आराम-सम्बन्धी आवश्यकताएँ—आराम-सम्बन्धी आवश्यकताएँ वे हैं जिनके बिना हम जीवित तो रह सकते हैं, पर काम करने की शक्ति बढ़ाने के लिए तथा जीवन को सुख और आराम से बिताने के लिए उनका सन्तुष्ट किया जाना आवश्यक है। जूते के बिना हम मर नहीं सकते, पर जूता रहने से हमें आराम होता है। अगर घर से हमारा स्कूल दूर है और हमारे पास साइकिल नहीं है तो हम पैदल भी जा सकते हैं। पर, साइकिल रहने से हमें अधिक आराम होता है। इसलिए ये वस्तुएँ आराम-सम्बन्धी आवश्यकताओं में आ जाती हैं। इस तरह की आवश्यकताएँ जीवन-रक्षक आवश्यकताओं के बाद आती हैं। इनकी पूर्त्ति न होने से कुछ तकलीफ होती है।

(iii) विलासिता-सम्बन्धी आवश्यकताएँ (Luxuries)—विलासिता-सम्बन्धी आवश्यकताओं में हम उन वस्तुओं को रखते हैं जिनका उपभोग न तो जीवन के लिए आवश्यक है, न कार्यक्षमता के लिए। वे वस्तुएं केवल आमोद-प्रमोद के लिए होती हैं। यथार्थ में इन आवश्यकताओं से मानसिक लिप्साओं की तृप्ति होती है। ये हमारे लिए एक प्रकार से अनावश्यक होती हैं। विलासिता-सम्बन्धी आवश्यकताओं को दो भागों में विभक्त किया जा सकता है—हानिकारक तथा हानिरहित।

शराब आदि का उपभोग हानिकारक विलासिता-सम्बन्धी आवश्यकताओं के एवं कीमती वस्त्र, आभूषण तथा दिखावे की अन्य वस्तुओं का उपभोग हानिरहित विलासिता-सम्बन्धी आवश्यकताओं के अन्तर्गत आते हैं।

यद्यपि आवश्यकताओं को तीन वर्गों में बांटा गया है पर यह वर्गीकरण सापेक्ष है। एक ही वस्तु एक व्यक्ति के लिए आवश्यक वस्तु हो सकती है, दूसरे के लिए आराम की वस्तु हो सकती है और तीसरे के लिए विलास की वस्तु। उदाहरण के लिए, एक मोटरकार एक क्लर्क या एक विद्यार्थी के लिए विलास की वस्तु है, एक यूनिवर्सिटी के प्रोफेसर के लिए आराम की वस्तु और एक दूर-दूर तक के मरीजों को देखने वाले व्यस्त डाक्टर या एक दूर-दूर तक सड़क की देखभाल करने वाले इंजीनियर, या एक राजमन्त्री के लिए आवश्यक वस्तु। लेकिन यही डाक्टर यदि अपने अस्पताल को बढ़ा ले और

यह तय कर ले कि मरीजों को अस्पताल में ही देखेगा, न कि उनके घर जा कर, तो ऐसी दशा में यह कार इस डाक्टर के लिए भी आवश्यक वस्तु न रहेगी। इसी प्रकार यह आवश्यकताएँ स्थान, आदत तथा समय के प्रति भी सापेक्ष हैं।

प्रश्न २. पारिवारिक बजट क्या है? इससे क्या लाभ है?

उत्तर—पारिवारिक बजट क्या है?— किसी भी निश्चित समय में किसी परिवार की आमदनी एवं खर्च की भिन्न-भिन्न मदों के विवरण को उसका पारिवारिक बजट कहते हैं। इससे यह पता चलता है कि उस परिवार की मासिक या वार्षिक आय कितनी है, उस परिवार में कितने व्यक्ति हैं, उनका रहन-सहन क्या है तथा वह कुछ बचाता है या ऋणग्रस्त है।

पारिवारिक बजट से लाभ— बजट बना लेने से आय के अनुसार व्यय होता है। बजट के अभाव में बहुधा ऐसा होता है कि आमदनी का अधिकांश भाग विलासिता या अनावश्यक आवश्यकताओं में खर्च हो जाता है और जरूरत पड़ने पर या आवश्यक वस्तुओं के लिए पैसे बच नहीं पाते। अर्थात्, आय से अधिक व्यय हो जाता है।

जो व्यक्ति अपने परिवार का बजट रखता है उसको अपने आय-व्यय का पता रहता है। वह अपने व्यय पर नियंत्रण रख सकता है और फिजूल-खर्ची से बच सकता है।

प्रश्न ३. गृहिणी अपने परिवार की मुख्य आवश्यकताओं की पूर्त्ति करते हुए भी घर के खर्च में किस प्रकार कमी कर सकती है? संक्षेप में लिखें।

उत्तर— मितव्ययी गृहिणी परिवार की आय का निम्नरूप से सदुपयोग करती है और इस तरह आवश्यकताओं की पूर्त्ति करते हुए भी घर के खर्च में कमी करती है—

(i) वह भोजन की मद में कटौती नहीं करती है, बल्कि विलासिता में खर्च होने वाली रकम को घटा देती है।

(ii) भड़कीले एवं कीमती वस्त्रों के बदले वह साधारण और टिकाऊ कपड़े खरीदती है।

(iii) उसके परिवार के लोगों के वस्त्र-संख्या अधिक नहीं होते।

(iv) प्रत्येक महीने के आरम्भ में वह महीने भर का सामान नकद खरीद लेती है। नकद सामान खरीदने से खर्च कुछ कम लगता है। साथ ही, एक बार सामान मँगा लेने से मजदूरी और समय दोनों की बचत होती है।

(v) प्रत्येक चीज अपने मौसम में सस्ती मिलती है। अतः धन रहने पर चतुर गृहिणी समय पर चावल, गेहूँ, चना, अरहर आदि अनाज पूरे साल के लिए खरीद लेती है। उसी प्रकार धनियाँ, हल्दी, मिर्चा आदि भी वह फसल के समय ही खरीद लेती है।

(vi) जाड़े के मौसम में गोभी, मेथी, आलू आदि सस्ते मिलते हैं। चतुर गृहिणी उन्हें सुखाकर रख लेती है और जब ये सब्जियाँ महँगी बिकती हैं तो उस समय सूखी सब्जियों का व्यवहार करती है।

(vii) मौसम में आम, अमरूद, टमाटर आदि चीजें सस्ती हो जाती हैं। मितव्ययी गृहिणी इन वस्तुओं का अँचार, जैम, जेला आदि बनाकर रख छोड़ती है और समय आने पर उसका उपभोग करती है।

(viii) मितव्ययी गृहिणी उधार सौदा कभी नहीं खरीदती। ऐसी चीजें महँगी पड़ती हैं।

(ix) सुघड़ गृहिणी दिखावे के लिए आय से अधिक व्यय नहीं करती।

(x) सुघड़ गृहिणी घर का तथाकथित बेकार चीजों का भी पूर्ण उपभोग करती है। उदाहरण के लिए लकड़ी के टुकड़े, मूँगफली के छिलके, कोयले का चूरा इत्यादि का इंधन के रूप में व्यवहार करती है। उसी तरह रंगीन फटे कपड़ों का छोटे-छोटे परदे में, फटी चादर का झाड़न आदि में, फटे स्वेटर का मोजे आदि में व्यवहार कर इनका सदुपयोग करती है। इस तरह परिवार की आमदनी में बचत हो जाती है।

प्रश्न ४. एक परिवार जिसकी मासिक आय ६०० रु० है, जिसमें पति-पत्नी, तीन स्कूलगामी बच्चे एवं आश्रित पिता-माता हैं, के लिए मासिक बजट बनावें।

उत्तर—मासिक आय— ६०० रु०, परिवार के सदस्य—पति-पत्नी, आश्रित पिता-माता, तीन स्कूलगामी बच्चे।

		रु० पै०
१. भोजन—चावल, गेहूँ, दाल—अरहर, ,, मूँग, ,, उरद, ,, चना	....	१५०·००
साग-सब्जी	....	४०·००
फल	....	१५·००
घी	....	२०·००
चीनी	....	१५·००
चाय	....	५·००
दूध	....	३०·००
तेल	....	१०·००
मसाला, नमक आदि	....	१०·००
ईंधन	....	१५·००
रोशनी (बिजली का बिल)	....	२०·००
२. आवास—मकान-किराया	....	६५·००
३. वस्त्र— वस्त्र, जूता, छाता इत्यादि	....	४०·००

४. शिक्षा— स्कूल-फीस, किताब, पेन्सिल इत्यादि	....	३५·००
५. स्वास्थ्य—दवा-डाक्टर का बिल	....	२०·००
६. आमोद-प्रमोद	....	१५·००
७. पर्व-त्योहार	....	२०·००
८. अन्यान्य	....	३०·००
९. आयकर	....	१०.००
१०. जीवन-बीमा	....	२०·००
११. बचत	....	१५·००
	टोटल	६००·००

अध्याय १४

शिशुओं की देख-रेख

प्रश्न १. माता के दूध की क्या विशेषताएँ हैं ? बच्चे के लिए माता का दूध ही सर्वोत्तम आहार है। क्यों ?

उत्तर—माँ का दूध ही अपने बच्चे के लिए सर्वोत्तम प्राकृतिक भोजन है। इसके निम्नलिखित कारण हैं—

(i) प्रकृति ने मानव-दूध को बच्चों के लिए ही बनाया है। बच्चों की शारीरिक एवं मानसिक अवस्थाओं को ध्यान में रखकर ही प्रकृति ने इसका सृजन किया है।

(ii) इसमें प्रोटीन, शर्करा, वसा, विटामिन, जल आदि भोजन के सभी पौष्टिक तत्त्व उपयुक्त परिमाण में रहते हैं। इससे बच्चों की वृद्धि स्वाभाविक रूप से होती है।

(iii) इसका तापक्रम जैविक विचार से पाचन के अनुकूल होता है।

(iv) माता के स्तन से निकलकर सीधे यह बच्चे के मुँह में चला जाता है। इससे किसी प्रकार के रोगजनक जीवाणुओं से इसका सम्पर्क नहीं होता और यह रोगरहित होता है।

(v) यह बालक की रोग-निवारण-क्षमता बढ़ाता है। यह ऊपरी दूध से सभव नहीं है।

(vi) माता के स्तनों में दूध उतरने के पूर्व उसमें से थोड़ा-थोड़ा गाढ़ा तरल पदार्थ निकलता है। इससे बच्चे की पाचनशक्ति बढ़ती है और पेट का मैल साफ होता है।

(vii) बोतल द्वारा कृत्रिम या गाय, भैंस आदि का दूध पिलाते समय दूषित वातावरण, गन्दे हाथ, मक्खियाँ आदि के कारण दूध खराब हो जाता है। इससे बालक का हाजमा बिगड़ जाता है। माँ का दूध पिलाते समय इसका डर नहीं रहता।

अतः बच्चे के लिए माता का दूध ही सर्वोत्तम आहार है।

प्रश्न २. बोतल द्वारा दूध पिलाते समय किन-किन बातों पर ध्यान देना चाहिए?

उत्तर—बोतल द्वारा दूध पिलाते समय निम्नांकित बातों पर ध्यान देना चाहिए।

(i) दूध का तापक्रम शरीर के तापक्रम के लगभग हो—गर्म दूध को शरीर के तापक्रम तक ठंढा करने के बाद ही बोतल में भर देना चाहिए। बोतल को साफ तौलिये से लपेटकर रखना चाहिए ताकि इसका तापक्रम बना रहे। बोतल को गाल से सटाकर देखें कि यह सह्य है या नहीं। अगर सह्य हो तो समझें कि दूध पिलाने के लायक है।

(ii) दूध पिलानेवाली बोतल साफ हो—दूध पिलाना समाप्त होते ही बोतल, चूचुक और वाल्व को शुद्ध एवं साधारण गर्म जल से धोकर रख देना चाहिए। फिर पिलाने के लिए दूध भरने के पहले भी इसे साफ कर लेना

चाहिए। बिना साफ किये हुए बोतल रहने से उसपर धूल बैठ जाती है और मक्खियाँ बैठकर उसे दूषित कर देती हैं। बोतल, उसका चूचुक तथा वाल्व, चम्मच, तौलिया और दूध रखने का बरतन साफ-सुथरा रहना चाहिए।

(iii) रबर का चूचुक और पीछे का वाल्व उपयुक्त हो—ऐसा देखा जाता है कि रबर के चूचुक के छिद्र के अधिक बारीक रहने से बच्चे को दूध खींचने में परेशानी होती है, इसी तरह छिद्र के बड़े रहने से अधिक दूध उसके मुँह में आ जाता है, जिससे वह बेचैन हो जाता है। अतएव चूचुक के छिद्रों पर ध्यान देना जरूरी है। उसके छिद्र इतने बड़े हों कि दूध से भरी बोतल को उलटने से साधारणतः एक बूँद प्रति सेकेण्ड की रफ्तार से दूध टपके। कभी-कभी वाल्व में भी छिद्र हो जाता है। इससे दूध जहाँ-तहाँ टपकने लगता है। अतः उसपर भी ध्यान देना चाहिए। अगर वाल्व में छिद्र नजर आवे तो उसे बदल देना चाहिए।

प्रश्न ३. बोतल द्वारा दूध पिलाने के समय किन-किन बातों पर ध्यान देना चाहिए ?

उत्तर—बोतल द्वारा दूध पिलाते समय निम्नलिखित बातों पर ध्यान देना चाहिए—

(i) दूध पिलाना आरम्भ करने के पहले बच्चे को गोद में लेकर सीने से उसी प्रकार सटा लेना चाहिए जैसा स्वाभाविक रूप से माता स्तन से बच्चों को पिलाते समय करती है।

(ii) बच्चे को पलंग या खाट पर लेटाकर दूध नहीं पिलाना चाहिए।

(iii) बोतल को इस प्रकार झुकाकर रखना चाहिए कि उसका गला दूध से हमेशा भरा रहे। ऐसा नहीं करने से दूध चूसते समय कुछ वायु बच्चे के पेट में चली जाती है जिससे उसके पेट में पीड़ा होने लगती है।

(iv) बीच-बीच में थोड़ी देर के लिए चूचुक को बालक के मुँह से निकाल लेना चाहिए। ऐसा करने से बच्चा दूध पीने की ओर अधिक आकृष्ट होता है।

(v) दूध पीते हुए पूरी बोतल को खाली करने में बच्चे को कम-से-कम

पन्द्रह मिनट जरूर लगना चाहिए। दूध पिलाने में हड़बड़ी करने से बच्चे की पाचनशक्ति बिगड़ जाती है।

(vi) बोतल से दूध पिलाते समय माता को बच्चे के मुँह में चूचुक लगाकर कहीं अन्यत्र नहीं चला जाना चाहिए। ऐसा करने से बच्चे के हाथ से बोतल गिरकर टूट जा सकती है और गर्म दूध से बच्चों का चमड़ा जल जा सकता है। अतः दूध पीते समय बच्चे को अकेला नहीं छोड़ना चाहिए।

प्रश्न ४. बच्चे के लिए दूध पिलाने के समय में अन्तर किस प्रकार का रहना चाहिए?

उत्तर— दूध पिलाने का अन्तराल नवजात शिशु के स्वास्थ्य, शरीर-भार, उसके दूध पीने की क्षमता, आदत इत्यादि पर निर्भर है। इसके सम्बन्ध में लोगों में काफी मतभेद है। कुछ लोगों का विचार है कि जब बच्चा रोये तो दूध पिला देना चाहिए। पर, डाक्टरों का यह विचार है कि औसत दर्जे के वजन के नवजात शिशु को चार-चार और साधारण कमजोर बच्चों को तीन-तीन घण्टों के बाद स्तनपान कराना चाहिए।

शिशु की उम्र और दूध पिलाने की संख्या से दूध-पान की सारणी निम्नलिखित है—

दूध-पान	प्रतिदिन ६ बार दूध-पान	प्रतिदिन पाँच बार दूध-पान
पहला दूध-पान	६ बजे सवेरे	६ बजे सवेरे
दूसरा दूध-पान	९ बजे सवेरे	१० बजे सवेरे
तीसरा दूध-पान	१२ बजे दिन	२ बजे दिन
चौथा दूध-पान	३ बजे दिन	६ बजे शाम
पाँचवाँ दूध-पान	६ बजे शाम	१० बजे रात
छठा दूध-पान	९ बजे रात	—

साधारणतः बच्चा जाड़े में देर से और गर्मी में सबेरे जग जाता है। अतः इसी के अनुरूप समय में परिवर्त्तन किया जा सकता है, पर अन्तराल में फर्क नहीं करना चाहिए।

प्रश्न ५. बच्चे के मिश्रित आहार से क्या समझती हैं? मिश्रित आहार का आरम्भ कैसे करेंगी?

उत्तर— मिश्रित आहार क्या है?—माता का दूध बच्चे के लिए स्वाभाविक और सर्वोत्तम आहार है। पर माता को सालोंभर एक-सा दूध नहीं होता और न बच्चा ही वर्षों तक माता का दूध पीना चाहता है। अतएव बच्चे की उम्र छ-सात मास की होते ही स्तन से दूध पिलाते रहते हुए भी माता कुछ अन्य ठोस सुपच चीजें बच्चों को खिलाती हैं। इनमें लपसी, हलुआ, फिरनी, अण्डे का जर्दी, कार्नफ्लोर, बिस्कुट आदि प्रमुख हैं। सुविधा के अनुसार स्तन-पान के साथ-साथ ये चीजें बच्चों को दी जाती हैं और इसे ही मिश्रित आहार कहते हैं।

मिश्रित आहार का आरम्भ— मिश्रित आहार का आरम्भ धीरे-धीरे सुविधानुसार करना चाहिए। इसमें बच्चे की अभिरुचि का ख्याल रखना अत्यावश्यक है। दूध के अलावा जो भी चीजें बच्चे को खाने के लिए दी जायँ वे कोमल एवं अर्द्ध-तरल रूप में हों। जो चीजें बच्चे को खिलानी हों उन्हें खिलाने के पहले चटा देना चाहिए ताकि उनके स्वाद से बच्चा परिचित हो जाय। स्वभावतः बच्चा दूध को छोड़कर अन्य ठोस पदार्थ खाना पसन्द नहीं करता। इसलिए उसके मुँह में दूध के अतिरिक्त अन्य चीजों को देते ही वह खाने से इनकार कर देता है और उसे थूक देता है। पर लगातार प्रयत्न करने पर ऐसा नहीं करता। अतः इसमें काफी परिश्रम और धैर्य से काम लेना चाहिए।

मिश्रित आहार के अनुकूल अवसर के चुनाव पर भी ध्यान देना चाहिए। लगभग छ-सात महीने की उम्र में इसका आरम्भ करना चाहिए। शायद इसी

तथ्य को दृष्टिकोण में, रखकर हमलोगों के यहाँ छः महीने पर बच्चों की 'मुँह-जुट्ठी' की जाती है।

प्रश्न ६. चार, पाँच और छः महीने के बच्चे के लिए मिश्रित आहार का विवरण दीजिए।

उत्तर—

(i) चार महीने के बच्चे के लिए—

६ बजे सुबह—स्तन-पान या बोतल द्वारा दुग्ध-पान करावें।

१० ,, ,, —एक चम्मच लपसी के बाद स्तन-पान करावें या ऊपरी दूध दें।

२ ,, दिन—एक चम्मच तरकारी या हड्डी के शोरवे के साथ स्तन-पान करावें या ऊपरी दूध दें।

६ बजे शाम—एक चम्मच लपसी या फिरनी और उसके बाद स्तन-पान या ऊपरी दुग्ध-पान करावें।

१० बजे रात—स्तन-पान करावें या ऊपरी दूध दें।

(ii) पाँच महीने के बच्चे के लिए—

६ बजे सवेरे—स्तन-पान करावें या पर्याप्त ऊपरी दूध दें।

१० बजे सवेरे—एक या दो चम्मच तरकारी या हड्डी का शोरवा, एक-दो चम्मच लपसी या फिरनी और थोड़ा स्तन-पान करावें या ऊपरी दूध (४ औंस) दें।

२ बजे दिन—ऊपर लिखी चीजों में हेर-फेर करके तथा उबाला आलू, शकरकन्द, केला इत्यादि और उसके बाद हल्का स्तन-पान करावें या करीब चार औंस ऊपरी दूध दें।

६ बजे शाम—उपर्युक्त चीजों में हेर-फेर करके हल्का स्तन-पान करावें या चार औंस ऊपरी दूध दें।

१० बजे रात—स्तन-पान करावें या बोतल द्वारा ऊपरी दूध दें।

(iii) छः महीने के बच्चे के लिए—

६ बजे सवेरे—पूर्णरूप से स्तन-पान करावें या पर्याप्त मात्रा में ऊपरी दूध दें।

१० बजे दिन—तीन-चार चम्मच तरकारी, लपसी, फिरनी, सेवई, अण्डे की जर्दी इत्यादि और उबली हुई तरकारी दें।

२ बजे दिन—उपर्युक्त चीजों में हेर-फेर करके अधिक मात्रा में कड़ा बिस्कुट या मक्खनयुक्त टोस्ट (कड़ी की हुई पाव-रोटी) के कुछ टुकड़े, पनीर (Cheese), मछली का भुरता इत्यादि दें।

६ बजे शाम—कुरकुरी रोटी, विस्कुट और मक्खन, जैम इत्यादि द।

१० बजे रात—पूर्णरूप से स्तन-पान करावें या पर्याप्त मात्रा में ऊपरी दूध दें।

उपलब्धता, मौसम या साधन के अनुरूप दस बजे दिन, दोपहर या शाम के भोजन में हेर-फेर कर सकते हैं। इसके अतिरिक्त प्रत्येक बार एक-दो चम्मच या उससे अधिक उबाला हुआ ठंढा जल और संतरे का रस दें।

प्रश्न ७. बच्चों के कपड़े बनवाने में किन-किन बातों पर ध्यान देना चाहिए ?

उत्तर—बच्चों के कपड़े बनवाने में निम्नलिखित बातों पर ध्यान देना चाहिए।

(i) बच्चों का कपड़ा मौसम के विचार से बनवाना चाहिए।

(ii) बच्चे तेज रफ्तार से बढ़ते हैं। एक साल का कपड़ा दूसरे साल बेकार चला जाता है। इसलिए उनके कपड़े महँगे न हों, इसपर ध्यान रखना चाहिए।

(iii) बच्चों का चमड़ा मुलायम होता है। इसलिए उन्हें मुलायम वस्त्र ही पहनाना चाहिए।

(iv) गर्मी में मुलायम सूती वस्त्र तथा जाड़े में हल्का ऊनी वस्त्र बनवाना चाहिए।

(v) बचपन से ही लंगोटी, जाँघिया, कलोट इत्यादि पहनाये रखने की आदत डालनी चाहिए।

(vi) बच्चों के व्यवहार में आनेवाले कपड़े साफ-सुथरे हों तथा उन्हें प्रत्येक दिन साबुन से साफ कर देना चाहिए।

(vii) बचपन में बच्चों के मुँह से अधिक लार टपकती है। इसलिए दूध पीते या खाते समय उनके गले में एक रालदानी बाँध देनी चाहिए।

(viii) सोते समय या खेलते समय बच्चों के वस्त्र ढीले-हल्के और ऊँचे होने चाहिए।

प्रश्न ८. बच्चों को जल-स्नान कराते समय किन-किन बातों पर ध्यान देंगी?

उत्तर— बच्चों को स्नान कराते समय निम्नलिखित बातों पर ध्यान देना चाहिए—

(i) जिस खुले स्थान पर हवा झोंके से चल रही हो, वहाँ बच्चों को स्नान नहीं कराना चाहिए।

(ii) स्नान करने का पानी साधारण गर्म (जाड़े में) हो। किसी भी स्थिति में इसका तापक्रम शरीर के तापक्रम से अधिक न हो।

(iii) बच्चों के शरीर को पोंछने का तौलिया साफ रहना चाहिए। अन्य व्यक्ति इसका व्यवहार न करें।

(iv) बच्चों के शरीर में लगानेवाला साबुन उत्तमकोटि का हो।

(v) नहलाते समय यह ध्यान रहे कि बच्चे की आँख में साबुन का पानी न चला जाय।

(vi) बच्चे की जाँघ, काँख, गले आदि में प्रायः मैल जमा रहता है। अतः इन अंगों में एकत्र मैल निकाल देना चाहिए।

(vii) नहलाने के पूर्व माँ या धाई को अपने हाथों को साबुन से साफ कर लेना चाहिए।

(viii) नहलाने के बाद साफ और सूखे तौलिये से बच्चे के शरीर को पोंछ देना चाहिए।

(ix) नहलाने के बाद शरीर को पोंछकर उसमें सावधानीपूर्वक पाउडर लगाने के बाद धुला हुआ कपड़ा पहना देना चाहिए।

प्रश्न ९. नवजात शिशु की देखभाल करते समय किन-किन बातों का ध्यान रखना चाहिए ?

उत्तर— शिशु-पालन या नवजात शिशु की देखभाल एक कला है। प्रत्येक स्त्री को इससे अवगत होना आवश्यक है। नवजात शिशु की देखभाल करते समय निम्नलिखित बातों पर ध्यान देना चाहिए—

(i) प्रत्येक नवजात शिशु के लिए अपनी माता का दूध ही सर्वोत्तम आहार होता है। प्रसूति होने के बाद दो-तीन दिनों के बाद ही माता के स्तनों में दूध उतर आता है। इसके पहले थोड़ा-थोड़ा तरल पदार्थ माता के स्तनों से निकलता है। यह शिशु के लिए अधिक उपयोगी है। इससे उसकी पाचनशक्ति बढ़ती है। इसलिए प्रति ६ घण्टे के बाद उसे यह पदार्थ चुसा देना चाहिए।

(ii) दूध उतरने पर स्तन बड़े और सुपुष्ट होकर उभर आते हैं। अबतक शिशु की भूख भी बढ़ जाती है। अतः प्रत्येक चार घण्टे की अवधि पर उसे दूध पिलाना चाहिए। यथासंभव ११ बजे रात के बाद बच्चे को दूध नहीं पिलाना चाहिए।

(iii) जब भी बच्चा रोता है तो माँ उसके मुँह में चूचुक लगा देती है। ऐसा करना उचित नहीं है। ऐसा करने से बच्चे की पाचनशक्ति बिगड़ जाती है।

(iv) आजकल की फैशनपरस्त एवं तथाकथित शिक्षित माताएँ भ्रमवश अपने बच्चों को स्तन-पान नहीं कराना चाहतीं। संभवतः उन्हें भय होता है कि स्तन-पान कराने से स्तन लटक जाते हैं। पर यह बात पूर्णतया सत्य नहीं

है। स्तन-पान से माता और शिशु दोनों को शारीरिक आनन्द और मानसिक तृप्ति होती है। अतः बच्चों के स्वास्थ्य और तृप्ति को ध्यान में रखते हुए प्रत्येक माता को अपने प्यारे बच्चे को तब तक स्तन-पान कराना चाहिए जब तक दूध छुड़ाने का समय न आ जाय।

(v) नियमित रूप से ही शिशु को दुग्ध-पान कराना चाहिए। पहला दूध सबेरे के ६ बजे से आरम्भ करते हुए बादवाले १० बजे, २ बजे, ६ बजे शाम और अन्तिम दूध-पान १० बजे रात में कराना चाहिए। मौसम के अनुसार समय में अन्तर करने से कोई हानि नहीं होती है। लेकिन दस या ग्यारह बजे रात के अन्तिम दूध-पान के बाद पुनः दूध पिलाना स्वास्थ्य के लिए हितकर नहीं है।

(vi) स्तन-पान-विधि की भी जानकारी प्रत्येक माता को होनी चाहिए।

(vii) नवजात शिशु के लिए माता के दूध से बढ़कर अन्य कोई पौष्टिक आहार नहीं है। इसके लिए दूध-सृजक स्तनों की विशेष देखरेख करनी चाहिए। चूचुक की सफाई पर विशेष ध्यान देना चाहिए।

(viii) दूध पिलाने के नियमित समयों के बीच-बीच में पहले से उबाले जल को शरीरोष्ण करके दिन में कई बार और विशेषकर गर्मी के मौसम में चम्मच द्वारा पिलाना चाहिए।

(ix) अगर ऊपरी दूध पिलाने की आवश्यकता हो तो उसकी सफाई पर विशेष ध्यान देना चाहिए एवं उसमें यथोचित मात्रा में जल, शक्कर, कॉड मछली के लीवर का तेल इत्यादि मिलाकर नियमानुकूल पिलाना चाहिए।

(x) शिशुओं को ऊपरी दूध पिलाने की भी उपयुक्त विधि है। बच्चा माँ के शरीर का स्पर्श कर आनन्दित होता है और उसकी गोद में अपने को सुरक्षित समझता है। अतः दूध पिलाना आरम्भ करने के पहले बच्चे को गोद में लेकर सीने से उसी प्रकार सटा लेना चाहिए जैसा स्वाभाविक रूप से माता स्तन से बच्चों को पिलाते समय करती है।

(xi) बच्चे की आवश्यकता और अपने स्वास्थ्य को ध्यान में रखकर पूर्णरूप से स्तन-पान छुड़ाने का प्रबन्ध समय से पूर्व ही आरम्भ करना चाहिए। इस हेतु बच्चे की उम्र पाँच-छः मास की होते ही या इसके पहले ही मिश्रित आहार बच्चों को खिलाना चाहिए।

(xii) बच्चे के स्तन-पान की आदत छुड़ाना अनुक्रम में तथा इतना धीरे-धीरे होना चाहिए कि बच्चे को भी इसका पता नहीं लग सके।

(xiii) बच्चे की समुचित शारीरिक और मानसिक वृद्धि के लिए पर्याप्त परिमाण में गाढ़ी नींद की भी आवश्यकता होती है। अतः बच्चे को शान्तिपूर्वक सोने के लिए आरामदेह बिस्तर और शान्त वातावरण का प्रबंध करना चाहिए।

(xiv) प्रतिदिन कई बार बच्चों के शरीर में सरसों, तिल या जैतून आदि का तेल या मक्खन लगाकर मालिश करना चाहिए।

(xv) प्रत्येक बच्चे को सबेरे या जाड़े के मौसम में अन्य समय भी कुछ समय तक हल्की धूप में रखना चाहिए। धूप में रखते समय यह ध्यान रखना चाहिए कि बच्चे का सिर छाया में हो। ग्रीष्म-ऋतु में धूप तेज रहने पर बच्चे को पेड़ों की छाया में मुक्त वायु में रखना चाहिए।

(xvi) बच्चे को प्रतिदिन एक बार स्नान कराकर उसका कपड़ा बदल देना चाहिए।

(xvii) बच्चों के कपड़े की सफाई पर भी विशेष ध्यान देना चाहिए।

(xviii) बच्चों को स्वस्थ रखने के लिए कुछ ऐसे स्वास्थ्य-सम्बन्धी नियम हैं जिनकी जानकारी प्रत्येक माता को रहनी चाहिए। बच्चों के साधारण रोगों में सर्दी-खाँसी, अजीर्ण, न्यूमोनिया, कब्ज, उदरशूल, दस्त इत्यादि प्रमुख हैं। प्रत्येक माता को इन रोगों के लक्षण और उपचार का ज्ञान रखना चाहिए।

अध्याय १५

बच्चों के साधारण रोग

प्रश्न १. बच्चों को सर्दी-खाँसी क्यों होती है ? इसके क्या लक्षण हैं ? सर्दी होने पर आप क्या चिकित्सा करेंगी ?

उत्तर— बच्चों के सामान्य रोगों में सर्दी-खाँसी अधिक प्रमुख है । साधारण सर्दी एक छुतहा रोग है । एक से दूसरे में यह शीघ्र फैल जाता है । इसमें अधिक सावधानी की आवश्यकता है, अन्यथा थोड़ी-सी असावधानी के कारण सर्दी-खाँसी भी निमोनिया, ब्रांकाइटिस आदि का रूप धारण कर लेती हैं ।

कारण-- (i) साधारणतः जाड़े के मौसम में अधिक देर तक नंगे बदन रहने से, (ii) ठंढी हवा में खेलने से, (iii) गर्म वातावरण से एकाएक ठंढे वातावरण में आने से और (iv) सर्दी लगे हुए बालकों के सम्पर्क में आने से ही बच्चे को सर्दी-जुकाम हो सकता है ।

लक्षण— (i) बच्चे की नाक से पानी बहना ।

(ii) बार-बार छींक आना ।

(iii) शरीर का तापक्रम बढ़ना ।

(iv) बच्चे का सुस्त पड़ना ।

(v) भूख मंद होना तथा पाचनशक्ति कमजोर होना ।

(vi) पतला दस्त होना तथा पेट में दर्द होना ।

चिकित्सा— (i) सर्दी-जुकाम से ग्रस्त बच्चे को अन्य बच्चों से अलग रखें ।

(ii) मुँह पर रूमाल रखकर छींकने या खाँसने की आदत डालें ।

(iii) बच्चे को बिस्तरे पर लेटा ही रहने दें ।

(iv) जाड़े के मौसम में उसके शरीर को कपड़े से ढँककर गर्म रखें ।

(v) सुयोग्य डाक्टरों से चिकित्सा के सम्बन्ध में सलाह लें।

प्रश्न २. खाँसी के कारण, लक्षण और चिकित्सा पर प्रकाश डालें।

उत्तर—कारण—श्वासमार्ग में सूजन हो जाने के कारण कफ या अन्य कोई रुकावट आने से खाँसी आने लगती है। खाँसी आने से बलगम या रुकी हुई चीज निकल जाती है और श्वास-मार्ग साफ हो जाता है। फलतः खाँसी बन्द हो जाती है।

लक्षण—अगर कभी-कभी खाँसी आती हो तो चिन्ता की बात नहीं होती। पर अगर सर्दी-जुकाम हो या दाँत निकलते हों और ऐसे समय में बार-बार खाँसी आती हो तो अधिक सावधानी की जरूरत होती है। थोड़ी-सी असावधानी से पीछे अधिक परेशानी हो जाती है।

चिकित्सा—(i) साधारण हल्की खाँसी में निम्नलिखित दवा दें—मधु २ चम्मच, ग्लीसरीन $\frac{1}{2}$ चम्मच, संतरे का रस ६ चम्मच, नीबू का रस ६ चम्मच। इन सभी को मिला दें और मिश्रण को किसी साफ शीशे में रख लें। आवश्यकतानुसार आधा या एक चम्मच दिन में चार-पाँच बार पिलायें।

(ii) सर्दी-जुकाम या अन्य किसी कारण से खाँसी होने पर सुयोग्य डाक्टर से सलाह लेनी चाहिए।

प्रश्न ३. ब्रांकोन्यूमोनिया के क्या लक्षण हैं? इसकी चिकित्सा आप किस प्रकार करेंगी?

उत्तर—ब्रांकोन्यूमोनिया एक बहुत ही भयानक रोग है। साधारण बोल-चाल में इसे हब्बा-डब्बा, पसली का चलना आदि कहते हैं।

लक्षण—(i) जोर की सूखी खाँसी होने लगती है।

(ii) साँस लेने में कष्ट होता है।

(iii) शरीर का तापक्रम बढ़ जाता है।

(iv) साँस लेने में जोर लगाना पड़ता है।

(v) फेफड़े में घरघराहट की आवाज सुनाई पड़ता है।

चिकित्सा—(i) बच्चे को किसी गर्म, ह[illegible]र कमरे में आराम से लेटा दें तथा डाक्टर को खबर देकर बुलवा लें।

(ii) सुलाते समय रोगी का सिर वायु के झोंके के मार्ग में न हो, इसपर ध्यान रहे।

(iii) रोगी को हल्का तरल भोजन दूध, फल का रस इत्यादि पर्याप्त मात्रा में दें।

(iv) शरीर-उष्ण जल पीने के लिए दें।

प्रश्न ४. न्यूमोनिया होने के कारण, लक्षण एवं चिकित्सा पर संक्षेप में प्रकाश डालें।

उत्तर— कारण – न्यूमोनिया बच्चों के लिए एक घातक रोग है। बहुधा असावधानी के कारण तथा उपयुक्त चिकित्सा के अभाव में ही साधारण सर्दी-जुकाम से ब्रोंकाइटिस और ब्रोंकाइटिस से न्यूमोनिया हो जाता है।

लक्षण— (i) शरीर के तापमान में वृद्धि हो जाती है।

(ii) साँस तेज चलने लगती है।

(iii) साँस लेने में कठिनाई होती है।

(iv) बच्चा खाँसने लगता है तथा खाँसते समय बच्चे का चेहरा लाल हो जाता है।

(v) लेटी हुई अवस्था में बच्चे का पेट तेज रफ्तार से ऊपर-नीचे करता है।

चिकित्सा – (i) न्यूमोनिया से आक्रान्त बच्चे की चिकित्सा किसी सुयोग्य डाक्टर से करानी चाहिए।

(ii) रोगी की परिचर्या में उन सभी नियमों का पालन करें जिनका उल्लेख प्रश्न ३ के उत्तर में किया गया है।

प्रश्न ५. बच्चों को दस्त आने का रोग क्यों होता है? इसकी चिकित्सा किस प्रकार करेंगी?

उत्तर— कारण— (i) दूध में वसा की अधिकता होने से बच्चे को पीले रंग का दस्त होता है।

(ii) बोतल द्वारा गाढ़ा दूध पिलाया जाना। इससे सफेद दस्त होता है।

(iii) यकृत की खराबी या पीलिया रोग से आक्रान्त होना। इससे मट-मैले रंग का दस्त होता है।

(iv) अजीर्ण होना। इससे हरा-पीला दस्त होता है।

(v) इनके अलावा आँतों की कमजोरी, दाँत आना, स्नायविक दुर्बलता इत्यादि भी दस्त आने के कारण हैं।

चिकित्सा— (i) दस्त की उपेक्षा न करें।

(ii) खान-पान में परहेज करें।

(iii) सुयोग्य डाक्टर से चिकित्सा करावें।

(iv) दस्त के साथ वमन हो तो दूध आदि खाने-पीने की वस्तु तत्काल बन्द कर दें तथा जबतक डाक्टर न बतलावे तबतक शुद्ध जल ही पीने के लिए दें।

प्रश्न ६. बच्चों के कब्ज होने के लक्षण, कारण एवं उसकी चिकित्सा पर प्रकाश डालें।

उत्तर— लक्षण— (i) पाखाना नियमित रूप से नहीं होता। बच्चे को दिन भर में तीन-चार बार साधारण पाखाना हो जाना चाहिए। पर कब्ज होने से ऐसा नहीं होता।

(ii) पाखाना रोज-रोज नहीं होता।

(iii) पाखाना करते समय कष्ट के कारण बच्चा रोने लगता है।

(iv) रोज-रोज पाखाना नहीं होने से पेट में दर्द होने लगता है।

(v) कभी-कभी वमन होने लगता है।

(vi) मल सूखा तथा कम होता है और कठिनाई से होता है।

कारण— (i) खान-पान में गड़बड़ी होने से।

(ii) आँतों की कमजोरी से।

(iii) माता का समुचित परिमाण में दूध न मिलने से ही कब्ज होता है।

चिकित्सा — (i) खान-पान में परिवर्तन करना चाहिए।

(ii) भोजन में फल के रस तथा जल की मात्रा में वृद्धि करनी चाहिए।

(iii) माता को पौष्टिक भोजन स्वयं खाना चाहिए।

(iv) डाक्टर की सलाह से तरल पैराफिन, कैस्टर आॅयल आदि देना चाहिए।

(v) ग्लिसरीन या अच्छे साबुन की बत्ती गुदामार्ग में डाल देने से भी पाखाना उतर जाता है।

प्रश्न ७. उदरशूल होने के लक्षण, कारण और उसकी चिकित्सा पर प्रकाश डालें।

अथवा, बच्चे के पेट में जोर से दर्द होने के क्या कारण हैं ? इससे बच्चे को कैसे बचाया जा सकता है ?

उत्तर — लक्षण — (i) उदरशूल के कारण बच्चा अचानक जोर-जोर से रोने लगता है। ज्यों-ज्यों पीड़ा बढ़ती है, त्यों-त्यों वह और जोर से रोने लगता है।

(ii) पीड़ा कम होने पर रोना भी कम हो जाता है।

कारण — जिस बच्चे को कब्ज की शिकायत रहती है, प्रायः उसे ही उदरशूल होता है। न पचनेवाली चीजों में सड़न उत्पन्न होने से आमाशय में दूषित गैस जमा हो जाती है। कब्ज रहने के कारण गुदामार्ग से आसानी से ये बाहर निकल नहीं पातीं, फलतः पेट में दर्द होने लगता है।

चिकित्सा — (i) पेट के निचले भाग में साधारण गर्म जल से भरी बोतल से सेंक दें।

(ii) पेट की हल्की मालिश करें।

(iii) चम्मच या बोतल द्वारा गर्म जल में सोडा-बाइकार्बोनेट या अभाव में केवल साधारण गर्म जल पिलाने से भी लाभ होता है।

प्रश्न ८. बच्चे को टीका देना क्यों आवश्यक है ? बच्चों को टीका नहीं लगाने से क्या हानि होती है ?

उत्तर— चेचक छुआछूत का रोग है। यह भोजन, वायु या संसर्ग द्वारा एक से दूसरे को हो जाता है। इससे बचने के लिए ही टीका दिलवाना जरूरी है। हमलोगों के यहाँ छोटे बच्चे को टीका नहीं दिलाया जाता, बल्कि कुछ सयाना होने पर ही उसे टीका दिलाते हैं। पर यह भूल है। अधिकतर बच्चे ही इस रोग के शिकार हो जाते हैं। अतः जब बच्चा दो-तीन महीने का हो तभी उसे पहली बार टीका लगवा देनी चाहिए। उसके बाद फिर साल दो साल के अन्तर पर टीका लगवाना चाहिए। टीका लगाने से किसी प्रकार की हानि नहीं होती। अतः प्रत्येक माता-पिता को समयानुसार अपने बच्चों को टीका दिलवा देनी चाहिए।

प्रश्न ९. बच्चों के साधारण छोटी-छोटी बीमारियों के नाम लिखें तथा उनमें से किसी एक का वर्णन करें।

उत्तर— बच्चों की साधारण छोटी-छोटी बीमारियाँ— सर्दी-खाँसी, न्यूमोनिया, ब्रोंकाइटिस, ज्वर, उदरशूल, वमन, दस्त आदि।

किसी एक (सर्दी-जुकाम) का वर्णन— पहले प्रश्न का उत्तर देखें।

भाग ३

प्राथमिक सहायता

अध्याय १

प्राथमिक सहायता के सिद्धान्त

रन १. प्राथमिक सहायता देने के उद्देश्य पर प्रकाश डालिए तथा क सहायता के गुणों का संक्षिप्त विवरण दीजिए।

त्तर— प्राथमिक सहायता के उद्देश्य— प्राथमिक सहायता के उद्देश्य को बचाना, स्वास्थ्य की पूर्व-स्थिति पर पुनः पहुँचने में सहायता देना शारीरिक स्थिति को और अधिक बिगड़ने से तब तक रोके रखना है जब किसी सुयोग्य व्यक्ति की सेवा उपलब्ध न हो जाय। इन आकस्मिक नाओं के उपस्थित होने से लोग संकट में पड़ जाते हैं। ऐसी दुर्घटनाओं इलाज तुरत होना चाहिए अन्यथा डाक्टर आने के पहले ही आक्रान्त क्ति मौत के घाट उतर जाता है। अधिक परिमाण में खून का बहना, ना, डूबना इत्यादि साधारण घटनाओं के होने का ज्ञान, उनको रोकने का य तथा उनकी साधारण चिकित्सा का सामान्य ज्ञान सभी व्यक्तियों को ना आवश्यक है।

प्राथमिक सहायता के गुण— कुछ लोगों में प्राथमिक सहायता के कुछ ण जन्मजात होते हैं। लेकिन अधिकतर लोगों में, अनुभव और अभ्यास से योग्य प्राथमिक सहायक के गुण आ जाते हैं। संक्षेप में, प्राथमिक सहायक के कुछ गुण निम्नलिखित हैं—

१. धैर्य— साधारण दुर्घटना होने पर लोग प्रायः घबरा जाते हैं। प्राथमिक सहायक को आसन्न दुर्घटना से स्वयं घबराना नहीं चाहिए।

दुर्घटनाग्रस्त व्यक्ति के सगे-सम्बन्धी यदि घबरा गये हों, तो उन्हें औ आक्रान्त व्यक्ति को धीरज देना चाहिए। घबराहट की अवस्था में लो अक्सर अनुचित काम कर बैठते हैं। अतः प्रत्येक प्राथमिक सहायक आसन्न दुर्घटना से घबराना नहीं चाहिए, बल्कि उन्हें धैर्य से काम कर चाहिए।

२. कार्यकुशलता—प्रत्येक प्राथमिक चिकित्सक को कार्यकुशल सूक्ष्म निरीक्षक होना चाहिए। उन्हें प्राथमिक सहायता का उचित ज्ञान अभ्यास रहना चाहिए। अनाधिकार चेष्टा करना हानिकर होता है।

३. कर्त्तव्यपरायणता—दूसरों की सहायता करना हमारा परम क है। अतः जाति, वर्ण-भेद आदि से परे होकर प्राथमिक सहायक को दूसरे सहायता तत्परता से करनी चाहिए। मानव-सेवा ही हमारा परम धर्म है।

प्रश्न २. प्राथमिक सहायता के सुनहरे नियमों का उल्लेख कीजिए।

उत्तर—प्राथमिक सहायता के सुनहरे नियम निम्नलिखित हैं—

(i) परिस्थिति के अनुसार परमावश्यक कार्य को शीघ्रता, तत्पर स्वच्छता एवं शान्तिपूर्वक करें।

(ii) घायलों के सहायतार्थ यदि प्राथमिक सहायता की आवश्यक वस्तुएँ उपलब्ध हों तो उनके साथ यथाशीघ्र आतुर की सेवा के लिए उपस्थित हों।

(iii) आक्रान्त व्यक्ति की भली-भाँति जाँच करें। यदि अवस्था अच्छी न हो, तो उसे खड़े रहने या बैठने नहीं दें। उसे बिस्तरे पर लिटा दें। यदि अवस्था अच्छी हो और वह डाक्टर के पास जाने लायक हो, तो उचित प्राथमिक चिकित्सा के उपरान्त उसे डाक्टर के पास ले जायँ, अन्यथा प्राथमिक चिकित्सा आरम्भ करने के साथ-ही-साथ डाक्टर के बुलाने का भी प्रबन्ध करें।

(iv) यदि आक्रान्त व्यक्ति मूर्च्छित अवस्था में हो तो सर्वप्रथम मूर्च्छा का कारण ढूंढ़ना चाहिए। यदि शरीर के किसी भाग से खून बहता हो तो सर्वप्रथम खून के बहाव को रोकना चाहिए।

(v) यदि रोगी की साँस बन्द हो गयी हो, तो कृत्रिम उपायों द्वारा साँस लाने का प्रबन्ध करना चाहिए।

(vi) यदि आक्रान्त व्यक्ति को गहरा घाव लगा हो तो उस पर साफ कपड़े की पट्टी बाँध दें अन्यथा कटे हुए भाग से शरीर में कीटाणुओं के प्रवेश होने से घाव के जहरीले होने का भय रहता है।

(vii) आकस्मिक दुर्घटना के कारण प्रायः आक्रान्त व्यक्ति घबरा जाता है और भय से काँपने लगता है। ऐसी अवस्था में उसे उत्साहित करते रहना चाहिए।

(viii) प्रायः आक्रान्त व्यक्ति को मूर्च्छित या अर्द्धमूर्च्छित अवस्था में लोग गरम चाय या गरम दूध पीने के लिए देते हैं। यह उचित नहीं है। ऐसी अवस्था में किसी द्रव वस्तु के पीने से वह उसकी श्वास-नली में चला जा सकता है और दम घुटने से प्रायः मृत्यु हो जाया करती है।

(ix) आकस्मिक घटना द्वारा उपस्थित संकटकालीन अवस्था में प्राथमिक चिकित्सक को स्वयं धीर रहना चाहिए तथा आक्रान्त व्यक्ति की प्राथमिक चिकित्सा का प्रबन्ध यथाशीघ्र करना चाहिए।

(x) प्राथमिक चिकित्सा सहानुभूतिपूर्ण, नियमानुकल तथा सावधानीपूर्वक हो, इसका ध्यान रखना चाहिए।

(xi) आहत व्यक्ति तथा उसके सगे-सम्बन्धियों को धीरज देते रहना चाहिए।

(xii) सहानुभूतिपूर्वक आहत व्यक्ति की सेवा-शुश्रूषा में हमेशा तत्पर रहना चाहिए।

(xiii) डाक्टर के आदेशानुसार आहत व्यक्ति को यथासमय दवा, पथ्य आदि अपने सामने तैयार करवा कर देना चाहिए।

(xiv) शरीर की किस करवट और किस हालत में रोगी को आराम मिलता है, दिन में कितनी बार पैखाना-पेशाब होता है, उसकी सामान्य हालत कैसी रहती है, इन सब बातों का ब्योरा रखना चाहिए।

(xv) आहत व्यक्ति के कमरे, कपड़े-लत्ते, बिछावन इत्यादि की सफाई पर तथा सुन्दर प्रतिवेश बनाये रखने पर ध्यान देना चाहिए।

प्रश्न ३. प्राथमिक सहायता (उपचार) के चार चरणों के नाम लिखें और संक्षेप में प्रत्येक का वर्णन करें।

उत्तर— प्राथमिक सहायता के चार चरण हैं जिनके अनुसार प्रत्येक प्राथमिक सहायक को काम करना उचित है। नियमानुसार काम करने से अधिक सफलता प्राप्त होने की आशा रहती है। ये चार चरण निम्न-लिखित हैं —

(i) स्थितिज्ञान (Case history),

(ii) निदान (Diagnosis),

(iii) उपचार (Treatment),

(iv) निवर्त्तन (Disposal)।

(i) स्थितिज्ञान— स्थितिज्ञान के आधार पर ही आहतों, उनकी आवश्यकताओं तथा उनकी चिकित्सा को प्राथमिकता दी जाती है। उदाहरण के लिए, यदि एक से अधिक व्यक्ति घायल हों, तो प्राथमिक सहायक को तत्क्षण ही विचार कर यह निर्णय कर लेना होता है कि आहतों में से किसकी चिकित्सा या उपचार सर्वप्रथम होना चाहिए। प्राथमिकता का निर्णय आघात की गंभीरता के अनुसार होना चाहिए।

प्राथमिक सहायता के अन्य चरणों को लागू करने के पहले आसन्न या संभावित संकटों से आहत व्यक्ति को मुक्त करना चाहिए। उदाहरण के लिए, यदि आहत व्यक्ति का कोई अंग किसी मशीन में फँस गया हो, तो सर्वप्रथम व्यक्ति के अंग को मशीन से मुक्त कराना चाहिए। यदि आहत व्यक्ति के हाथ-पैर टूट गये हों, साथ ही शरीर के किसी अन्य भाग से जोर का रक्तस्राव भी हो रहा हो, तो सर्वप्रथम रक्तस्राव को रोकने की व्यवस्था करनी चाहिए, क्योंकि अधिक रक्तस्राव से जीवन के समाप्त हो जाने का भय रहता है। टूटे हुए हाथ-पैरों की चिकित्सा बाद में होनी चाहिए।

(ii) निदान— प्राथमिक सहायता के दूसरे चरण में आहत की जाँच कर रोग का निदान करना है। यदि आहत सचेत हो, तो रोग को निश्चित करने के लिए उसके (क) चरित्र-वर्णन, (ख) लक्षण तथा (ग) आघात-चिह्नों पर विचार करना उचित है।

(क) चरित्र-वर्णन— चरित्र-वर्णन के अन्तर्गत दुर्घटना होने की कहानी आती है।

(ख) लक्षण— सचेत आहत व्यक्ति से पूछकर लक्षण (Symptoms) नोट कर लेना उचित है। हो सकता है, कुछ देर के बाद आहत व्यक्ति मूर्च्छित हो जाय। आहत व्यक्ति को कहाँ-कहाँ दर्द है, प्यास लगती है या नहीं, जी तो नहीं मिचलाता है, ठंढ तो नहीं लगती है, मूर्च्छा का अनुभव तो नहीं हो रहा है, इत्यादि बातों की जानकारी प्राप्त कर लेना चाहिए।

(ग) चिह्न— आघात के चिह्नों पर बहुत हद तक रोग का निदान निर्भर करता है। सचेत या अचेत अवस्था में आहत व्यक्ति के शरीर में प्राकृतिक सामान्य स्थिति से भिन्न परिवर्तन, आहत-चिह्न के अन्तर्गत आता है। उदाहरण के लिए शरीर के विशेष भाग में सूजन हो जाना, स्थान-विशेष से रक्तस्राव का होना, अंगों का विकृत होना, शरीर का पीला हो जाना, या चेहरे का लाल, या रक्तहीन हो जाना आहत होने के विशेष लक्षण हैं।

अचेत रोगी का निदान— सचेत आहत व्यक्ति की अपेक्षा अचेत आहत व्यक्ति के रोगों का निदान करना और भी कठिन है। ऐसी अवस्था में आघात के कारण उपस्थित हुए चिह्नों द्वारा ही रोग का निदान या उपचार किया जा सकता है। अचेत आहत व्यक्ति के शरीर की जाँच करके उपस्थित लक्षणों को शीघ्र नोट कर तत्काल चिकित्सा का प्रबन्ध करना चाहिए।

(iii) उपचार— परिस्थिति के अनुसार आहत व्यक्ति को घटनास्थल से किसी दूसरे सुरक्षित स्थान में ले जाना, जखमों की मरहम-पट्टी करना, बैंडेज बाँधना, टूटे स्थानों पर कमची लगाना, कृत्रिम साँस देना, रक्तस्राव का

रोकना इत्यादि उपचार के अन्तर्गत आते हैं। प्रत्येक प्रशिक्षित प्राथमिक सहायक को, चिकित्सा के मूल सिद्धान्तों को दृष्टिगत रखते हुए परिस्थितियों के अनुकूल, तत्काल उपचार करने के लिए तैयार रहना चाहिए। उपचार तब तक जारी रखना चाहिए जब तक डाक्टर न आ जाय, या रोगी को किसी सुरक्षित स्थान, घर या अस्पताल नहीं पहुँचाया जाय।

(iv) निवर्त्तन—आहत व्यक्ति के स्वास्थ्य-लाभ में निवर्त्तन अपना विशेष महत्त्व रखता है। प्रायः प्राथमिक सहायता के गलत निर्णय के कारण निवर्त्तन में विलम्ब हो जाता है। अतः परिस्थिति की जाँच कर आहत व्यक्ति के शारीरिक और मानसिक अवस्था के अनुसार उसे घर, चिकित्सालय, समीपवर्त्ती डाक्टर के पास, या अस्पताल ले जाने का निर्णय करना चाहिए। अच्छा तो यही होगा कि आहत की जाँच करके ही स्थानान्तरण का प्रबन्ध हो। जब तक स्थानान्तरण की व्यवस्था होती रहे, उस समय तक आहत की प्राथमिक चिकित्सा होती रहनी चाहिए।

अध्याय २

मरहम-पट्टी

प्रश्न १. पट्टियाँ कितने प्रकार की होती हैं? प्रत्येक का संक्षिप्त विवरण दीजिए।

उत्तर—पट्टियाँ निम्नलिखित प्रकार की होती हैं—

(क) लम्बी पट्टियाँ—लपेटी जानेवाली गोलाकार लम्बी पट्टियों की चौड़ाई कम पर लम्बाई अधिक होती है। ये पट्टियाँ साफ बारीक और सछिद्र बुने हुए कपड़े की बनी रहता हैं। इन्हें अंगों के चारों ओर लपेटा जाता है। इनके द्वारा गॉज, रुई, स्प्लिंट इत्यादि अपने स्थान पर बने रहते हैं। मजबूत

साफ धुली हुई धोती या साड़ी में से लम्बाई में कपड़ा फाड़कर इन्हें घर पर तुरत तैयार कर लिया जा सकता है। यों बाज़ारों एवं दवाखानों में ये बनी-बनायी मिलती हैं।

(ख) तिकोनी पट्टी— तिकोनी पट्टी मारकीन या लट्ठे की बनी होती है। ३८ इंच वर्गाकार कपड़े को कर्णवत् काट लेने से दो तिकोनी पट्टियाँ आसानी से बन जाती हैं।

इसके मुख्य काम ये हैं—(i) टूटे हुए अंगों को गले के सहारे बांधकर आसानी से जखमी को एक जगह से दूसरी जगह तक ले जाने में मदद पहुँचाना।

(ii) टूटी हुई भुजाओं को सहारा या विश्राम देना।

(iii) जखम को ढकने में मदद देना।

(iv) शरीर के ऊपरी अंग सिर, गर्दन, सीने इत्यादि की हरकत के कारण बाँह पर के तनाव को कम करना।

ऐसी तिकोनी पट्टी को स्लींग कहते हैं।

(ग) चिटोंदार पट्टियाँ— विशेष प्रकार के जखमों को बाँधने में चिटोंदार पट्टियाँ अधिक सुविधाजनक होती है। आवश्यकतानुसार इनकी लम्बाई, चौड़ाई और चिटों की संख्या में भेद होता है। जिस अंग की मुटाई एक जैसी नहीं होती वहीं साधारणतः ये पट्टियाँ बाँधी जाती हैं। जिस अंग-विशेष में पट्टी बाँधनी होती है, उसी के अनुसार लम्बाई और चौड़ाई में कपड़ा ले लिया जाता है। कपड़े की लम्बाई, चौड़ाई से कुछ अधिक रहती है ताकि चिटों को बाँधकर गाँठ लगायी जा सके। अब कपड़े के प्रत्येक छोर पर चीरा लगा कर दो या दो से अधिक चिटें बना ली जाती हैं। इस पट्टी की सहायता से घायल व्यक्ति को अधिक कष्ट दिये बिना जखम की देख-रेख या मरहम-पट्टी की जा सकती है। यही इस पट्टी की सबसे बड़ी विशेषता है।

प्रश्न २. पट्टियाँ बाँधते समय किन-किन बातों पर ध्यान देना चाहिए ?

उत्तर – पट्टियाँ बाँधते समय निम्नलिखित बातों पर ध्यान देना चाहिए—

(i) पट्टियाँ साफ-सुथरी, मजबूत तथा यथोचित लम्बाई और चौड़ाई की हों। यदि पट्टियाँ पूरी लम्बाई की न हों, तो दो या दो से अधिक पट्टियों को सूई-डोरे या मशीन से सी कर जोड़ देना चाहिए। जोड़ने के समय गाँठ नहीं लगाना चाहिए।

(ii) बाँधने के पहले पट्टियों का गोला (Roll) तैयार कर लें। ऐसा कर लेने से बाँधने में सहूलियत होती है।

(iii) पट्टी बाँधते समय आहत के सामने खड़े हो जायँ तथा उसके जिस अंग में पट्टी बाँधनी हो, उसे यथासाध्य सीधा कर लें। सीधा करते समय इसका ध्यान रखें कि आहत को तकलीफ न होने पाये।

(iv) जहाँ जख्म हो, वहाँ से कुछ दूर हट कर पट्टी बाँधना आरम्भ करें। वहाँ पर पट्टी कस कर बाँधें। पुनः ज्यों-ज्यों जख्म के समीप पहुँचते जायँ, पट्टी ढीली करते जायँ।

(v) पट्टी को नीचे से ऊपर की ओर तथा अन्दर से बाहर की ओर अंग के सामने लपेटें।

(vi) पट्टी की प्रति तह, पूर्व तह के दो-तिहाई को ढके, इसका ध्यान रहे।

(vii) पट्टी न तो अधिक कसी हो, न अधिक ढीली हो।

(viii) पट्टी इस प्रकार बाँधी जाय कि रक्त-संचालन में बाधा न हो। पट्टी कसी तो नहीं है, इस बात की जाँच आहत के नाखून को दबाकर कर लें। यदि नाखून को दवा कर छोड़ने से, इसकी लाली शीघ्र लौट आती है, तो पट्टी ठीक बँधी है। यदि लाली देर से लौटे, तो समझ लें कि पट्टी कस कर बँधी है।

(ix) जब पूरी पट्टी बाँधी जाय, तो छोर को सेपटीपिन के सहारे पट्टी से लगा दें या ऊपर के सिरे को बीचोबीच फाड़ कर दोनों सिराओं में आपस में गाँठ लगा दें।

(x) ड्रेसिंग करते समय आप के हाथ साफ हों तथा उँगलियाँ जख्म के

सम्पर्क में नहीं रहें। आपके नाक-मुंह के सामने कपड़े लटकते हों, ताकि आहत के जखम से रोग-उत्पादक जीवाणु प्रविष्ट न कर जायें।

प्रश्न ३. मरहम-पट्टी से जख्म को क्या लाभ होता है ? समझा कर लिखिए।

उत्तर—मरहम-पट्टी से जखम को निम्नलिखित लाभ होता है—

(i) छूत के रोगों से जखम बचा रहता है क्योंकि वह ढका रहता है।

(ii) रूई और गाँज यथास्थान बने रहते हैं।

(iii) चुटीले भाग हिलते-डुलते नहीं हैं।

(iv) चुटीले भाग की पेशियों और रक्तवाहिनियों को सहारा मिलता है।

(v) रक्त-प्रवाह रुक जाता है।

(vi) सूजन में वृद्धि नहीं हो पाती है।

(vii) टूटी हड्डियों पर लगायी गयी तख्तियाँ यथास्थान रहती हैं।

अध्याय ३

अचेतना

प्रश्न १. अचेतना (Unconciousness) के कितने भेद हैं ? इनके नाम लिखिए और प्रत्येक का संक्षेप में वर्णन कीजिए।

उत्तर—अचेतना क्या है ?—भयानक मस्तिष्क-आघात, संक्षोभ, विष-पान, तीव्र रक्तस्राव, दम घुटने, मिर्गी, हिस्टीरिया, मधुमेह, हृदयाघात (Heartstroke) के कारण तंत्रिका-तंत्र (Nervous system) के विशेष-विशेष केन्द्र इस प्रकार प्रभावित हो जाते हैं कि वे अपना काम सफलतापूर्वक कर नहीं पाते, फलतः उनके द्वारा नियंत्रित अंगों में निष्क्रियता या अल्पसक्रियता आ जाती है। अन्ततोगत्वा थोड़े समय के लिए व्यक्ति-विशेष मूर्च्छित हो जाता है,

उसकी चेतना थोड़े समय के लिए खो जाती है। उसकी शारीरिक और मानसिक क्रियाएँ निष्क्रिय-जैसी हो जाती हैं।

इसे ही अचेतना कहते हैं।

अचेतना के भेद—

अचेतना
- साधारण मूर्च्छा (Fainting)
- अपूर्ण मूर्च्छा (Stupor)
- पूर्ण मूर्च्छा (Comma)

साधारण मूर्च्छा— साधारणतः मस्तिष्क के तन्तुओं में आवश्यकता से अधिक या कम परिमाण में रक्त के पहुँचने से व्यक्ति-विशेष को मूर्च्छा आ जाती है।

लक्षण— मूर्च्छा की अवस्था में व्यक्ति-विशेष का चेहरा रक्त की अधिकता से अत्यधिक लाल हो जाता है, चर्म ठंढा पड़ जाता है। प्रायः चेहरे पर पसीने की बूँदें दिखाई देने लगती हैं। हृदय-स्पन्दन मन्द और दुर्बल हो जाता है, साँस धीरे-धीरे चलने लगती है। व्यक्ति-विशेष का सिर चकराने लगता है, उसे चारों ओर अँधेरा-ही-अँधेरा दिखाई देता है। वह लड़खड़ा कर जहाँ-का-तहाँ गिर जाता है, उसकी चेतना थोड़ी देर के लिए खो जाती है।

अपूर्ण मूर्च्छा— प्रायः साधारण मूर्च्छा से अपूर्ण मूर्च्छा की अवस्था आ जाती है। ऐसी अवस्था में रोगी को शीघ्र जगाना सम्भव नहीं होता है। लेकिन आँखों पर प्रकाश डालने से पुतली संकुचित हो जाती है। आँखों की पुतली को बन्द करने का प्रयत्न करने से वह रोकता है; लेकिन रोगी अचेत अवस्था में रहता है।

पूर्ण मूर्च्छा— पूर्ण मूर्च्छा की अवस्था में आहत प्रायः अचेत अवस्था में रहता है। आँखों पर प्रकाश डालने पर पुतलियाँ निष्क्रिय बनी रहती हैं। ऐसी मूर्च्छा की चिकित्सा प्राथमिक चिकित्सक के क्षेत्र के बाहर है। ऐसी अवस्था में डाक्टर को शीघ्र बुलाना चाहिए। इसके उपचार के लिए साधारण मूर्च्छा के उपचार के नियमों का पालन करना चाहिए।

प्रश्न २. साधारण मूर्च्छा के क्या लक्षण हैं ? इसकी चिकित्सा कैसे करेंगी ?

उत्तर— साधारण मूर्च्छा के लक्षण—प्रश्न १ का उत्तर देखें।

चिकित्सा—(i) कसे हुए कपड़े को ढीलाकर दें। विशेषकर गर्दन, वक्ष और कमर के कपड़े ढीले कर दिये जायँ। (ii) रोगी को पर्याप्त शुद्ध हवा मिलने का प्रबन्ध। (iii) यदि कहीं से रक्तस्राव होता हो तो उसे रोकने का प्रबन्ध करें। (iv) रोगी जब बेहोशी की हालत में हो तो उसे भोजन या अन्य द्रव पीने के लिए न दें। (v) रोगी को तब तक छोड़कर न जायँ जब तक वह होश में न आ जाय। (vi) होश की अवस्था में आने पर उसे पानी पीने के लिए दिया जा सकता है। (vii) यदि रोगी की नाड़ी कमजोर मालूम पड़े तो उसे चाय, काफी या गरम दूध पीने के लिए देना चाहिए। (viii) मूर्च्छित व्यक्ति के चेहरे को ठंढे जल से पोंछते रहें। (ix) यदि दांत बैठ गये हों तो सावधानीपूर्वक किसी कड़ी चीज से उसे छुड़ाने का प्रबन्ध करें।

प्रश्न ३. मिर्गी के क्या लक्षण हैं ? मिर्गी से आक्रान्त व्यक्ति को आप क्या प्राथमिक सहायता देंगीं ?

उत्तर— मिर्गी एक प्रकार का मानसिक रोग है। यह रोग सभी उम्र के लोगों और विशेषकर युवक-युवतियों को अधिक होता है। मिर्गी के कारण वे थोड़े समय के लिए मूर्च्छित हो जाते हैं और पुनः उसके दूर होते ही पूर्ववत् अपना काम करने लगते हैं।

लक्षण— व्यक्ति-विशेष अचेतना या अर्धचेतन (Semi unconscious) अवस्था में रहता है। उसकी आँखें पथरा जाती हैं और उनकी पुतलियां स्थिर तथा टकटकी लगी-सी दिखाई पड़ती हैं। शरीर अकड़ जाता है। मुँह से झाग निकलने लगता है। उन्हें प्रायः पाखाना और पेशाब अनजाने में हो जाता है।

उपचार— यदि परिचारक को मालूम हो कि व्यक्ति-विशेष को मिर्गी का दौरा आता है, तो ऐसा अवस्था में उसे ध्यान रखना चाहिए कि रोगी अनजाने कोई ऐसा काम न कर बैठे जिससे वह घायल हो जाय, या ऐसी चीज पर गिर

जाय, जिससे उसे जख्म हो जाय। अतः पास की वस्तुओं को जिससे टकरा कर चोट लगने का भय हो, हटा देना चाहिए। मिर्गी के दौरे में प्रायः दाँत बैठ जाता है। अतः जीभ कटने से बचाने के लिए पेन्सिल, चम्मच की बेंट या अन्य किसी कड़ी चीज में रूमाल को लपेट कर व्यक्ति-विशेष के जबड़ों के बीच रख देना चाहिए तथा मूर्च्छा दूर करने के लिए साधारण उपायों को काम में लाना चाहिए। मिर्गी के रोगी को बार-बार मूर्च्छा आती है। अतः आक्रान्त व्यक्ति के समीप तब तक जरूर रहना चाहिए जब तक डाक्टर न आ जाय।

प्रश्न ४. हिस्टीरिया रोग के क्या लक्षण हैं ? इसका उपचार कैसे करेंगी ?

उत्तर— डाक्टरों के मतानुसार हिस्टीरिया एक मानसिक रोग है। बहुधा उपेक्षित व्यक्तियों को (युवतियों को) जिन्हें सहानुभूति और प्रेम नहीं मिलता है, प्रतिक्रिया-स्वरूप उन्हें यह मानसिक रोग हो जाता है।

लक्षण— इस रोग के लक्षण साधारण मूर्च्छा के लक्षण जैसे ही हैं, लेकिन इसमें कुछ विशेषता है। इसका दौरा नाटकीय ढंग का होता है। रोगी को दौरे का पूर्वाभास हो जाता है, जिससे वह किसी सुरक्षित स्थान पर चला जाता है। रोगी को तभी मिर्गी का दौरा आता है, जब उसके समीप या आसपास सहानुभूति दिखाने वाले लोग वर्त्तमान रहते हैं। जब रोगी अकेला रहता है, तब दौरा विरले ही आता है। रोगी मूर्च्छित होकर इस प्रकार गिरता है कि उसको प्रायः चोट नहीं आती। लोगों को आकर्षित करने के लिए वह हँसता है, चिल्लाता है, गरजता है, अपने बालों को नोचता है, कपड़ों को फाड़ता है, लेकिन नंगा नहीं होता है। उसकी मुट्ठियाँ भिच जाती हैं और हाथ-पैर ऐंठने लगते हैं।

उपचार— यदि रोगी मूर्च्छित अवस्था में हो, तो मूर्च्छा का उपचार करना चाहिए। अन्यथा उसे शक्ति से काम लेना चाहिए। हिस्टीरिया मुख्यतः एक मानसिक रोग है। रोगिणी अपने को काल्पनिक लक्षणों से घिरी पाती है। कभी वह पेट, कभी छाती, कभी सिर में दर्द का अनुभव करती है; वास्तव में

उसे दर्द नहीं रहता है। प्रायः वह स्वयं अपने शरीर में चोट मार कर, पिन चुभा कर या तेज चाकू से किसी अंग को काट कर सहानुभूति प्राप्त करने का प्रयत्न करती है। अतः ऐसी सहानुभूति प्राप्त करने से दौरा बढ़ जाता है। जितनी अधिक सहानुभूति उसे मिलती है, वह और भी अधिक सहानुभूति प्राप्त करने के लिए प्रयत्न करती है, अतः दृढ़ता के साथ रोगी से बातचीत करनी चाहिए। लेकिन उसे भयभीत नहीं करना चाहिए। दौरे की हालत में उसके वस्त्र को ढीला कर देना चाहिए।

प्रश्न ५. अपूर्ण और पूर्ण मूर्च्छा में क्या अन्तर है? मूर्च्छा दूर करने के लिए आप क्या करेंगी?

उत्तर—पहले भाग के लिए प्रश्न १ का उत्तर देखें।

मूर्च्छा दूर करने के निम्नलिखित साधारण नियम हैं—

(i) मूर्च्छित व्यक्ति को हवादार जगह में ले जायँ। यदि कमरे में बेहोशी हो गयी है तो खिड़कियाँ, दरवाजे आदि खोल दें।

(ii) मूर्च्छित व्यक्ति के कपड़े ढीले कर दें। यदि गले में फाँसी लगी हो तो उसे निकाल दें।

(iii) मूर्च्छित होने के कारण का पता लगायें और उसे शीघ्र दूर करने का प्रयत्न करें।

(iv) मूर्च्छित व्यक्ति के सुविधानुसार उसे बैठा कर या सुला कर रखें तथा उसके सिर को धड़ से ऊँचा रखें।

(v) व्यक्ति-विशेष के चेहरे को ठंढे पानी से सिक्त करते रहें।

(vi) यदि मूर्च्छित व्यक्ति की साँस बन्द हो गयी हो तो कृत्रिम श्वास-क्रिया द्वारा साँस लाने का प्रयत्न करें।

(vii) पूर्ण मूर्च्छा की अवस्था में यथाशीघ्र डाक्टर को बुलाएँ या अस्पताल ले जाने की व्यवस्था करें।

(viii) जब तक डाक्टर न आ जाय तब तक परिचारक मूर्च्छित व्यक्ति को नहीं छोड़ें।

(ix) चेतना लौट आने पर पीने के लिए शुद्ध जल, चाय, काफी, कोको, गर्म दूध इत्यादि दें।

प्रश्न ६. संक्षोभ किसे कहते हैं ? इसके क्या लक्षण हैं ? संक्षोभ में प्राथमिक चिकित्सा आप किस प्रकार करेंगी ?

उत्तर—गंभीर संक्षोभ से व्यक्ति बेहोश हो जाता है और वह अपनी चेतना खो बैठता है। यदि संक्षोभित व्यक्ति होश में हो तथा उल्टी आदि नहीं होती हो तो प्रचुर मात्रा में पीने के लिए ठंढे जल या जल में खाने वाले सोडे के घोल के व्यवहार से यह सहज ही दूर किया जा सकता है। जलने के कारण उपस्थित संक्षोभ के उपचार के लिए एक गिलास जल में आधा चम्मच खाने वाला सोडा और एक चम्मच नमक का घोल बना कर पिलाने से विशेष लाभ होता है।

यदि संक्षोभ के कारण व्यक्ति-विशेष की हालत ठीक न हो, तो उसे मुलायम बिस्तरे पर पीठ के बल सुला दें। सुलाते समय ध्यान रखें कि उसका सिर धड़ की अपेक्षा नीचा रहे। यदि श्वसन-क्रिया में कष्ट हो तो उसे तीन-चौथाई अधोमुखी अवस्था में लिटा दें। साथ ही, ध्यान रखें कि उसके शरीर में न्यूनतम वस्त्र हो और वे कसे न हों। यदि शीतकाल हो, तो आक्रान्त व्यक्ति को गर्म रखें, लेकिन आवश्यकता से अधिक बोझ उसके शरीर पर नहीं लादें। यदि जरूरत पड़े, तो गर्म जल से भरी बोतल आदि का उपयोग करें। यदि आक्रान्त व्यक्ति की इच्छा हो और पेट में जख्म या मूर्च्छा, अधिक रक्त-स्राव, मिर्गी इत्यादि न हो, तो गर्म चाय, कॉफी, कहवा या शुद्ध गर्म जल पिलायें। इससे लाभ होता है।

प्रश्न ७. दम क्यों घुटता है ? दम घुटने के क्या लक्षण हैं ? दम घुटे व्यक्ति की आप क्या चिकित्सा कीजिएगा ?

उत्तर—दम घुटने के कारण—दम घुटने के अनेक कारण हैं, जिनमें निम्नलिखित अधिक साधारण कारण हैं—

(i) श्वास-मार्ग में किसी चीज के अटक जाने से; जैसे—भोजन, कफ, रक्त, नकली दाँत इत्यादि।

(ii) श्वास-मार्ग में जल के चले जाने से; जैसे—डूबने में।

(iii) गले में फाँसी लगने या बाहरी दबाव पड़ने से।

(iv) किसी विशेष कारणवश नाक के बन्द हो जाने से।

(v) छाती पर भारी दबाव पड़ने से।

(vi) विषैली गैस, जैसे—कार्बन डाइऑक्साइड, कार्बन मानोक्साइड, मोटर का धुआँ, अमोनिया इत्यादि गैसों के प्रभाव से।

(vii) विष के प्रभाव से।

(viii) विद्युत्, संक्षोभ आदि से।

लक्षण—साँस लेने में कष्ट होता है। रोगी साँस लेने के लिए बेचैन हो जाता है; उसका चेहरा लाल हो जाता है। साँस रुक-रुककर चलती है। गर्दन की शिराएँ फूल जाती हैं। बेचैनी धीरे-धीरे बढ़ती है। व्यक्तिविशेष के होठ, कान, हाथ-पैरों की उँगलियाँ ढीली पड़ जाती हैं। हृदय की गति अनियमित हो जाती है। वह अर्द्धमूर्च्छित अवस्था से पूर्ण मूर्च्छित अवस्था में आ जाता है और अन्त में मृत्यु को प्राप्त होता है।

उपचार—दम घुटने के कारणों को दृष्टि में रखकर उपचार करना चाहिए। दम घुटने के साधारण नियम निम्नलिखित हैं—

(i) सर्वप्रथम दम घुटने के कारण को दूर करें। उदाहरण के लिए, यदि गले में फाँसी लगी हो, तो अन्य उपचार करने के पहले गले की फाँसी हटायें। यदि विषैली गैस के कारण कमरे में व्यक्ति का दम घुट रहा हो, तो अपनी साँस को रोककर यथाशीघ्र उसे कमरे से बाहर खुले स्थान में ले जायँ।

(ii) साँस लाने का कृत्रिम प्रयत्न करें और इसे तब तक चालू रखें, जब तक स्वाभाविक रूप से साँस लौट नहीं आये।

(iii) डाक्टर को शीघ्र बुलायें।

प्रश्न ८. विद्युत् धक्का लगने पर आप क्या चिकित्सा कीजिएगा?

उत्तर— प्रायः बिजली के खुले तार, दोषपूर्ण स्विच, पंखे, लैम्प, मीटर इत्यादि को छूने से या बिना विद्युत्धारा बन्द किये किसी स्विच को ठीक करते समय बिजली की मुक्त धारा शरीर होकर पृथ्वी में चली जाती है, फलस्वरूप बिजली का आघात लग जाता है। इससे सम्पर्क में आया हुआ अंग प्रायः जल जाता है। लोग बेहोश हो जाते हैं। हृदय की पेशियों के पक्षाघात (Paralysis) से हृदय की गति रुक जाती है या फेफड़ों को प्रचालित करने वाली पेशियों के पक्षाघात से श्वास-क्रिया बन्द हो जाती है और व्यक्तिविशेष की मृत्यु हो जाती है।

उपचार— यदि कोई व्यक्ति बिजली के तार से सट गया हो, तो उसको छुड़ाने में काफी सावधानी बरतनी चाहिए। असावधानी के कारण प्रायः छुड़ानेवाले को भी बिजली का आघात लग जाता है। अतः छुड़ाने के पहले मेन-स्विच बन्द कर देना चाहिए। यदि प्लग से तार लगा हो, तो उसे सॉकेट से खींचकर अलग कर देना चाहिए। बिजली के तार से सटे हुए व्यक्ति को छुड़ाने के लिए रबर की बनी वस्तुओं पर खड़े होकर या रबर का जूता या दस्ताना पहनकर उसे तार से छुड़ाना चाहिए। इनके अभाव में छुड़ाने के लिए सूखे कपड़े, सूखी रस्सी या लकड़ी का व्यवहार करना चाहिए। यदि साँस बन्द हो गयी हो, तो कृत्रिम तरीके से साँस लाने की कोशिश करनी चाहिए। यदि व्यक्तिविशेष बेहोश हो गया हो तो उसकी उचित चिकित्सा करनी चाहिए। इसके लिए कृत्रिम श्वास-क्रिया का सहारा लेना चाहिए। रोगी को कितना भी कम धक्का लगा हो, फिर भी उसे किसी हालत में चिकित्सक के परामर्श के बिना कोई काम करने नहीं देना चाहिए। इसलिए डाक्टर को बुलाना भी आवश्यक है।

प्रश्न ६. डूबे हुए व्यक्ति की क्या चिकित्सा कीजिएगा? डूबने से बचने के लिए क्या-क्या नियम हैं?

उत्तर— प्रायः पेट में जल के अधिक चले जाने से आदमी डूब जाता है और फेफड़ों में नाक के द्वारा जल के चले जाने से श्वास-मार्ग अवरुद्ध हो

जाता है जिससे श्वास-क्रिया बन्द हो जाती है, लेकिन दिल धड़कता रहता है और धमनियों में प्रायः रक्त प्रवाहित होता रहता है। ऐसी अवस्था में, यदि पानी से निकाले हुए व्यक्ति को सही तरीके से प्राथमिक सहायता पहुँचायी जाय, तो उसके बच जाने की पूरी आशा रहती है।

उपचार— डूबे हुए मनुष्य के पेट में प्रायः अधिक पानी समाया रहता है। अतः पानी से किनारे पर लाते समय उसे इस प्रकार लायें कि उसका सिर, धड़ आदि पैर की अपेक्षा नीचा रहें, जिससे पेट का जल स्वतः मुँह द्वारा निकल जाय। अन्यथा पेट के बल उसे लिटा दें। पुनः उसके मुँह, नाक आदि में गयी हुई मिट्टी तथा नाक के बलगम आदि को निकाल दें। यथा-सम्भव उसके भींगे वस्त्र को उतार कर उसके शरीर को चादर, कम्बल आदि से ढक दें, ताकि उसका शरीर गर्म रहे। पुनः कृत्रिम तरीके से साँस लाने का कार्य आरम्भ कर दें और तब तक जारी रखें, जब तक कि डाक्टर नहीं आ जाय। अक्सर फेफड़े में पानी चले जाने की वजह से रोगी को निमोनिया हो जाने का भय रहता है। अतः छाती के ऊपरवाले भाग को कम्बल से लपेट कर रखना चाहिए। यदि रोगी पानी अधिक पी लिया हो तो उसे वमन कराने के लिए चाक पर रखकर चाक को घुमाया जाता है।

डूबने से बचने के नियम—

डूबने से बचने के लिए निम्नलिखित कुछ सामान्य नियम हैं। इनके पालन करने से डूबने की संभावना कम हो जाती है।

(i) प्रत्येक बालक और बालिका को जलभय-मुक्त होना चाहिए जिसके लिए निर्देशकों की देख-रेख में बचपन से ही उन्हें तैरना सीखना चाहिए।

(ii) जो तैरना सीखना चाहते हों, उन्हें अधिक गहरे जल में या अनजाने घाट पर स्नान नहीं करना चाहिए।

(iii) जो तैरना सीखना चाहते हों, उन्हें कुशल तैराक के निर्देशन में ही तैरना सीखना चाहिए।

(iv) भोजन करने के तुरत बाद तैरना उचित नहीं है। भोजन करने के कम-से-कम एक घंटा बाद तैरना आरम्भ करें।

(v) पूर्ण रूप से थके और तापक्लान्त रहने पर तैरना कदापि आरम्भ नहीं करें।

(vi) यदि पेशियों में स्नायविक संकुचन-दोष (Cramp) हो, तो तैरना शुरू नहीं करें।

(vii) यदि कुशल तैराक नहीं हों तो गंभीर जल में अपनी क्षमता के बाहर अधिक दूर न जायँ।

(viii) यदि आप कुशल तैराक भी हैं तो भी अपरिचित धाराओं में तैरने की हिम्मत न करें।

(ix) अज्ञात नदियों और समुद्र में तैरना आरम्भ करने के पहले स्थानीय तैराकों की सलाह ले लें। इनकी अवज्ञा करके बहुत से कुशल तैराकों ने अपनी जान गँवा दी है।

अध्याय ४

जख्म

प्रश्न १. जख्म किसे कहते हैं? इसके कितने भेद हैं? जख्म की चिकित्सा में कौन-सी सावधानी की आवश्यकता है?

उत्तर— जख्म की परिभाषा— छूरे, पत्थर, तेज अस्त्र-शस्त्र, औजार या मशीन के कलपुर्जे द्वारा चर्म के तन्तुओं का सिलसिला टूट जाने से अंगों में जख्म हो जाता है।

जख्म के भेद—

- जख्म
  - साधारण जख्म
  - विषम जख्म
    - कटा जख्म
    - चिथड़े जख्म
    - छिदे जख्म

साधारण जख्म—साधारण जख्मों में चर्म अक्षुण्ण बना रहता है। केवल इसके भीतर की रक्त-केशिकाएँ फट जाती हैं जिससे स्थानविशेष में सूजन और जलन उत्पन्न हो जाती है।

विषम जख्म—विषम जख्म में चर्म के विदीर्ण होने से स्थानविशेष के जख्म से रक्तस्राव होता है। जख्म की गंभीरता शरीर के स्थान, औजार, उसकी गति इत्यादि पर निर्भर है। विषम जख्म के निम्नलिखित भेद हैं—

कटा जख्म—कटा जख्म (Cut wound) तेज चाकू, तेज औजार, तलवार, फरसा इत्यादि के आघात से होता है। जख्म के किनारे साफ होते हैं। जख्म उथला, गहरा या अधिक गहरा होता है। रक्त-केशिकाओं के साफ-साफ कट जाने से जख्म की गहराई के भेद से रक्तस्राव कम या अधिक होता है।

चिथड़े जख्म—चिथड़े जख्म के किनारे फटे और टेढ़े-मेढ़े होते हैं। ऐसा चिथड़ा जख्म (Lacerated) तेज मशीन के कल-पुर्जे या पशुओं के तीक्ष्ण पंजे के आघात से होता है। साधारणतः ऐसे जख्म से कम रक्तस्राव होता है।

छिदे जख्म—छिदे जख्म अपेक्षाकृत गहरे होते हैं। ये सूई, काँटी, आल्पीन, काँटे, छूरे इत्यादि द्वारा होते हैं। छिदे जख्म (Punctured) की विशेषता यह है कि इसका मुँह सँकरा होता है, जिसके कारण ये अपेक्षाकृत अधिक खतरनाक होते हैं। रोग-उत्पादक जीवाणु तन्तुओं के गहरे भागों में प्रविष्ट हो जाते हैं, जिससे सहज मुक्ति पाना कठिन हो जाता है। साधारणतः ऐसे जख्मों से कम रक्तस्राव होता है। लेकिन धमनी के कटने से रक्तस्राव की मात्रा में वृद्धि हो जाती है।

जख्म की चिकित्सा में सावधानी—वायुमण्डल में रोग के जीवाणु वर्त्तमान रहते हैं जिनके जख्म में प्रविष्ट हो जाने से जख्म के प्रतिदूषित (Septic) होने के कारण रक्त के विषाक्त होने का भय रहता है। अतः जख्म कभी खुले न रहें, इसका ध्यान रखना आवश्यक है। इसके अतिरिक्त गन्दे कपड़े, गन्दे हाथ, दूषित जल इत्यादि के व्यवहार से भी जख्म के विषाक्त होने का भय रहता है। अतः जख्म को छूने से पहले अपने हाथों को विसं-

क्रामक साबुन और जल से अवश्य धो लेना चाहिए। जख्म को ढकने के लिए जिस रूई, कपड़े या पट्टी का व्यवहार हो, वह यथासाध्य विसंक्रमित और साफ हो, इसका ध्यान रखना उचित है।

अध्याय ५

जलना

प्रश्न १ जलन की चिकित्सा के साधारण नियम क्या हैं ?

उत्तर— जलन की प्राथमिक चिकित्सा के नियम निम्नलिखित हैं—

(i) जलन की विषमता की भलीभाँति जाँच करें।

(ii) जले हुए स्थान में यदि कपड़े आदि सट गये हों, तो उसको अलग करने, या फफोलों को फोड़ने, या चमड़े को काटकर अलग करने का प्रयत्न स्वयं नहीं करें। इसके लिए डाक्टर की प्रतीक्षा करें।

(iii) उपचार करते समय अपने हाथों को साफ रखें। अन्य विसंक्रामक द्रव्यों के अभाव में शुद्ध जल और साबुन से अपने हाथों को भलीभाँति धो लें।

(iv) जख्म को ढकने के लिए कीटाणु-रहित (Sterilized) कपड़े, रूई और पट्टियों का व्यवहार करें। इनके अभाव में शुद्ध, साफ धुले हुए कपड़ों का उपयोग करें। पट्टियों को बाँधना यदि अनिवार्य हो तो उसे कस कर कदापि नहीं बाँधें।

(v) प्रायः जलने के कारण व्यक्ति-विशेष में संक्षोभ के लक्षण दिखाई देने लगते हैं। ऐसी अवस्था में संक्षोभ से मुक्ति दिलाने का उपाय करें।

(vi) विषम जलन की अवस्था में डाक्टर को शीघ्र बुलाने या व्यक्तिविशेष को निकटतम अस्पताल में ले जाने का शीघ्र प्रबन्ध करें।

प्रश्न २. जले हुए व्यक्ति की क्या प्राथमिक चिकित्सा करेंगी ?

उत्तर— (क) मनुष्य कई तरह से जल सकता है—

(i) ताप, आग, विद्युत् या घर्षण से,

(ii) अम्ल से,

(iii) क्षार से।

प्रत्येक अवस्था में उपचार पृथक् होता है।

जलने से क्षतस्थान केवल लाल हो जा सकता है, फोला (Blister) पड़ सकता है या गंभीर तन्तु नष्ट हो जा सकते हैं। क्षत स्थान पर कपड़ा सट जा सकता है जिसे घाव को क्षति पहुँचाये बिना अलग करना कठिन हो सकता है। जलने से मानसिक आघात (Shock) तथा घाव के सड़ जाने (Septic) का भय काफी रहता है; अतः थोड़ा भी जलने पर उसकी चिकित्सा करनी चाहिए।

उपचार—(i) यदि आशु-चिकित्सा सम्भव हो तो जले स्थान को रूई से ढक कर तथा हल्के से बाँध कर रोगी का चिकित्सक के पास ले जाना चाहिए।

यदि आशु-चिकित्सा सम्भव न हो तो—

(a) क्षत स्थान से कपड़ा हटा लेना चाहिए (यदि वह सटा न रहे)।

(b) फोड़ा फोड़ना नहीं चाहिए।

(c) क्षत स्थान से हवा हटाने के लिए शरीर के तापक्रम पर पानी के अन्दर उसे डूबा रखना चाहिए। पानी के साथ खाने वाला सोडा (Sodium bicarbonate) (एक पाइंट पानी में तीन चाय के चम्मच सोडा) मिला देने से जलन का अनुभव नहीं होता है। ऐसा करने से जला कपड़ा भी क्षत स्थान को छोड़ देता है।

इसके बाद क्षत स्थान पर सोडा-पानी से भिगा कर पट्टी बाँध देनी चाहिए अन्यथा कड़ी चाय में भींगी हुई पट्टी बाँध देनी चाहिए।

रोगी के क्षत स्थान को ढक कर चिकित्सक के पास ले जाना या उन्हें खबर देनी चाहिए।

रोगी को तरल पदार्थ काफी मात्रा में देना चाहिए।

(ii) अम्ल से जल जाने से पानी से धो देना चाहिए। यदि सम्भव हो तो

खाने वाला सोडा या कपड़ा साफ करने वाला सोडा के तनु घोल को धोने में व्यवहार करना चाहिए, लेकिन अन्तिम धुलाई पानी से ही होनी चाहिए।

(iii) क्षार से जल जाने से सिरका (Vinegar), नीबू आदि हल्के अम्ल के घोल से घाव धोना चाहिए। यह उपलब्ध न होने पर केवल पानी से ही बहुत देर तक धोना चाहिए।

(ii) तथा (iii) के अन्यान्य उपचार (i) की तरह हैं।

प्रश्न ३. यदि किसी के वस्त्र में आग लग गयी हो तो आप उसे किस तरह बुझायेंगी तथा उसकी चिकित्सा किस तरह करेंगी ?

उत्तर—प्रायः असावधानी के कारण रसोई बनाते समय, विशेष कर औरतों के कपड़ों में, चूल्हे या स्टोव से आग लग जाती है। ऐसी अवस्था में कम्बल, दरी, गाढ़े पर्दे, कोट, लबादा, चादर, मेजपोश या जो भी कपड़े नजदीक में उपलब्ध हों, ले कर सावधानीपूर्वक व्यक्ति के शरीर में लपेट कर उसे लेटा दें। आक्सीजन के अभाव में आग शीघ्र बुझ जाती है। जले हुए स्थान की चिकित्सा के लिए प्रश्न २ का उत्तर देखें।

प्रश्न ४. रासायनिक द्रव्यों से जलन की क्या चिकित्सा करेंगी ?

उत्तर—साधारण सान्द्र (Concentrated) सल्फ्यूरिक, हाइड्रोक्लोरिक या नाइट्रिक अम्लों, या दाहक अमोनिया, कास्टिक सोडा, चूना इत्यादि क्षारों द्वारा यदि शरीर का कोई स्थान जल गया हो तो इसका उपचार निम्नलिखित विधियों द्वारा करें—

सान्द्र अम्लों की जलन—यदि सान्द्र अम्लों द्वारा शरीर का कोई भाग जल गया हो तो एक गिलास शुद्ध खौलाये हुए जल में दो चम्मच खाने वाला सोडा (Sodium bicarbonate) या साधारण धोबिया सोडा (Washing soda) डालकर उसी घोल से जख्म को धोते रहें। खाने वाले या धोबिया सोडा के अभाव में जलन को धोने के लिए ताजे जल का व्यवहार करें। अम्ल से मुक्ति प्राप्त होने पर जलन की साधारण चिकित्सा के नियमानुसार जख्म की चिकित्सा करें।

दाहक क्षारों की जलन— कास्टिक सोडा, कास्टिक-पोटाश या चूने द्वारा यदि शरीर का कोई भाग जल गया हो तो यथाशीघ्र शुद्ध साफ उबले हुए जल में दो-चार बूँद अम्ल डालकर इस जल से या अम्ल के अभाव में शुद्ध ताजे जल से जखम को धोते रहें। पुनः जलने के उपचार के अन्तर्गत आये हुए नियमों के अनुसार जलन की प्राथमिक चिकित्सा करें।

प्रश्न ५. निम्नलिखित की प्राथमिक चिकित्सा किस प्रकार कीजिएगा ?

(i) साधारण जलना (Simple burn), (ii) द्रवजलन (Scalds), (iii) तुषाराघात (Frost-bite)।

उत्तर— (i) साधारण जलना— साधारणतः आग, गर्म द्रव, दूध, चाय, कॉफी या अन्य रासायनिक द्रवों, जैसे—सान्द्र तेजाब, दाहक क्षार आदि तथा बिजली के तार के सम्पर्क में आने से चमड़ा जल जाता है, इसकी तन्तुएँ नष्ट हो जाती हैं। प्रायः जलने के प्रक्रियास्वरूप चमड़ा लाल हो जाता है, लेकिन फफोला नहीं निकलता। इसे साधारण जलन (Simple burn) कहते हैं।

उपचार—ऐसी अवस्था में जले हुए स्थान पर नारियल, तिल आदि का तेल या वेसलीन लगाने से पीड़ा कम हो जाती है। यदि सोडा उपलब्ध हो, तो जले हुए स्थान पर सोडा के घोल में भींगे कपड़े को रखने से बेचैनी और लहर दूर हो जाती है। साधारण असावधानी और छूत के कारण साधारण जलन भी विषम जलन में परिणत हो जाती है। अतः इसकी चिकित्सा में भी असावधानी बरतनी चाहिए।

विशेष जलन— यदि जलने के कारण फफोले भी उठ गये हों, तो विशेष सावधानी बरतनी चाहिए। फफोले के चारों ओर यदि कपड़े हों, तो उसे काट कर अलग कर दें। फफोला फूटे नहीं, इसके लिए सावधान रहें। फफोले के फूटने से जखम के अन्दर रोगाणुओं के प्रविष्ट होने का भय रहता है। अतः फफोले से छेड़-छाड़ नहीं करें। यदि जला हुआ कपड़ा इसमें सटा हो, तो उसे सटा रहने दें। एक गिलास शुद्ध उबाले हुए ठंढे जल में तीन चम्मच खाने ..ल

सोडा मिले हुए घोल में कपड़ा भिगा कर फफोले पर बैठा दें। कपड़े को तब तक तर रखें, जब तक डाक्टर न आ जाय।

(ii) द्रव-जलन— गर्म जल, गर्म चाय, भाप इत्यादि के सम्पर्क में आने से जो जलन होती है उसे द्रव-जलन कहते हैं। ऐसी जलन में केवल चमड़ा लाल हो जा सकता है, स्थानविशेष में जलन और पीड़ा हो सकती है और फफोले भी उठ सकते हैं।

उपचार— साधारण द्रव-जलन की चिकित्सा साधारण जलन जैसी-ही की जाती है। विसंक्रामक लेप के अभाव में स्थानविशेष पर कोई मीठा तेल, जैसे, नारियल, तीसी या साधारण वेसलीन या क्रीम को लगाकर साफ-सुथरे कपड़े से पट्टी बाँध देना उचित होता है।

(iii) तुषाराघात—शीतप्रधान देशों में अधिक ठंढ के प्रभाव से कुछ लोगों के हाथ-पैर की उँगलियाँ, नाक, कान के शीर्ष भाग चेतनाशून्य हो जाते हैं, उनका रंग सफेद हो जाता है। चेतनाशून्य भाग के अंश कट-कट कर गिरते रहते हैं। लेकिन संवेदन-शक्ति के अभाव में व्यक्तिविशेष को कोई पीड़ा नहीं होती है। ऐसी दशा प्रायः उनलोगों की होती है जो अधिक समय तक बर्फीली जगहों में अपने अंगों को खुला रखते हैं।

उपचार—तुषाराघात से आक्रान्त व्यक्ति को यथाशीघ्र गर्म कमरे में लेटा कर डाक्टर को बुलाने का प्रबन्ध करें। गर्म चाय, दूध या कॉफी पीने के लिए दें। अधिक समय तक गर्म वातावरण में रहने से आराम मिलता है और चेतनाशून्य अंगों में पुनः संवेदनशीलता लौट आती है।

अध्याय ६

रक्तस्राव

प्रश्न १. रक्तस्राव से क्या समझती हैं ? रक्तकेशिकाओं, शिराओं या धमनियों के कटने से रक्त प्रवाहित हो रहा है, इसकी क्या पहचान है ?

उत्तर— रक्तस्राव— रक्त शरीर का एक पोषक तत्त्व है। रक्तस्राव के कारण शरीर में पोषक तत्वों की कमी हो जाती है। शरीर के आन्तरिक अंगों को भोजन नहीं मिल पाता है। फलतः हृदय, फेफड़े, मस्तिष्क इत्यादि अपना काम सुचारु रूप से करने में असमर्थ हो जाते हैं। अन्ततोगत्वा हृदय का धड़कना कम हो जाता है और श्वास-क्रिया मन्द पड़ जाती है। धमनी, शिरा या केशिकाओं के कट जाने से ही रक्तस्राव होता है। रक्तस्राव की पहचान निम्नलिखित है—

(i) केशिकाएं— केशिकाओं से रक्त रिस-रिस कर निकलता है। चर्म की रगड़ से केशिकाएँ फट जाती हैं जिनसे रक्त रिस-रिस कर कम परिमाण में निकलता है।

(ii) शिराएँ— शिराओं का रक्त स्याही लिए लाल होता है। शिराएँ प्रायः शरीर के ऊपरी भागों में होती हैं। इनके कटने से रक्त धीरे-धीरे लगातार बहता रहता है।

(iii) धमनियाँ— धमनियाँ चर्म के नीचे गहराई में होती हैं। घाव गहरा होने पर धमनियाँ कट जाती हैं। धमनियों के कटने से रक्त रुक-रुक कर झोंके से निकलता है। स्रावित रक्त का रंग लाल और चमकीला होता है।

प्रश्न २. रक्तस्राव के कितने भेद हैं ? उनकी क्या पहचान है ?

उत्तर— रक्तस्राव के निम्नलिखित दो भेद हैं—

(१) दृश्य रक्तस्राव,

(२) अदृश्य रक्तस्राव ।

१. दृश्य रक्तस्राव — दृश्य रक्तस्राव में किसी आन्तरिक अंग के जख्मी होने के कारण प्रत्यक्ष रूप से मुँह, नाक, कान, गुदा-मार्ग से या वाह्य आघात के कारण विदीर्ण चर्म होकर रक्त का निकलना सम्मिलित है। साधारणत: धक्का लगने, कुचलने, चोट लगने, हड्डा टूटने, छूरा लगने, पुरानी बीमारियों इत्यादि के कारण जख्म होने से आन्तरिक अंगों का रक्त दृश्य रूप में शरीर के बाहर निकलता है।

२. अदृश्य रक्तस्राव — यकृत, प्लीहा, पैनक्रीज इत्यादि आन्तरिक अंगों के जख्मी होने से रक्त शरीर से बाहर नहीं निकल पाता है, बल्कि स्थानविशेष में जमा होता रहता है। ऐसे रक्तस्राव की पहचान मुश्किल से होती है। साथ ही, ऐसे रक्तस्राव भयानक और प्राय: घातक होते हैं। अदृश्य रक्तस्राव के कुछ विशेष और कुछ साधारण लक्षण होते हैं, जिनके दृष्टिगत होने पर तुरन्त डाक्टर की शरण लेनी चाहिए। अदृश्य रक्तस्राव के लक्षण निम्नलिखित हैं—

(i) चेहरे पर हवाइयाँ उड़ना और ओठों का सफेद होना।

(ii) बैठने पर सर चकराना और मूर्च्छा आना।

(iii) चर्म का ठंढा होना और चेहरे पर पसीना आना।

(iv) तीव्र बेचैनी का होना।

(v) नब्ज का पतला होना और तेज रफ्तार से चलना।

(vi) साँस लेने, बोलने, बैठने, खाँसने इत्यादि में कष्ट होना।

(vii) तेज प्यास का लगना।

(viii) आहत व्यक्ति का बार-बार बेहोश हो जाना।

प्रश्न ३. साधारण रक्तस्राव को रोकने के लिए आप कौन-सा उपाय करेंगी?

उत्तर — शुद्ध ठंढा जल और दबाव ही साधारण रक्तस्राव को रोकने के उत्तम साधन हैं। रक्तस्राव को रोकने के लिए जख्म के मुताबिक स्वच्छ कपड़े की कई तहों को शुद्ध ठंढे जल से भिगोकर घाव पर रखकर ऊपर से पट्टी बाँध

देनी चाहिए। जख्म वाले हिस्से को ठंढे जल से हमेशा तर रखना चाहिए। यदि बर्फ उपलब्ध हो तो बर्फ के जल का ही व्यवहार सर्वोत्तम है। यदि सम्भव हो तो पट्टी के ऊपर बर्फ का टुकड़ा रख देना चाहिए। ऐसा करने से रक्त-केशिकाओं और पतली शिराओं के कटने के कारण उत्पन्न रक्तस्राव बन्द हो जाता है। लेकिन इस विधि से मोटी शिराओं और धमनियों के कटने के कारण उत्पन्न रक्तस्राव नहीं बन्द होता है। ऐसी अवस्था में यदि चोट हाथ या पैर में हो और रक्तस्राव तीव्र गति से हो रहा हो तो हाथ-पैर को ऊपर उठाकर रखने से रक्तस्राव के रुकने में सहायता मिलती है। इसी प्रकार यदि रक्तस्राव सिर के किसी भाग से होता हो, तो आहत व्यक्ति को कुर्सी या खाट पर बिठाकर सहारे के लिए उसकी पीठ के पीछे तकिया लगा देना चाहिए।

प्रश्न ४. धमनी के रक्तस्राव की चिकित्सा का वर्णन कीजिए।

उत्तर— पहचान— धमनियों का रक्त लाल और चमकीला होता है तथा यह झोंके से निकलता है।

चिकित्सा— (i) रोगी को उचित अवस्था (Suitable position) में रखें जिससे कम से कम रक्त बाहर निकले।

(ii) यदि रक्त निकलने वाले अंग में टूट (Fracture) न हों तो उस अंग को ऊपर उठा कर रखें। इससे कम रक्त बाहर निकलता है।

(iii) किसी टूर्निकेट, पैड या अन्य बैंडेज द्वारा कटे हुए घाव पर अप्रत्यक्ष दबाव दें।

(iv) घाव को ढक कर रखना चाहिए जिससे किसी जीवाणु का उस पर आक्रमण न हो सके।

(v) घाव में यदि कोई वस्तु जैसे टूटे हुए शीशे का टुकड़ा, बाल इत्यादि हो तो उसे तुरत निकाल देना चाहिए।

(vi) घाव अगर गन्दा हो गया हो और तुरत किसी शल्यचिकित्सक की सेवा उपलब्ध न होने वाला हो तो घाव को डेटोल से धो देना चाहिए।

(vii) यदि कटे हुए भाग पर रक्त जमा हो गया हो तो उसे छेड़ने की कोशिश न करनी चाहिए।

(viii) टूटे हुए या कटे हुए अंग को किसी चीज का सहारा देना चाहिए।

(ix) तुरत के कटे घाव पर चिपकने वाला मलहम या पलास्टर न लगाना चाहिए।

(x) कटे हुए भाग पर और उसके चारो तरफ त्वचा पर थोड़ा टिंचर आयोडीन लगाकर किसी साफ कपड़ा या रुई से घाव को बाँध देना चाहिए।

प्रश्न ५. दबाव-स्थल क्या है ? इसका कब, कहाँ और कैसे व्यवहार होता है ?

उत्तर— दबाव-स्थल क्या है ?—हमारे शरीर के ऊपर वाले भागों में कुछ ऐसे स्थान हैं, जहाँ पर धमनियाँ हड्डियों के ऊपर से होकर गुजरती हैं। ऐसे स्थानों को दबाव-स्थल (Pressure Points) कहते हैं। कटी धमनियों से रक्तस्राव को रोकने के लिए इन्हीं दबाव-स्थलों का सहारा लेना पड़ता है।

निम्नलिखित अंगों के रक्तस्राव के समय दबाव-स्थल का व्यवहार किया जाता है—

१. सिर का रक्तस्राव—गर्दन से ऊपर सिर के किसी भाग के जख्म से बहते हुए रक्त को बन्द करने के लिए कैरोटिड धमनियों (Carotid arteries) पर दबाव डालना पड़ता है। कैरोटिड धमनियाँ महाधमनी की शाखाएँ हैं जो इसके मेहराब से निकलकर सिर के विभिन्न भागों को रक्त प्रदान करती हैं। अँगूठे को स्वरतन्त्र (Larynx) और गर्दन की ऊर्ध्वपेशी के बीच स्थित गढ़े में रखकर तब तक दबाये रखें, जब तक रक्त का निकलना बन्द न हो जाय।

२. छाती का रक्तस्राव—छाती से निकलने वाले रक्त को रोकने के लिए हँसली के निम्न-स्थिति दबाव-स्थल का सहारा लेना पड़ता है। वक्ष-स्थल के जख्म से निकलने वाले रक्त को रोकने के लिए हँसली की हड्डी के नीचे दबाव डालना चाहिए।

३. हाथ का रक्तस्राव— हाथ के किसी भाग से तीव्र रक्तस्राव को रोकने के लिए ब्रेकियल दबाव-स्थल पर दबाव डालना चाहिए।

४. पैर का रक्तस्राव— जांघ, घुटना, पैर इत्यादि के जख्म के रक्तस्राव को बन्द करने के लिए फेमोरल दबाव-स्थल का उपयोग किया जाता है। इसके लिए आहत व्यक्ति को बैठाकर उसके घुटनों को मोड़ दिया जाता है। पुनः जाँघ की जड़ में अवस्थित धमनियों को दोनों अँगूठों से पकड़कर तब तक दबाये रहें, जब तक रक्त का स्राव रुक नहीं जाय।

प्रश्न ६. टुर्निकेट का व्यवहार कब और कैसे किया जाता है?

उत्तर— यदि बाँहों या ऊपरी पैर के मध्य भाग के नीचे जख्म से तेज बहता हुआ रक्त अन्य किसी विधि से नहीं रुकता हो, तो टुर्निकेट का प्रयोग करना चाहिए।

टुर्निकेट का व्यवहार प्रायः ऐसी अवस्थाओं में ही होता है, जब अन्य किसी विधि से रक्त-बहाव का रोकना सम्भव नहीं होता। टुर्निकेट के व्यवहार में काफी सावधानी बरतनी पड़ती है। अन्यथा कुव्यवहार से आक्रान्त व्यक्ति की मृत्यु शीघ्र हो जाती है। टुर्निकेट का व्यवहार बहुत ही सरल है। इसके लिए एक लम्बे मजबूत कपड़े का टुकड़ा चाहिए। कपड़े के टुकड़े के अभाव में नेकटाई, रूमाल, मोटी मजबूत डोरी इत्यादि से भी काम चल सकता है।

जख्म वाले हाथ या पैर को थोड़ा ऊपर उठा कर रक्त-बहाव की दिशा से ऊपर टुर्निकेट को लपेट कर आधी गाँठ लगा दें। अब इस गाँठ पर लकड़ी का कोई लम्बा टुकड़ा, पेंसिल या फाउण्टेनपेन रख कर पूरी गाँठ बाँध दें। अब लकड़ी को धीरे-धीरे तब तक ऐंठें, जब तक खून का बहना बन्द न हो जाय। सुविधा के लिए टुर्निकेट को तब तक के लिए बँधा रहने दें, जब तक डाक्टर न आ जाय। टुर्निकेट बाँधते समय ध्यान रखना चाहिए कि यह जख्म से कुछ हट कर हो तथा इतना कसा नहीं हो कि आहत व्यक्ति को बेचैनी हो जाय।

प्रश्न ७. निम्नलिखित स्थिति में चिकित्सा कैसे कीजिएगा — नकसीर, मुँह से रक्तस्राव, कान से रक्तस्राव ?

उत्तर—नकसीर— ग्रीष्मकाल में कुछ बच्चों की नाक से ताजा, चमकीला रक्त टप-टप गिरता रहता है। यह विशेषकर नाक के भीतर की रक्त-केशिकाओं के स्वतः फटने के कारण होता है। नाक पर चोट लगने या जोर से नाक साफ करने के कारण रक्त-केशिकाएँ प्रायः फट जाती हैं और रक्त-स्राव होता है। नाक के रक्तस्राव को रोकने के लिए निम्नलिखित उपचार करना चाहिए—

(i) आहत व्यक्ति के पहने हुए कोट, कमीज आदि को सावधानीपूर्वक उतार दें।

(ii) उसे सीधा करके हवादार स्थान पर इस प्रकार कुर्सी पर बैठा दें कि उसका सिर आगे की ओर झुका हो।

(iii) उसे मुँह से साँस लेने के लिए उत्साहित करें।

(iv) नाक में रूई, कपड़ा आदि डाल कर रक्त को बन्द करने का प्रयत्न न करें।

(v) आहत को नाक सुड़कने न दें।

(vi) आहत की नाक के आगे के कोमल भाग को चुटकी से दबाये रखें। ऐसा करना उसे कष्टदायक मालूम होगा, लेकिन चन्द मिनटों में ही कटे स्थान पर रक्त के स्वतः जमने के कारण रक्तस्राव रुक जायगा।

मुँह से रक्तस्राव— आमाशय में जख्म हो जाने से प्रायः खाया हुआ पदार्थ रक्तयुक्त उल्टी के साथ गिरता है, या आहत व्यक्ति केवल रक्त ही उल्टी करता है। ऐसे रक्तस्राव में रक्त की मात्रा को देख कर लोग प्रायः घबड़ा जाते हैं। लेकिन ऐसे रक्तस्राव में केवल शुद्ध रक्त ही नहीं रहता है बल्कि उसमें अधिकांश आमाशय-रस भी मिला रहता है। इस रक्त के साथ आमाशय-रस के मिले रहने से ही रक्त के परिमाण में वृद्धि हुई जान पड़ती है।

उपचार— ऐसी अवस्था में रोगी को लेटा देना चाहिये तथा यथाशीघ्र डाक्टर को बुलाने का प्रबन्ध करना चाहिए। मुँह द्वारा खाने-पीने की कोई भी चीज नहीं देनी चाहिए। रोगी को गरम रखने का प्रयत्न करना चाहिए।

कान से रक्तस्राव— खोपड़ी के धरातल पर चोट पहुँचने से या कर्णमार्ग में जख्म होने से कान से रक्तस्राव होने लगता है। इस अवस्था में रोगी को इस प्रकार सुला दें कि उसका सिर धड़ की अपेक्षा थोड़ा ऊँचा रहे तथा सिर इस तरह हो कि आहत कान ऊपर रहे। कान में किसी चीज को डाल कर रक्तस्राव को बन्द करने का प्रयत्न नहीं करें। आहत कान पर हल्की पट्टी डाल कर डाक्टर की प्रतीक्षा करें।

प्रश्न ८. रक्तस्राव रोकने के साधारण नियमों का उल्लेख करें।

उत्तर— रक्तस्राव को रोकने के निम्नलिखित साधारण नियम हैं—

(i) आहत व्यक्ति को विश्राम की अवस्था में रखा जाय। यदि वह लेटना चाहे तो उसे लेटा देना चाहिए।

(ii) जिस स्थान से रक्तस्राव होता हो उसे यथासंभव हृदय से ऊँचा रखें।

(iii) जहाँ से रक्तस्राव होता हो उसे कीटाणुरहित गद्दी से ढक दें तथा कस कर पट्टी बाँध दें।

(iv) अगर धमनी से रक्तस्राव होता हो तो दबाव-स्थल द्वारा रक्त के बहाव को रोकने की चेष्टा करें।

(v) यदि अन्य साधन कामयाब न हो तो टुर्निकेट का व्यवहार करें तथा डाक्टर को बुलायें।

(vi) जख्म को छूएँ नहीं। यदि छूना जरूरी हो तो अपने हाथों को गर्म जल और साबुन से धोने के बाद ही उसे छूएँ।

(vii) अगर जख्म के ऊपर रक्त जम गया हो तो उसे मत हटायें।

(viii) अगर हाथ से रक्त बहता हो और उसे ऊपर उठाकर रखना संभव नहीं हो तो कम-से-कम झोले को सहारा दें।

अध्याय ७

विष

प्रश्न १. विष किसे कहते हैं ? विष-प्राप्ति के साधनों के सोदाहरण नाम लिखें।

उत्तर— विष वे द्रव्य हैं जिनके व्यवहार से शरीर में अस्वस्थ प्रतिक्रियाएँ दिखाई पड़ती हैं। इनके खाने से पेट में दर्द, वमन, दस्त, मूर्च्छा इत्यादि के लक्षण कम या अधिक रूप में दिखाई पड़ने लगते हैं। अधिक मात्रा में इनके शरीर में प्रविष्ट होने से व्यक्तिविशेष की मृत्यु हो जाती है।

विष-प्राप्ति के निम्नलिखित साधन हैं—

१. वानस्पतिक विष – अफीम, गाँजा, भाँग, चरस, धतूरा, शराब इत्यादि वानस्पतिक पदार्थों की मात्रा कभी-कभी ओषधि का काम करते हैं, पर अधिक मात्रा में इसके सेवन करने से शरीर में विष के लक्षण दिखाई पड़ने लगते हैं।

२. घरेलू विष – चूहों को मारने के लिए रैट-पिल्स (Rat Pills) बाजार में मिलते हैं, जिनके व्यवहार से ऐसी कई घटनाएँ हुई हैं कि बच्चों की मृत्यु हो गयी है। चूहों को मारने के लिए साइनाइड-गैस बिलों में दी जाती है। यह एक अत्यन्त तीव्र घातक विष है। इसी प्रकार कीट-पतंगों तथा अनावश्यक घास-पातों (Weeds) का नाश करने के लिए विभिन्न प्रकार के रासायनिक द्रव्य चूर्ण या 'स्प्रे' (Spray) घातक विष का काम करते हैं।

३. विषाक्त भोजन— कुछ ऐसे कन्द, मूल, फल और बीज हैं जिनके व्यवहार से हमारे शरीर में विषाक्त लक्षण उत्पन्न हो जाते हैं। गुच्छियाँ (Toad Stools) भोजन के काम में आती हैं, लेकिन इनकी कुछ ऐसी भी जातियाँ हैं जिनके व्यवहार से मृत्यु हो जाती है। भोजन जहाँ हमारे लिए आवश्यक है, वहाँ दूषित भोजन हमारे लिए त्याज्य भी है।

(b) यदि विष क्षारीय हो तो सिरका, नीबू का रस आदि आम्लिक पदार्थों का तनु घोल देना चाहिए।

(c) यदि ये विषनाशक पदार्थ (Antidotes) सहज प्राप्य न हों, या विष की प्रतिक्रिया (Reaction of the poison) मालूम न हो तो काफी मात्रा में पानी या दूध पिलाना चाहिए।

(xii) यदि रोगी ने कोई ऐसा विष खा लिया हो जिससे नींद नहीं आती हो तो रोगी को जगाकर रखना चाहिए। यदि विष अफीम के कारण हो तो तुरत रोगी को कुछ जल में पोटाशियम परमैंगनेट १० ग्रेन मिलाकर देना चाहिए। यह आध-आध घण्टे पर दुहराना चाहिए।

प्रश्न ३. अफीम के विष का क्या प्राथमिक उपचार करेंगी ?

उत्तर— अफीम कालापन लिये भूरे रंग का एक ठोस पदार्थ है। यह पोस्ते के पौधे के रस को गाढ़ा कर तैयार किया जाता है। मादक द्रव्य के रूप में या ओषधियों में इसका व्यवहार होता है। गँवार माताएँ बच्चों को सुलाने के लिए उन्हें दूध में थोड़ी अफीम मिलाकर पिलाती हैं। आये दिन हम सुनते भी हैं कि अमुक व्यक्ति ने अफीम खाकर आत्महत्या कर ली है।

उपचार — यदि पता लग जाय कि व्यक्तिविशेष ने अफीम खायी है और वह सचेत अवस्था में है, तो उसे वमन कराने का प्रबन्ध करें। यदि उपलब्ध हो, तो एक गिलास जल में पोटाशियम-परमैंगनेट के कुछ रवे डालकर उसका घोल पिलायें। रोगी को जगाये रखें। यदि रोगी चाहे, तो उसे गर्म चाय या कॉफी पीने के लिए दें।

प्रश्न ४. विषों से सामान्य सुरक्षा के नियम बतायें।

उत्तर— प्राय: असावधानी के कारण लोग अनजाने ही विषपान कर लेते हैं, अतः विषों से बचने के लिए निम्नलिखित नियमों का पालन करना चाहिए।

(i) बहुत-सी ओषधियाँ ऐसी हैं जिनके अधिक मात्रा में सेवन से वे विष का काम करती हैं। अतः उनकी उचित मात्रा को ही व्यवहार में लाना चाहिए।

(ii) जिन ओषधियों में लेबिल (Label) नहीं लगे हों, या लेबिल गिर गये हों, उनका व्यवहार करना उचित नहीं है।

(iii) टिंचर-आयोडीन, चूहा मारने की गोली, विसंक्रामक द्रव्य इत्यादि की बोतलों में लेबिल लगाकर उन्हें बच्चों की पहुँच के बाहर या आलमारी में बन्द करके रखना चाहिए।

(iv) अँधेरे में या भलीभाँति न हिलाये हुए किसी ओषधि का सेवन करना उचित नहीं है।

(v) नींद लाने की ओषधियाँ प्रायः विष का काम करती हैं। इनका अधिक मात्रा में व्यवहार करने से प्रायः लोगों की मृत्यु हो जाती है। ऐसी ओषधियों को लोग प्रायः अपने बिस्तरे पर रखकर सोते हैं और भूल से उनका दोबारा व्यवहार कर लेते हैं। अतः उन्हें पहुँच से दूर रखने की कोशिश करनी चाहिए।

(vi) विषैले द्रव्यों को साधारण ओषधि की बोतलों में नहीं रखें। अक्सर ओषधि समझकर लोग उनका व्यवहार कर धोखे में पड़ जाते हैं। अतः विषों को उनकी ही बोतलों में लेबुल लगाकर रखें।

(vii) बिना डाक्टर की सलाह के, कोई भी ओषधि, किसी भी मात्रा में, सेवन में नहीं लायें। पेटेण्ट दवाइयों की सेवन-मात्रा (Dose) बोतल पर ही लिखी रहती है। उनका निर्धारित मात्रा से अधिक सेवन नहीं करें।

(viii) किसी ने यदि जाने या अनजाने किसी विष का सेवन कर लिया हो, तो बची हुई वह विषैली दवाइयाँ या अन्य वस्तु, उसकी शीशी, या आक्रान्त व्यक्ति की उल्टी को सुरक्षित रखें। इससे निदान में सहूलियत होती है।

अध्याय ८

सर्पदंश

प्रश्न १. विषैले सर्पदंश (Poisonous snake bite) के क्या लक्षण हैं ?

उत्तर— व्यक्तिविशेष में साँप काटने के लक्षण, उसकी विष-क्षमता, विष के परिमाण आदि पर निर्भर करते हैं। साँप काटने के लक्षण निम्नलिखित हैं—

(i) सर्प-दंश के चिह्न। विषैले साँप के काटने से ऐसा (:) चिह्न आहत स्थान पर वर्त्तमान रहता है। यदि दो से अधिक चिह्न हों, तो साँप विषैला नहीं है।

(ii) काटे हुए स्थान में तथा उसके आसपास दर्द और चेतनशून्यता होती है।

(iii) हाथ-पैरों में कम्पन और खड़े होने की शक्ति का ह्रास।

(iv) मुँह से झाग और लार का टपकना और जीभ का बाहर निकल आना।

(v) बोलने और निगलने की शक्तिहीनता।

(vi) कभी-कभी उल्टी का होना, या जी का मिचलाना।

(vii) आँखों की पुतलियों का संकुचित होना।

(viii) श्वास की क्रिया का मंद पड़ जाना तथा साँस लेने में कष्ट का बोध करना।

(ix) मूर्च्छा-जैसे लक्षणों का दिखाई पड़ना।

(x) शरीर में अकड़न, शीत-श्वेद और हृदय तथा साँस की गति के रुकने से मृत्यु का होना।

प्रश्न २. साँप काटने पर आप क्या प्राथमिक उपचार करेंगी ? अथवा, सर्पदंश के उपचार के साधारण नियम क्या हैं ?

उत्तर—साँप के काटने की खबर पाते ही प्राथमिक चिकित्सक को उपलब्ध सामान के साथ, यथाशीघ्र घटनास्थल पर पहुँचकर निम्नलिखित नियमों के अनुकूल आहत को सहायता देनी चाहिए—

(i) डाक्टर को बुलाने का प्रबन्ध करें।

(ii) जखम की जाँच कर या यदि साँप मारा गया हो, या आहत से पूछकर साँप का निर्णय करें कि साँप विषैला है या नहीं।

(iii) यदि साँप विषैला हो, तो रक्त-प्रवाह में विष को मिलने से रोकने का यथाशीघ्र प्रबन्ध करें।

(iv) यदि हाथ की उँगलियों में साँप ने काट खाया हो तो बंधन केहुनी के ऊपर बाँह में लगायें। यदि पैर में काटा हो तो बंधन जाँघ में लगायें। बंधन मोटी रस्सी, मजबूत फीते, रबर की लचीली नली, कपड़े के मोटे मजबूत किनारे का हो सकता है। एक स्थान पर अधिक समय तक बंधन के रहने से नीचे के भाग में सूजन हो जाती है और कष्ट होता है। अतः बंधन को २०-२० मिनट पर बीच-बीच में ढीला कर दें। ऐसा तब तक करें, जब तक डाक्टर नहीं आ जाय।

(v) बंधन लगाने के उपरान्त जखम में और काटे हुए स्थान पर चीरा लगाकर उसमें पोटाशियम परमैंगनेट भर दें। ऐसा करने से विष का प्रभाव कम हो जाता है।

(vi) रोगी को धीरज बँधाते रहें। प्रायः भय और घबराहट से ही लोगों की मृत्यु हो जाती है।

(vii) यदि रोगी सचेत हो तो उसे पीने के लिए चाय, कॉफी या गर्म दूध दें।

(viii) यदि श्वास-क्रिया रुक गयी हो तो कृत्रिम प्रणाली से साँस लाने का प्रबन्ध करें।

(ix) यदि मूर्च्छा आ गयी हो तो उसे दूर करने का उपाय करें।

(x) यदि संभव हो और साँप की जाति का पता लग जाय तो विष प्रति-रोधक सीरम (Anti venom serum) डाक्टर या कुशल व्यक्ति द्वारा दिलवा दें।

अध्याय ९

लू लगना

प्रश्न १. लू लगने के क्या कारण हैं ? उसके लक्षण और प्राथमिक चिकित्सा पर प्रकाश डालें।

उत्तर—कारण और लक्षण—गर्म वायु में अधिक समय तक धूप में नंगे बदन और खुले सिर काम करने से व्यक्तिविशेष को लू लगने से सिर में दर्द होता है। अक्सर चक्कर आने लगता है और रोगी प्रायः अचेत हो जाता है। चेतना लौट आने पर उसे उल्टी होने लगती है। शरीर का तापक्रम बहुत बढ़ जाता है। आक्रान्त व्यक्ति बेचैन होने लगता है। उसकी नाड़ी तेज चलने लगती है, दिल जोर से धड़कने लगता है तथा बीच-बीच में उसे मूर्च्छा आ जाती है।

चिकित्सा—(i) रोगी को ठंढे स्थान में लाया जाय।

(ii) रोगी को लेट जाने के लिए कहा जाय। लेटी हुई अवस्था में उसका सिर और गर्दन उठा रहना चाहिए।

(iii) रोगी को पर्याप्त शुद्ध वायु मिलने का प्रबन्ध हो।

(iv) रोगी के सिर पर बर्फ या ठंढा पानी का थैला देना चाहिए। बर्फ या ठंढा पानी का थैला सिर के अतिरिक्त नाक पर भी देना चाहिए।

(v) रोगी को घंटे-घंटे स्नान कराते रहें या बीच-बीच में शरीर को ठंढे जल में भींगे तौलिये से पोछा करें। जब शरीर ठंढा हो जाय तो नहलाना या शरीर को भींगे तौलिए से पोंछना बन्द कर दें।

(vi) रोगी को पीने के लिए ठंढा जल दें। ध्यान रहे कि अचेत अवस्था में कोई द्रव रोगी के मुँह में न डालें।

अध्याय १०

अस्थिभंग

प्रश्न १. मोच, अस्थिविस्थापन एवं अस्थिभंग किसे कहते हैं ? इनकी प्राथकिक चिकित्सा किस प्रकार करेंगी ?

उत्तर— मोच— जोड़ों पर हड्डियाँ एक-दूसरे स्नायुओं (Ligaments) द्वारा बँधी रहती हैं। प्रायः पैर के ऊपर नीचे पड़ने से स्नायु तन जाती है जिसे मोच कहते हैं। मोच बहुधा कलाई या टखने में होता है। मोच होने पर स्थानविशेष में सूजन और दर्द होता है।

उपचार— (i) स्थानविशेष को आराम की स्थिति में रखें, (ii) मोच लगे स्थान को ठंढे जल से तर रखें या बर्फ से रगड़ें, इससे सूजन कम होती है। (iii) अगर सूजन और पीड़ा बनी ही रहे ता स्थानविशेष में गर्म सेंक या इम्ब्रोकेशन द्वारा मालिश करें।

अस्थिविस्थापन— अस्थिविस्थापन भी मोच की तरह जोड़ों पर ही होता है। हाथ-पैर के ऊपर नीचे पड़ने से या गिर जाने या आघात के कारण जोड़ पर की हड्डियाँ अपने स्वाभाविक स्थान से खिसक जाती हैं। ऐसी स्थिति को अस्थिविस्थापन कहते हैं। अस्थिविस्थापन प्रायः कन्धे और कूल्हे की जोड़ों पर होता है।

उपचार— (i) अस्थिविस्थापन का उपचार सुयोग्य डाक्टर से करायें।

(ii) जब तक डाक्टर न आये तब तक घायल व्यक्ति के आक्रान्त अंग को तकिये के सहारे आराम की अवस्था में रखें।

(iii) अगर डाक्टर के पास ले जाना हो तो अंगविशेष को झोली (Sling) या अन्य विधियों द्वारा सहारा देकर ही ले जायँ।

अस्थिभंग— अस्थिभंग के निम्नलिखित लक्षण हैं—

(i) स्थानविशेष में दर्द उत्पन्न होता है।

(ii) अंगविशेष कुरूप हो जाता है और वहाँ सूजन हो जाती है।

(iii) अंगविशेष को हिलाना-डुलाना मुश्किल हो जाता है।

(iv) बहुधा अंग की स्वाभाविक लम्बाई कम या अधिक हो जाती है।

(v) आहत व्यक्ति पीड़ा का अनुभव करता है।

उपचार— (i) घायल व्यक्ति की क्षतिग्रस्त हड्डी को अचल किये बिना उसे घटनास्थल से न हटायें।

(ii) स्वयं हड्डी बैठाने की चेष्टा न करें।

(iii) यदि आहत व्यक्ति को संक्षोभ (Shock) लग गया हो तो उसे दूर करने का प्रयत्न करें।

(iv) यदि स्थानविशेष से रक्तस्राव होता हो तो उसे शुद्ध जल और साबुन से धोकर उसपर रुई रखकर पट्टी से बाँध दें।

(v) अगर रक्तस्राव अधिक मात्रा में हो तो सर्वप्रथम उसे ही रोकने की चेष्टा करें।

(vi) घायल को अधिक से अधिक विश्राम दें।

(vii) सुयोग्य डाक्टर को बुलाकर चिकित्सा करायें।

(viii) अगर आहत व्यक्ति को डाक्टर के पास ले जाना हो तो दो पट्टियों के सहारे टूटे स्थान को बाँध कर ही उसे ले जायँ।

प्रश्न २. मोच क्या है ? मोच और हड्डी की टूट (अस्थिभंग) में क्या अन्तर है ? एक मनुष्य के पैर की हड्डी टूट गयी है। उसे आप क्या प्राथमिक चिकित्सा देंगी ?

उत्तर—पहले प्रश्न का उत्तर देखें।

प्रश्न ३. घायल को एक स्थान से दूसरे स्थान तक ले जाने की विधियाँ कौन-कौन-सी हैं ?

उत्तर—घायल को एक स्थान से दूसरे स्थान तक ले जाने की निम्न-लिखित विधियाँ हैं—

१. एक वाहक-विधि—जब प्राथमिक सहायक के अतिरिक्त और कोई दूसरा व्यक्ति आहत को ले जानेवाला नहीं होता तो आहत की दशा एवं अपनी सुविधा को ध्यान में रखकर निम्नलिखित विधियों द्वारा आहत को अस्पताल में सुरक्षित स्थान में पहुँचाया जा सकता है—

(a) मानव-बैसाखी—यदि आहत को साधारण चोट लगी हो और वह साधारण मदद से चलने योग्य हो तो मानव-बैसाखी द्वारा वह थोड़ी दूर सहज ही ले जाया जा सकता है। आहत व्यक्ति के जख्मी अंग की बगल में खड़े होकर अपनी बाँह उसकी कमर में डालकर उसके कूल्हे पर के वस्त्र को मजबूती से पकड़ लें और उसकी बाँह अपने गले में डालकर उसके पहुँचे को पकड़ लें। अब धीरे-धीरे टहलाते हुए उसे निर्दिष्ट स्थान पर ले जायँ। यदि कोई छड़ी या छाता उपलब्ध हो तो आहत के दूसरे हाथ में पकड़ा दें। इससे आहत को चलने में अधिक मदद मिलेगी।

(b) पिठलदना-विधि—यदि आहत व्यक्ति सचेत तथा वजन में हल्का हो और उसे दूर ले जाना हो, तो पिठलदना-विधि (Pick-a-back) ही सर्वोत्तम है। इस विधि में आहत को पीठ पर इस प्रकार लाद लिया जाता है कि उसकी दोनों जाँघ वाहक की कमर पर और जसके दोनों हाथ वाहक के गले में, सामने की ओर लगे होते हैं। आहत अपने दोनों हाथों को पकड़े रहता है। इसी प्रकार वाहक भी आहत के घुटनों में अपने हाथों को फँसाये रखता है।

(c) विशेष लादन-विधि—यदि आहत अचेत है, लेकिन हल्का है तो विशेष प्रकार की लादन-विधि द्वारा उसे कुछ दूर तक ले जाया जा सकता है। आहत को अपने कन्धे पर इस प्रकार उठा लें कि उसके पेट का निम्न भाग

आपके दाहिने कन्ध पर हो और आपका दाहिना हाथ उसकी दोनों जाँघों के बीच में फँसा हो, उसकी दायीं कलाई आपकी दायीं कलाई की पकड़ में और उसका सम्पूर्ण भार आपके कन्धे पर हो।

२. द्विवाहक-विधि—यदि आहत अचेत हो या तीव्र आघात के कारण अपने को सहारा नहीं दे सकता हो तथा प्राथमिक सहायक के अलावे एक और सहायक उपलब्ध हो तो निम्नलिखित विधि का सहारा लेना चाहिए—दोनों सहायक आहत के पीछे आमने-सामने नियमानुकूल खड़े हो जाते हैं, फिर वे दोनों परिवाहक आहत के समीप वाले हाथ से उसकी कमर के पास के कपड़े को मजबूती से पकड़ लेते हैं और अपने दूसरे हाथ से आहत की जाँघ के नीचे कुलावा बनाकर आहत को झुक कर उठा लेते हैं। आहत को आराम रहे तथा उसे नखों से अघात न पहुँचे, इसलिए कुलावे पर रुमाल बिछा लिया जाता है। प्रत्येक वाहक अपने पीछे वाले पैर को ही पहले आगे बढ़ाता है और धीरे-धीरे आगे की ओर बढ़ता जाता है।

अध्याय ११

आँख, कान और नाक आदि में बाहरी चीजें

प्रश्न १. आँख में गये हुए धूल के कणों को कैसे निकालेंगी ?

उत्तर—प्राय: रेल, मोटर आदि की सवारी करने के समय या यों ही आंधी के समय कोयला, धल आदि के कण आंखों में चले जाते हैं, जिससे हमें पीड़ा होने लगती है और हमारी आंखें लाल हो जाती हैं। इसके लिए निम्न-लिखित उपचार करना चाहिए।

(i) अगर धूल के कण या कीड़ा आँख के ऊपर वाली पलक के भीतर हो तो ऊपर वाली पलक को नियमानुकूल उठाकर सावधानी के साथ नीचे वाली पलक को इसके अन्दर कर दें। पलकों की बरौनियों में फँस कर कण या कीड़े बाहर निकल जायँगे। अगर एक बार में नहीं निकले तो इस क्रिया को कई बार दुहरायें।

(ii) यदि कण नीचे वाली पलक के भीतर हो तो इसे उठाकर ऊपर वाली पलक को इसके भीतर कर दें।

(iii) अगर किसी साथी की आँख में धूल के कण आदि चले गये हों और उपर्युक्त विधियों से न निकले तो सलाई की काठी के सहारे उसकी पलकों को उठाकर धोती, रुमाल या किसी साफ कपड़े के कोने को मोड़कर उसे बत्ती की तरह बना लें और उसके द्वारा भीतर के पदार्थ को निकालें।

(iv) एक गिलास गुनगुने जल में चाय की चम्मच भर खाने वाले सोडे के घोल या इसके अभाव में शुद्ध ताजे जल से आँखों को धोयें।

(v) यदि उपर्युक्त विधियों से भी आँख में गयी हुई वस्तुएँ न निकलें या यदि आँखों में सूई, सलाई, पिन आदि कोई वस्तु भीतर चली जाय तो उसे शीघ्र डाक्टर के पास ले जायँ। डाक्टर के पास ले जाते समय आँख पर रुई या साफ कपड़े की पट्टी बाँध दें।

प्रश्न २. नाक में फँसी हुई चीजों को किस तरह निकालेंगी ?

उत्तर—प्रायः अनाज के ढेरों में खेलते समय चना, मटर आदि के दाने को छोटे बच्चे अपनी नाकों में घुसेड़ लेते हैं। नाक में जाकर ये दाने फूल जाते हैं जिससे बच्चों को साँस लेने में कष्ट होने लगता है। इन दानों को निकालने में अधिक सावधानी की जरूरत है।

उपचार—बच्चे को मुँह द्वारा साँस लेने के लिए उत्साहित करें, जिसे वह नाक बन्द होने के कारण स्वतः करेगा। जिस नथने में अनाज के दाने समाये हों उसके भिन्न नथने या मुँह द्वारा साँस लेकर बन्द नथने द्वारा साँस निकलवायें अथवा सुँघनी या नस सुँघाकर छींक लाने का प्रबन्ध करें। जोर

से छींक आने से ये दाने प्रायः निकल आते हैं। अगर इन उपचारों से भी नाक के अन्दर गये दाने नहीं निकलें तो लड़के को यथाशीघ्र किसी डाक्टर के पास ले जायँ। किसी नुकीली वस्तु से स्वयं निकालने की चेष्टा न करें।

प्रश्न ३. कान में कीड़े चले गये हैं, इन्हें कैसे निकालेंगी ?

उत्तर— प्रायः खेलते समय बच्चे मोती या अनाज के दाने अपने कानों में डाल लेते हैं या अनजाने कुछ कीड़े-मकोड़े, अकारण कानों में समा जाते हैं जिससे बच्चों को बेचैनी और कष्ट होने लगता है।

उपचार— कुछ कीड़े-मकोड़े ऐसे हैं जो प्रकाश द्वारा आकर्षित होते हैं, अतः कान के निकट टार्च दिखलायें। यदि इससे कीड़े नहीं निकलें तो कान में तिल, नारियल या अन्य किसी तेल को हल्का गर्म करके कान में डालें और सिर को इस प्रकार टेढ़ा कर लें कि आक्रान्त कान ऊपर हो; इसी अवस्था में सिर को थोड़ी देर तक रहने दें। गर्म तेल के कारण कीड़ा मरकर तथा तेल की अपेक्षा हल्का होने के कारण उपलाकर बाहर निकल आयेगा ? यदि ऐसा करने से भी कीड़े नहीं निकलें तो बच्चे को किसी डाक्टर के पास यथाशीघ्र ले जायँ। किसी नुकीली चीज से इन्हें निकालने का प्रयत्न न करें।

भाग ४

गृह-परिचर्या

अध्याय १

गृह-परिचारिका के गुण

प्रश्न १. गृह-परिचारिका के क्या-क्या गुण हैं, उल्लेख करें।

उत्तर— गृह-परिचारिका में निम्नलिखित गुणों का होना आवश्यक है —

१. सेवा की भावना— प्रत्येक परिचारिका के हृदय में सेवा की भावना का होना आवश्यक है। यह प्रत्येक औरत में स्वभावतः पाया जाता है।

२. शरीर-रचना और स्वास्थ्य-सम्बन्धी ज्ञान— प्रत्येक परिचारिका को शरीर की रचना तथा स्वास्थ्य-सम्बन्धी नियमों का साधारण ज्ञान रहना आवश्यक है।

३. वैयक्तिक सफाई— प्रत्येक परिचारिका को स्वयं स्वस्थ्य और तन्दुरुस्त होना चाहिए। उसे सफाई के नियमों से अवगत होना चाहिए तथा उसका पालन करना चाहिए। उसके कपड़े साफ-सुथरे, हल्के और चुस्त होने चाहिए।

४. परिचर्या के साधनों के उपयोग का ज्ञान— रोगी का टेम्परेचर लेना, उसे चार्ट पर अंकित करना, पट्टी बाँधना इत्यादि बातों की जानकारी एवं इनमें काम आने वाले उपकरणों के उपयोग का ज्ञान प्रत्येक परिचारिका को रहना आवश्यक है।

५. निरीक्षण-ज्ञान— प्रत्येक परिचारिका में उत्तमकोटि का निरीक्षण-गुण होना आवश्यक है ताकि डाक्टर के आने पर रोगी की अवस्था का सही-सही हालत वह बतला सके।

६. कर्त्तव्यपरायणता— प्रत्येक परिचारिका को अपने कर्त्तव्यों का ज्ञान होना आवश्यक है। डाक्टर के निर्देशानुसार उसे रोगी की सेवा अपना कर्त्तव्य समझ कर ही करनी चाहिए।

७. कार्यकुशलता एवं प्रत्युत्पन्नमतित्व— प्रत्येक परिचारिका को कार्य-कुशल और प्रत्युत्पन्नमति होना चाहिए।

८. सहृदयता— परिचारिका को रोगी के प्रति सहानुभूति और सहृदयता रखनी चाहिए।

९. हँसमुख एवं मृदुभाषी— परिचारिका को हँसमुख एवं मृदुभाषिणी होना आवश्यक है ताकि उसकी मीठी बोली से रोगी प्रसन्न रहे।

(x) परिचर्या के नियमों की जानकारी— प्रत्येक परिचारिका को परि-चर्या के नियमों से अवगत रहना चाहिए।

प्रश्न २. परिचारिका के कर्त्तव्यों का उल्लेख कीजिए।

उत्तर— परिचारिका के निम्नलिखित कर्त्तव्य हैं—

(i) रोगी के कमरे को साफ-सुथरा एवं सभी तरह से स्वास्थ्यवर्द्धक बनाये रखना।

(ii) रोगी के बिस्तरे को साफ-सुथरा एवं आरामदेह रखना।

(iii) समय पर रोगी को पाखाना-पेशाब कराना, मुँह धुलाना, स्पंज आदि करना, साफ-सुथरा कपड़ा पहनाना एवं उसका बाल सँवारना।

(iv) समय पर रोगी को दवा एवं पथ्य देना।

(v) समयानुसार रोगी का टेम्परेचर एवं साँस का गति आदि की जाँच करना।

(vi) आवश्यकता पड़ने पर रोगी को सेंक देना एवं मालिश करना।

(vii) ज्वर बढ़ जाने पर ठंढा स्पंज करना तथा बर्फ की टोपी लगाना।

(viii) जख्म वाले रोगी की मरहमपट्टी करना।

(ix) रोगी की अवस्था का निरीक्षण करना एवं डाक्टर के आने पर सभी बातों को बतलाना।

(x) रोगी के खाने-पीने के बरतनों को विसंक्रमित करते रहना।

(xi) रोगी के मल-मूत्र, थूक, वलगम इत्यादि में चूना या अन्य कीटाणु-नाशक ओषधि मिलाकर मिट्टी में गाड़ देना।

(xii) अन्य सभी कार्य जिनसे रोगी कम-से-कम समय में रोगमुक्त हो सके।

अध्याय २

रोगी का कमरा

प्रश्न १. रोगी का कमरा कैसा होना चाहिए, इसका वर्णन करें।

उत्तर— साधारण घरों में रोगी को रखने के लिए कमरे के चुनाव में निम्नलिखित बातों पर ध्यान देना चाहिए—

(i) कमरे की स्थिति— रोगी का कमरा कोलाहल से दूर घर के शान्त भाग में होना चाहिए। वह कमरा पाखाना और स्नानघर से नजदीक होना चाहिए। अगर रोगी के कमरे से स्नानघर और पाखाना लगा हुआ हो तो वह अधिक सुविधाजनक होगा।

(ii) कमरे की विशेषताएँ— रोगी का कमरा बड़ा होना चाहिए। उसका फर्श कम-से-कम एक हजार वर्ग फुट जरूर रहना चाहिए। कमरे का फर्श पक्का रहना चाहिए। साथ-ही-साथ कमरा हवादार होना चाहिए।

(iii) कमरे में प्रकाश— रोगी का कमरा ऐसा होना चाहिए जिसमें सबेरे के समय पर्याप्त मात्रा में सूर्य का प्रकाश आता हो। यदि सूर्य की किरणें सीधी आकर रोगी की आँखों पर पड़ती हों तो उससे बचने के लिए पर्दे का व्यवहार करना चाहिए। पढ़ने-लिखने के लिए बिजली का लैम्प सर्वोत्तम है। अन्य रूप में कमरे को प्रकाशित करने के लिए बिजली की बत्ती, साधारण लैम्प, लालटेन, दीपक इत्यादि का प्रबन्ध किया जाना चाहिए। रोगी की चारपाई या कुर्सी इस प्रकार रखी जाय कि प्रकाश पीछे या बायीं ओर से आये।

(iv) कमरे में वायुगमनागमन— रोगी का कमरा न अधिक गर्म और न अधिक ठंढा ही होना चाहिए। इसके लिए उसमें अधिकाधिक दरवाजे,

खिड़कियाँ और रोशनदान होने चाहिए। जाड़े के मौसम में अँगीठी या बिजली के ताप-उत्पादक के द्वारा कमरे को गर्म रखा जा सकता है। गर्मी के मौसम में कमरे का वायुमण्डल शीतल बनाये रखने के लिए दरवाजे और खिड़कियों में खस की टट्टियाँ लगायी जा सकती हैं।

प्रश्न २. रोगी के कमरे में क्या-क्या सामान रहना चाहिए, इनकी सूची विशेषतासहित बतलायें।

उत्तर—रोगी के कमरे में कम-से-कम निम्नलिखित सामान रहना चाहिए—

(i) चारपाई—रोगी के सोने के लिए चारपाई, पलंग या तख्त का व्यवहार हो सकता है। लेकिन इनमें स्प्रिंगदार लोहे का पलंग, जैसा कि प्रायः अस्पतालों में रोगियों को सोने के लिए दिया जाता है, अत्युत्तम है। यदि चारपाई उपलब्ध हो, जैसा कि वस्तुतः हमारे यहाँ अधिकतर घरों में होता है, तो यह ढीली न हो। साथ ही, इसमें खटमल नहीं हों।

(ii) बिछावन—चारपाई के ऊपर पहले एक पतली दरी, टाट या कम्बल डालें, पुनः इसके ऊपर मुलायम गुदगुदा मोटा गद्दा और गद्दे के ऊपर सफेद चादर। आवश्यकता पड़ने पर चादर के नीचे मोमजामे (Oil cloth) का व्यवहार भी किया जा सकता है। इसके अतिरिक्त गर्मी के मौसम में रोगी को ओढ़ने के लिए हल्का साफ सूती चादर और जाड़े में रजाई या कम्बल का प्रबन्ध करना आवश्यक है।

(iii) मेज—रोगी के कमरे में कम-से-कम दो मेजें (Table) जरूर होनी चाहिए। मेजों में एक ऐसी हो जो रोगी के लिए बगल-मेज (Side Table) का काम दे और जिसपर रोगी के लिए आवश्यक चीजें (टेबुल लैम्प, किताबें आदि) रखी जा सकें।

(iv) स्टूल—रोगी के कमरे के विस्तार और आवश्यकताओं को ध्यान में रखते हुए एक-दो स्टूल का भी प्रबन्ध होना चाहिए। सुराही, धावन और मूत्र पात्रों को रखने के लिए स्टूल बड़ा उपयोगी होता है।

(v) कुर्सियाँ— प्रत्येक रोगी के कमरे में कम-से-कम दो कुर्सियाँ जरूर हों जिनमें एक रोगी के पढ़ने-लिखने के लिए पृथक् हो। अन्य कुर्सियाँ आवश्यकतानुसार डाक्टर, परिचारिका या दर्शकों के लिए हों। साधारण कुर्सियों के अलावा रोगी के विश्राम या स्वास्थ्य-लाभ (Convalescent) काल के लिए एक आरामकुर्सी (Easy Chair) जरूर हो।

(vi) आलमारी— रोगी की परिचर्या के सामान को सुरक्षित रखने के लिए कमरे में एक छोटी-सी हल्की आलमारी की आवश्यकता होती है।

(vii) वेसिन— यदि स्नानघर रोगी के कमरे से लगा नहीं हो तो रोगी के कमरे में उसके मुँह-हाथ धोने के लिए तामचीन (Enamel) का एक वेसिन या अन्य कोई पात्र रहना आवश्यक है।

(viii) तौलिया— रोगी के व्यवहार के लिए एक से अधिक साफ तौलिये की आवश्यकता होती है। इनका व्यवहार स्नान करने के उपरान्त शरीर को पोंछने, गर्म या ठंढे जल से स्पंज करने, मुँह-हाथ पोंछने, भोजन करने, हजामत बनाने इत्यादि में होता है।

(ix) साबुन— साबुन का उपयोग शरीर में लगाने, हाथ धोने या कपड़ों को साफ करने में होता है। उपर्युक्त तीनों कामों के लिए तीन तरह के साबुन होते हैं। नहाने के लिए लक्स या हमाम जैसे साबुन अधिक उपयुक्त हैं। रोगी या परिचारिका के हाथों को धोने के लिए लाइफब्वाय साबुन सस्ता और सुलभ है तथा कपड़ों को साफ करने के लिए सनलाइट या अन्य कोई साबुन काम में लाया जा सकता है।

(x) मूत्रपात्र— यदि रोगी के कमरे में लगा स्नानघर या पेशावखाना नहीं हो तो कम-से-कम रात्रिकाल के लिए रोगी के कमरे में एक ढक्कनदार मूत्रपात्र का रहना आवश्यक है।

(xi) थूकदान— बना-बनाया ढक्कनदार थूकदान बाजार में मिलता है। रोगी की परिचर्या में ऐसे ही थूकदान का व्यवहार करना चाहिए। बने-बनाये

थूकदान के अभाव में तामचीन का ढक्कनदार बेसिन इस काम के लिए विशेष उपयुक्त होता है।

(xii) सुराही— प्रत्येक रोगी के कमरे में एक ढक्कनदार सुराही जरूर रहनी चाहिए। साथ ही, सुराही को रखने के लिए एक स्टूल या छोटा मंच जरूर होना चाहिए।

(xiii) काँच का गिलास— रोगी के व्यवहार के लिए उसके कमरे में काँच का एक गिलास अवश्य रहे। धातु के गिलास से काँच का गिलास अच्छा होता है।

(xiv) चीनी मिट्टी के बरतन— चीनी मिट्टी के बरतनों में प्याला, तश्तरियाँ आदि रोगी के कमरे के लिए विशेष उपयुक्त होते हैं। इनका व्यवहार चाय, कॉफी, दूध इत्यादि के पीने या भोजन करने के बरतनों के रूप में होता है।

(xv) भोजन-पात्र — रोगी के भोजन-पात्र धातु के या चीनी मिट्टी के होने चाहिए।

(xvi) थर्मामीटर— रोगी के कमरे में एक डाक्टरी थर्मामीटर जरूर रहना चाहिए।

अध्याय ३

परिचारिका के दैनिक कार्यक्रम

प्रश्न १. परिचारिका के दैनिक कार्यक्रम के अन्तर्गत कौन-कौन-से कार्य आते हैं, प्रत्येक का संक्षिप्त विवरण दीजिए।

उत्तर— परिचारिका के दैनिक कार्यक्रम के अन्तर्गत निम्नलिखित कार्य आते हैं—

(क) कमरे की सफाई— (i) सबेरे और शाम तथा आवश्यकतानुसार बीच-बीच में भी कमरे की सफाई करना।

(ii) कुर्सी, मेज, स्टूल आदि को हल्के-हल्के झाड़ लेना।

(iii) रोगी के बिस्तरे को झाड़ कर फिनाइल जल में भीगे कपड़े से फर्श पोंछ देना।

(ख) रोगी के बिस्तर की सफाई—(i) नियमानुसार सबेरे और शाम को बिस्तर ठीक करना।

(ii) चादर गंदा हो जाने पर उसे बदलना।

(ग) ड्राशीट का व्यवहार— मलमूत्र या अन्य कारणों से बिछावन की चादर के जल्दी-जल्दी गन्दे होने का भय रहे तो रोगी के बिस्तरे में एक मोमजामा (Oil cloth) और एक अतिरिक्त चादर देना चाहिए। इस चादर को ही ड्राशीट कहते हैं। इसका व्यवहार उचित ढंग से करना चाहिए।

(घ) शय्या-घाव की देख-रेख— विशेष बीमारी के कारण रोगी को महीनों बिस्तर पर लेटे रहने के कारण प्रायः कोहनी, पीठ, चूतड़ और एड़ी में जख्म हो जाता है। ऐसे जख्म को शय्या-घाव कहते हैं। इससे बचाने के लिए (i) रोगी के बिस्तरे को साफ करते या रोगी को स्नान कराते समय इन स्थानों पर साबुन लगाकर धीरे-धीरे चक्राकार गति में मालिश करना, (ii) पुनः इन स्थानों को जल से भलीभाँति धो-पोंछकर सुखाना, (iii) फिर रूई के फाहे से स्पिरिट लगा कर उसके सूखने के बाद पाउडर छिड़कना चाहिए।

(च) रोगी को पाखाना-पेशाब कराना— (i) नियमित समय पर एवं आवश्यकता पड़ने पर अन्य समय में रोगी को पाखाना-पेशाब कराना।

(ii) यदि पाखाना पास में हो और रोगी की शारीरिक अवस्था अच्छी हो तो उसे पाखाने में ले जाना।

(iii) पाखाना दूर रहने पर या रोगी की शारीरिक अवस्था ठीक नहीं रहने पर मलपात्र एवं मूत्रपात्र की मदद से बिस्तरे पर ही पाखाना-पेशाब कराना।

(छ) मुँह धुलाना— (i) नियमित रूप से रोगी के इच्छानुसार उसका मुंह धुलाना।

(ii) यदि रोगी बैठने की अवस्था में नहीं हो तो लेटे रहने पर ही उसके दाँतों को साफ कर मुँह धुलाना।

प्रश्न २. रोगी को शय्या-स्नान (Bed bath) कराने से क्या लाभ है? शय्या-स्नान कैसे कराया जाता है? संक्षेप में लिखें।

उत्तर—शय्या-स्नान से लाभ—(i) शरीर की गन्दगी दूर हो जाती है।

(ii) शरीर का तापक्रम कम हो जाता है।

(iii) रक्त-संचरण तीव्र हो जाता है।

(iv) रोगी को आराम मिलता है और वह प्रसन्न होकर नाश्ता और भोजन करता है।

(v) रोग-मुक्ति और स्वास्थ्य-लाभ शीघ्र होता है।

शय्या-स्नान के लिए आवश्यक सामान—(i) शय्या-स्नान आरम्भ करने के पूर्व दो बरतनों में गुनगुना और ठंढा पानी, तौलिया, रोगी के पहनने का कपड़ा, तेल-कंघी आदि सामान रोगी के कमरे में रख लेने चाहिए।

(ii) आवश्यकतानुसार अतिरिक्त मोमजामा, कम्बल, स्पिरिट, रूई आदि भी रख लेना चाहिए।

स्नान-विधि— कमरे की सभी खिड़कियाँ और दरवाजे बन्द कर दें। रोगी के ऊपर की चादर को हटाकर उसे कम्बल से ढक दें। रोगी को बिस्तरे के किनारे पर हटाकर उसके नीचे एक दूसरा कम्बल और कम्बल की सुरक्षा के लिए इसके ऊपर एक तौलिया बिछा दें। इसपर रोगी को उलटकर तौलियायुक्त कम्बल को फैला दें। इस प्रकार रोगी का सारा शरीर तौलिये बिछे कम्बल पर आ जायगा। अब रोगी के पहने हुए वस्त्रों को सावधानीपूर्वक खोलकर अलग कर दें। उसके बाद रोगी के प्रत्येक अंग को बारी-बारी से धो-पोंछ कर ढक दें। धोने के लिए एक गीले तौलिये में साबुन लगाकर जिस अंग को धोना हो उसे इस तौलिये से रगड़ें। फिर दूसरे भींगे

तौलिये से पोंछ कर तीसरे तौलिये से सुखा लें। अंगों का स्नान सिर और गर्दन से आरम्भ करें। रोगी का कोई अंग अधिक समय तक खुला न रखें।

स्नान के बाद—शय्या-स्नान के बाद रोगी के शरीर में पाउडर तथा बाल में कंघी देकर इसे सँवार दें। अगर रोगी कोई औरत हो तो सावधानी-पूर्वक उसके बालों में तेल देकर वेणी गूँथ दें। हिन्दू विवाहिता स्त्री को नहलाने या बाल सँवारने के बाद माँग में सिन्दूर भी अवश्य लगा दें।

अध्याय ४

परिचारिका के अन्य दैनिक कार्य

प्रश्न १. थर्मामीटर का प्रयोग करते समय किन-किन बातों पर विशेष ध्यान रखना चाहिए? रोगी के तापक्रम का विवरण किस प्रकार तैयार किया जाता है?

उत्तर—थर्मामीटर का प्रयोग करते समय निम्नलिखित बातों पर विशेष ध्यान रखना चाहिए।

डाक्टरी थर्मामीटर अन्य साधारण थर्मामीटरों से भिन्न प्रकार का होता है। इसमें ९५ डिग्री से ११० डिग्री तक के अंक अंकित रहते हैं। इसका बड़ा विभाजन डिग्री और छोटा विभाजन ०·२ डिग्री निर्देशित करता है। इसमें ९८·४ डिग्री के स्थान पर एक तीर अंकित है जो

स्वाभाविक तापक्रम बतलाता है। एक स्वस्थ व्यक्ति का यह स्वाभाविक तापक्रम है।

(ii) डाक्टर के आदेशानुसार रोगी की काँख या जीभ के नीचे थर्मामीटर के बल्ब को लगाना चाहिए।

(iii) तापक्रम को नापने के पहले थर्मामीटर को ठंढे जल तथा कीटाणु-नाशक द्रव द्वारा धो डालना चाहिए।

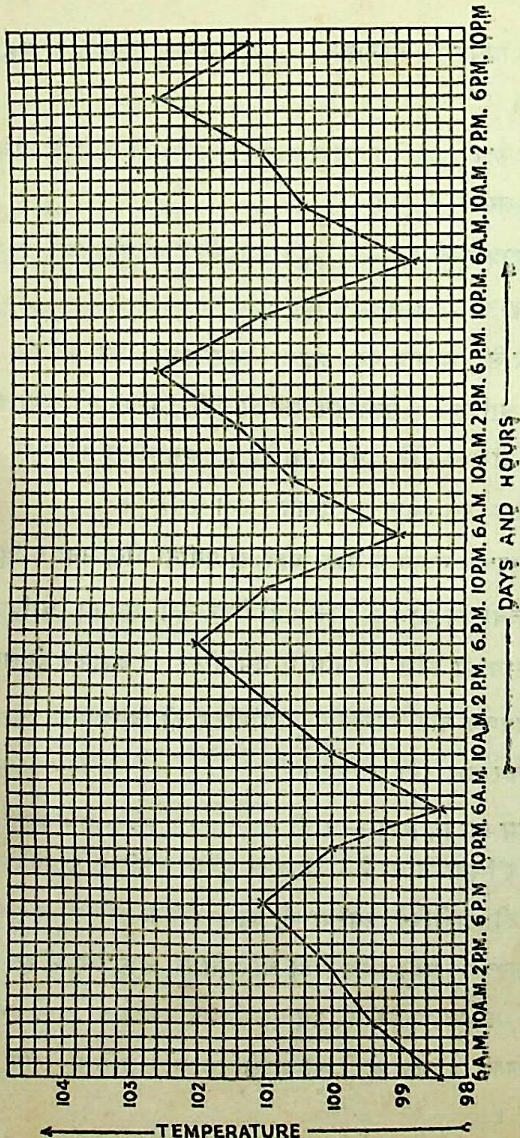
(iv) धो लेने के बाद पुन: झटका देकर उसके पारे को ९५ डिग्री तक उतार लेना चाहिए। तदुपरान्त उसकी घुंडी (बल्ब) को रोगी की काँख या जाँघ में या जीभ के नीचे लगाना चाहिए। थर्मामीटर की घुंडी कम-से-कम एक मिनट तक उस स्थान पर दबाये रखनी चाहिए।

(v) तापक्रम नापने के पहले वहाँ का पसीना पोंछ लेना चाहिए।

(vi) बच्चों को जीभ के नीचे थर्मामीटर नहीं लगाना चाहिए। इनका तापक्रम यथासाध्य काँख या जाँघ में थर्मामीटर को दबाकर ही लेना चाहिए।

(vii) तापक्रम नोट कर लेने पर थर्मामीटर को विसंक्रामक घोल में धो-पोंछ-कर सँभालकर रख देना चाहिए।

तापक्रम का विवरण— रोगी का तापक्रम सवेरे-शाम या तीन-चार घण्टों के अन्तर पर लिया जाता है। डाक्टर हमेशा रोगी के सामने नहीं रहते हैं। अत: रोगी की शारीरिक अवस्था की जानकारी के लिए समय-समय पर उसके शरीर के तापक्रम, साँस और नाड़ी की गति को चार्ट पर अंकित करना होता है। इन्हें अंकित करने के लिए एक विशेष प्रकार का चार्ट बना रहता है। चार्ट को देखकर डाक्टर रोगी की शारीरिक अवस्था तथा रोग का निदान कर लेता है।


TEMPERATURE
104
103
102
101
100
99
98
DAYS AND HOURS
6A.M. 10A.M. 2P.M. 6P.M. 10P.M. 6A.M. 10A.M. 2P.M. 6P.M. 10P.M. 6A.M. 10A.M. 2P.M. 6P.M. 10P.M. 6A.M. 10A.M. 2P.M. 6P.M. 10P.M.

चार्ट देखने से स्पष्ट हो जाता है कि इसमें खड़ी और पड़ी रेखाएँ हैं। खड़ी रेखा द्वारा डिग्री और उसके पंचमांश में शरीर के तापक्रम का बोध होता है। पड़ी रेखा द्वारा दिन का समय और तारीख का पता चलता है। प्रत्येक दिन नियत समय पर रोगी का तापक्रम लेकर चार्ट पर भर दिया जाता है। उदाहरण के लिए, मान लें कि किसी दिन सबेरे ६ बजे रोगी का तापक्रम स्वाभाविक है तो उस तिथि को सवेरे ६ बजे ९८·४ डिग्री की सीध में एक बिन्दी लगा दी गयी है। इसी प्रकार उस तिथि और उसके बाद वाली तिथियों के शरीर के तापक्रम को चार्ट पर अंकित कर दिया गया है। इन बिन्दियों को सरल रेखाओं द्वारा मिलाकर एक रेखाचित्र (Graph) बना है। यह रोगी का तापक्रम-चार्ट है। चार्ट को देखकर डाक्टर को स्पष्ट हो जाता है कि ज्वर सन्ध्या समय बढ़ जाता है और सवेरे के समय शरीर का तापक्रम स्वाभाविक रहता है। साथ ही, रोगी की अवस्था सुधर नहीं रही है, क्योंकि शरीर का उच्चतम तापक्रम दिनानुदिन बढ़ता जाता है।

प्रश्न २. रोगी को दवा देते समय किन-किन बातों पर ध्यान देंगी ?

उत्तर— रोगी को दवा देने में निम्नलिखित नियमों का पालन करना चाहिए—

(i) दवाइयाँ दो तरह की होती हैं : पहली खाने वाली और दूसरी अंग-विशेष पर मालिश की जाने वाली। दोनों दवाइयाँ अलग-अलग रखनी चाहिए।

(ii) शरीर पर मालिश की जाने वाली दवा प्रायः विषैली होती है। अतः उसे रोगी या बच्चों की पहुँच के बाहर रखना चाहिए। उसपर लेबुल चिपकाकर रखना अच्छा होता है।

(iii) डाक्टर की राय के मुताबिक ही दवा देनी चाहिए।

(iv) निर्धारित दवा, निर्धारित रोगी को, निर्धारित समय पर, निर्धारित नियम के अनुसार देनी चाहिए।

(v) दवा की शीशी पर दवा का नाम, खुराक तथा रोगी को देने का समय जरूर लिखा रहना चाहिए तथा दवा देने के पूर्व उसे अवश्य पढ़ लेना चाहिए।

(vi) खाने के बाद दी जाने वाली दवा खाना समाप्त होने के तुरत बाद देनी चाहिए।

(vii) खाने के पूर्व दी जाने वाली दवा खाना शुरू करने के बीस मिनट पहले दी जानी चाहिए।

(viii) कफ की दवा को छोड़कर प्रायः सभी दवाइयों के साथ जल पीने की आवश्यकता होती है। इसलिए दवा देते समय एक गिलास जल जरूर रखना चाहिए।

(ix) अगर रोगी को गोलियाँ देनी हों तो इसकी निर्धारित संख्या किसी कागज या चम्मच पर रखकर रोगी को खिलानी चाहिए।

(x) दवा देने के लिए निर्धारित समय में अगर रोगी सो रहा हो तो उसे जगाकर दवा नहीं देनी चाहिए।

(xi) यदि किसी कारणवश निर्धारित समय में रोगी को दवा नहीं दी गयी है और काफी समय बीत गया है तो दूसरी बार दवा देते समय दूनी खुराक में दवा नहीं देनी चाहिए।

(xii) कड़वी दवा रहने पर डाक्टर की सलाह लेकर इसे शर्बत या मधु के साथ मिलाकर देना चाहिए।

(xiii) गन्ध वाली दवा पिलाने में कठिनाई होती है। ऐसी स्थिति में रोगी की नाक बन्द कर दवा पिलानी चाहिए।

(xiv) कड़वी दवा पिलाने के बाद एक-आध बिस्कुट रोगी को चबवाकर उसे उगलवा देना चाहिए।

(xv) दवा खिलाने के बाद उसकी शीशी को यथास्थान रख देना चाहिए।

(xvi) अगर रोगी बच्चा हो तो उसे फुसला कर दवा पिलानी चाहिए।

द्रव दवा पिलाते समय— तरल रूप में दवा पिलाते समय निम्नलिखित अतिरिक्त सावधानी की आवश्यकता होती है—

(i) परिचारिका को दवा की शीशी हाथ में रख कर देख लेना चाहिए कि कितनी खुराक प्याले में ढालनी है।

(ii) दवा ढालते समय लेबुल पर लिखी गयी हिदायतों को जरूर देख लेना चाहिए।

(iii) दवा ढालने के पहले शीशी को हिला लेना चाहिए ताकि नीचे बैठी हुई दवा भलीभाँति मिलकर एकरस हो जाय।

(iv) दवा ढालने के बाद शीशी को कार्क से बन्द कर लेना चाहिए।

(v) दवा पिलाने के बाद गिलास को धो-पोंछकर मेज पर उलटाकर दूसरी बार के लिए तैयार रखना चाहिए।

(vi) दवा पिलाते समय तबतक रोगी के समीप रहना चाहिए जबतक वह पूरी दवा पी न ले।

अध्याय ५

रोग के कुछ बाह्य उपचार

प्रश्न १. ठंढे पानी से स्पंज करने से क्या लाभ है? इसकी उचित विधि का वर्णन करें।

उत्तर— स्पंज करने से लाभ— (i) रोगी का तापमान कम होता है।

(ii) शरीर की सफाई होती है।

(iii) रोगी आराम अनुभव करता है।

स्पंज करने की विधि—(i) रोगी के विस्तरे के नीचे मोमजामा और उसके ऊपर चादर डालकर रोगी के अंगों को बारी-बारी से ठंढे जल से भीगे तौलिए से पोंछ दें।

(ii) पुनः दूसरे सूखे तौलिए से भीगे हुए शरीर को पोंछें।

(iii) पोंछते समय कमरे का खिड़कियाँ और दरवाजे सभी बन्द कर दें।

(iv) पोंछना समाप्त होने पर रोगी के शरीर में पाउडर लगाकर कपड़े बदल दें।

[नोट—विशेष के लिए तीसरे अध्याय के दूसरे प्रश्न (शय्या-स्नान की विधि) का उत्तर देखें।]

प्रश्न २. सेंक का प्रयोग कब किया जाता है ? सेंक कितने प्रकार की होती है ?

उत्तर—रोगी के स्वास्थ्य-लाभ के लिए बाह्य उपचारों में सेंक एक महत्वपूर्ण उपचार है। इसका मुख्य उद्देश्य स्थानविशेष के सूजन में कमी लाना तथा दर्द को दूर करना है।

सेंक दो तरह की होती है—ठंढी और गर्म।

ठंढी सेंक—साधारणतः चोट लगे स्थान पर जहाँ सूजन और पीड़ा हो जाती है, वहाँ इसका व्यवहार होता है। इसके व्यवहार से सूजन और पीड़ा कम हो जाती है। ठंढी सेंक में बर्फ बड़ी ही उपयोगी होती है। अगर बर्फ न मिले तो साफ कपड़े को कई तह बनाकर इसे ठंढे जल में भिगोकर सूजे हुए स्थान पर रख दिया जाता है। जब पट्टी सूख जाती है तो इसे भिगोकर पुनः उसी स्थान पर रख दिया जाता है। जबतक दर्द कम न हो, यह क्रिया जारी रहती है। इसका व्यवहार हल्के रक्तस्राव को रोकने में भी होता है।

गर्म सेंक—गर्म सेंक दो प्रकार की होती है। एक के द्वारा स्थानविशेष में सूखी गर्मी पहुँचायी जाती है। इस विधि में स्थानविशेष को कपड़े की थैली में नमक, बालू, चोकर भरकर सेंका जाता है। कपड़े की थैली में नमक,

बालू या चोकर भरकर उसे गर्म तवे पर रखा जाता है। जब थैली गर्म हो जाती है तो इसे सूजे हुए स्थान पर रखा जाता है। अगर ये चीजें उपलब्ध न रहें तो पत्थर, खपड़े या ईंट के टुकड़े को तवे पर गर्म कर काम में लाना चाहिए।

तर गर्म सेंक में गर्म जल में तौलिया, फलालैन का टुकड़ा आदि भिगोकर स्थानविशेष में गर्मी पहुँचायी जाती है। स्थानविशेष पर रबर के थैले में या बोतल में तीन चौथाई गर्म जल भरकर डाट लगा दी जाती है और बोतल या रबर के थैले को स्थानविशेष पर तब तक रखा जाता है जब तक दर्द कम नहीं होता। जल का तापक्रम रोगी के लिए सह्य हो, इसकी जाँच अवश्य कर लेनी चाहिए।

पुल्टिस देना भी तर गर्म सेंक के अन्तर्गत ही है।

फलालैन द्वारा सेंक की विधि— फलालैन के टुकड़ों द्वारा सेंक निम्नलिखित विधि द्वारा दी जाती है। फलालैन द्वारा गर्म सेंक देने के लिए आवश्यक परिमिति का फलालैन का टुकड़ा ले लिया जाता है। पुनः इसको तौलिये की दो तहों के बीच फैलाकर गर्म जल में इस प्रकार डाल दिया जाता है कि तौलिया के दोनों छोर गर्म जल के बरतन के बाहर रहते हैं। अब तौलिये को ऐंठकर अतिरिक्त जल निकाल दिया जाता है। अब तर फलालैन के गर्म टुकड़े को रोगी के स्थानविशेष पर रखकर रूई से ढक दिया जाता है। आवश्यकता पड़ने पर पट्टी भी बाँध दी जाती है। इसके ठण्डा होने पर बदलकर दूसरा रख दिया जाता है। साधारणतः इसे ठण्डा होने में आधा घण्टा लग जाता है।

प्रश्न ३. पुल्टिस कितने प्रकार की होती है ? इससे क्या लाभ होता है ? पुल्टिस चढ़ाने की क्या विधि है ?

उत्तर— आजकल बाजार में ऐण्टिफ्लोजेस्टिन जैसी बनाबनायी पुल्टिस आसानी से प्राप्त हो जाती है। इसके अभाव में तीसी, आटा, सरसों, नीम की पत्ती आदि की पुल्टिस चढ़ायी जाती है।

पुल्टिस देना तर गर्म सेंक के अन्तर्गत है। इसका मुख्य उद्देश्य स्थानविशेष की सूजन में कमी लाना तथा दर्द को दूर करना है।

पुल्टिस कपड़े पर रखकर चढ़ायी जाती है, अतः आक्रान्त क्षेत्र से कुछ लम्बाई और चौड़ाई में बड़ा कपड़ा काम में लाना चाहिए।

जिस चीज की पुल्टिस बनानी हो, उसके चूर्ण की उपयुक्त मात्रा को खौलते जल में थोड़ा-थोड़ा करके डालते जायँ; साथ ही, इसे चलाते भी जायँ जिससे मिश्रण एकसम हो और इसमें गुठलियाँ न पड़ें। जब यह लई के समान गाढ़ी हो जाय तो इसे उतार लें। अब शीघ्रता से लई जैसी पुल्टिस को कपड़े पर समान रूप से इस प्रकार फैलायें कि इंच-भर कपड़ा चारों ओर बचा हो। कपड़े के बचे हुए भाग को मोड़कर पुल्टिस के किनारे को ढक दें। यदि नीम की पत्ती की पुल्टिस बनानी हो तो ताजी नीम की पत्ती को जल में मिलाकर पीस लें। पुनः गर्म कर इसका व्यवहार करें।

पुल्टिस बैठाने के पहले इसकी जाँच कर लेनी आवश्यक है। यदि पुल्टिस अधिक गर्म हो तो इसे तब तक न बैठायें जब तक सहने के लायक न हो जाय। पुल्टिस बैठाने के बाद इसे मोमजामा या रबर के टुकड़े से ढक देने से अच्छा रहता है।

अध्याय ६

रोगी का पथ्य

प्रश्न १. एक रोगी को पथ्य देने में आप किन-किन नियमों का पालन करेंगी ?

उत्तर— रोगी को पथ्य देने में निम्नलिखित नियमों का पालन करना चाहिए—

(i) डाक्टर के निर्देशानुसार रोगी को निर्धारित समय में पथ्य देना चाहिए।

(ii) पथ्य देने में रोगी की अभिरुचि का भी ख्याल रखना चाहिए।

(iii) पथ्य का सामान स्वादिष्ट होना चाहिए।

(iv) जिस पात्र में पथ्य दिया जाय उसे साफ-सुथरा रखना चाहिए।

(v) पथ्य देने के पहले रोगी को मुँह-हाथ धुलाकर कुल्ला करा देना चाहिए।

(vi) साधारणतः शय्या-स्नान या स्पंज करने के बाद ही रोगी को पथ्य देना चाहिए।

(vii) गर्म पथ्य गर्म और ठंढा पथ्य ठंढा होना चाहिए। गर्म भोजन अधिक स्वादिष्ट होता है। पर आवश्यकतानुसार पथ्य का समुचित ठंढा या गर्म रहना आवश्यक है।

(viii) पथ्य के रूप में रोगी को उतना ही भोजन देना चाहिए जितना वह खा सके तथा पचा सके।

(ix) भोजन की प्रत्येक सामग्री के लिए अलग-अलग पात्र रहना चाहिए। दाल, रसदार तरकारी, चटनी, दूध आदि अलग-अलग बरतन में देना चाहिए।

(x) जब कभी आवश्यकतानुसार चाय, काफी या दूध रोगी को देना हो तो उसे इस प्रकार रोगी के समीप रखना चाहिए कि रोगी बिना अधिक कष्ट के सहज ही उसे प्राप्त कर सके।

प्रश्न २. किसी रोगी के लिए सब्जी का रसा (शोरबा) (Vegetable soup) बनाने की विधि पर प्रकाश डालें।

उत्तर—स्वास्थ्य-लाभ के बाद या हल्के रोग की अवस्था में रोगी को साग-सब्जियों या मांस का रसा (Soup) दिया जाता है। साग-सब्जियों में आलू, बंडा, केला, घुइयां आदि का रसा गरिष्ट होता है। अतएव इनके रसे का व्यवहार कम होना चाहिए। उत्तम रसे के लिए परवल, तरोई, टमाटर, गाजर आदि उपयुक्त होते हैं।

बनाने की विधि—जिस सब्जी का रसा बनाना हो, उसे साफ जल में धोकर खूब छोटे-छोटे टुकड़े कर दें। फिर ढक्कनदार कलईयुक्त बरतन में

तीन भाग जल डालकर धीमी आँच में उबालें। रुचि एवं आवश्यकता के अनुसार इसमें हल्दी, नमक, कालीमिर्च इत्यादि भी डाल दें। जब सब्जी गल जाय तो इसके रसे को छान कर अलग कर दें। फिर रोगी की इच्छा के अनुसार गर्म या ठंढा रसा उसे पिलायें।

प्रश्न ३. किसी रोगी के लिए पोच बनाने की क्या विधि है ? संक्षेप में लिखें।

उत्तर—पोच अंडे का बनता है और कमजोर पेटवालों के लिए यह एक पुष्टिकारक भोजन है तथा जल्दी पचता है। साधारणतः यह जल, तेल, डालडा आदि में पकता है। पर कमजोर पेट वालों के लिए एवं रोगी के लिए जल में ही पका पोच देना चाहिए।

बनाने की विधि—आवश्यकतानुसार एक या दो ताजे अंडे लेकर इन्हें अच्छी तरह धो दें। अब कम चौड़ी सतहवाले तवे में थोड़ा जल डालकर उबालें। जब जल उबलना शुरू हो तो अंडे को फोड़कर उसमें इस प्रकार डाल दें कि अंडे की जर्दी बीच में तथा इसकी सफेदी चारों ओर फैली हो। कुछ ही देर में अंडे की सफेदी और जर्दी थक्के-सी जम जायगी। अब इसे सावधानीपूर्वक निकाल कर ठंढा होने पर प्लेट में रखकर नमक और काली-मिर्च के चूर्ण के साथ रोगी को खाने के लिए दें। इसे खाने में काँटे-चम्मच और चाकू का उपयोग करना अच्छा होता है।

प्रश्न ४. कैस्टर्ड एवं खिचड़ी बनाने की विधि पर प्रकाश डालें।

उत्तर—कैस्टर्ड—कैस्टर्ड फल, मलाई, अंडे, कार्नफ्लोर इत्यादि का बनता है। पर रोगी के लिए अंडे का ही कैस्टर्ड सुपाच्य होता है।

अंडे का कैस्टर्ड—जरूरत के मुताबिक एक या दो अंडों को तोड़कर इसकी सफेदी और जर्दी को किसी बरतन में डालकर अच्छा तरह फेंट लें। पुनः इसमें पाव-दो-पाव दूध और आवश्यकतानुसार चीनी मिला दें। अब किसी अल्यूमिनियम या अन्य धातु के बरतन में इसे रखें। उस बरतन में हैंडल

लगा रहना जरूरी है। किसी दूसरे बरतन में काफी मात्रा में जल खौलायें। जब जल खौलने लगे तो इसमें अंडा और दूध युक्त बरतन को सावधानीपूर्वक रखें। मिश्रण को चलाते रहें। थोड़ी देर में जल-मिश्रण गाढ़ा हो जायगा। तब बरतन को गर्म जल से निकालकर ठंढा होने दें। ठंढा होने पर इसे रोगी को खाने के लिए दें। ताजे फलों के टुकड़ों के साथ भी इसे दिया जा सकता है।

खिचड़ी— चावल और मूंग या उड़द की दाल मिलाकर खिचड़ी तैयार की जाती है। उड़द की दाल की अपेक्षा मूँग की दाल की खिचड़ी अधिक हल्की होती है और शीघ्र ही पच जाती है। खिचड़ी में प्रायः अरवा चावल का ही व्यवहार होता है।

खिचड़ी बनाने की विधि— मूँग की धुली तथा चुनी-बिछी दाल और पुराना अरवा चावल बराबर भाग में ले लें। अरवा चावल को भी धो दें। दाल से चावल कुछ ज्यादा भी ले सकते हैं। पतीली में इतना ही पानी देकर उसे उबालें कि खिचड़ी भली-भाँति पक जाय। जब पानी उबलने लगे तो धुले हुए चावल-दाल को इसमें डालकर तब तक उबालें जब तक कि खिचड़ी तैयार न हो जाय। चावल की अपेक्षा दाल कुछ देर से गलती है। इसलिए साधारणतः दाल कुछ देर पहले छोड़ दी जाती है। इसमें अन्दाज से नमक और हल्दी डाल दें। जब खिचड़ी अच्छी तरह गल जाय तो इसे चूल्हे पर से उतार लें। खाते समय इसमें कागजी नीबू निचोड़ दें। इससे इसका स्वाद बढ़ जाता है।

भाग ५

संक्षिप्त टिप्पणियाँ

प्रश्न १. निम्नलिखित विषयों पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए।

नोट—विषयों का उल्लेख यथासाध्य वर्णानुक्रम से किया गया है।

(क)

१. केशिकाएँ—धमनियाँ शरीर में फैलने पर कई छोटे-छोटे हिस्सों में बंटते-बंटते बहुत पतली हो जाती हैं। अन्त में ये इतनी पतली हो जाती हैं कि कभी-कभी रक्त-कण इनमें सिकुड़ जाते हैं। इन्हें ही केशिकाएँ कहते हैं। ये सारे शरीर में जाल की तरह बिछी हैं तथा इनकी दीवारें इतनी पतली होती हैं कि अनेक प्रकार के पदार्थ आसानी से आते-जाते हैं। शरीर को ऑक्सीजन देना तथा कार्बन-डायक्साइड दूर करना एवं तन्तुओं को भोजन पहुँचाना वास्तव में इन्हीं केशिकाओं का काम है। इनके आपस में मिलने से खून की बड़ी-बड़ी नलियाँ तैयार होती हैं जो शिराएँ कहलाती हैं। अतः हमारे शरीर में खून के एक दिशा में भ्रमण करने में भी ये सहायक हैं।

२. कशेरुक— रीढ़ तैंतीस छोटी-छोटी हड्डियों से मिलकर बनी है जिनमें से प्रत्येक को कशेरुक कहते हैं। ये एक-दूसरे से बन्धनों और मांसपेशियों से जुटे रहते हैं। इन ३३ कशेरुकों में पहले ७ को गर्दन के मोहरे, दूसरे १२ को छाती के पीछे के मोहरे, तीसरे ५ को कमर के मोहरे, चौथे ५ को त्रिक के मोहरे और अन्तिम ४ को पूँछ के मोहरे कहते हैं। बड़े होने पर त्रिक के मोहरे एक हो जाते हैं। इस प्रकार, बड़े होने पर २८ मोहरे या कशेरुक रहते हैं। मोहरों के बीच में छेद होता है जिससे सुषुम्ना दिमाग तक जाती है। छाती के मोहरे पसलियों से जुटे रहते हैं।

३. कोशा— See Page 3.

४. क्लोम-रस— See Page 36.

५. खून का जमना— See Page 48.

६. छोटी आँत— See Page 29.

७. जिह्वा— See Page 40.

८. टेंटुआ— यह हवा की नली है। यह पाँच इंच लम्बा तथा एक इंच से कुछ कम चौड़ा होता है। आगे की ओर गोल और पीछे की ओर समतल प्रायः अँगरेजी के 'D' अक्षर की तरह होता है। १६ से २० तह तक कार्टिलेज होते हैं जो सौत्रिक तन्तुओं से बँधे होते हैं। इसके भीतरी भाग में श्लैष्मिक झिल्ली रहती है जो बाल से भरी रहती है, जिससे कोई ठोस चीज भीतर नहीं जाने पाती। अन्तिम हिस्से में टेंटुआ दो भागों बँट जाता है, जिसे Bronchial tube कहते हैं।

९. टायलिन— टायलिन नामक खमीर लार में रहता है। यह भोजन में उपस्थित श्वेतसार को चीनी में बदल देता है। क्षारीय माध्यम में इसकी कार्यकारिता सामान्य रूप से होती है। अत्यन्त आम्ल माध्यम में यह निष्क्रिय हो जाता है।

१०. धनुष्टंकार रोग— इस रोग का कारण एक प्रकार का जीवाणु होता है जो घोड़ा, गाय, भस इत्यादि की लीद में पाया जाता है। शरीर पर किसी प्रकार खुरच जाने या नुकीले पदार्थ के चुभ जाने से एक व्रण या घाव बन जाता है। इससे होकर यह जीवाणु शरीर में प्रविष्ट हो जाता है।

इस रोग में शरीर की पेशियों में संकोच या ऐंठन होती है। मुँह इस प्रकार बन्द हो जाता है कि रोगी का कुछ खाना-पीना मुश्किल हो जाता है।

इसको रोकने के लिए इस रोग के रोगी को ऐण्टीटौक्सिन सीरम का इन्जेक्शन दिया जाता है। इस सीरम की भिन्न मात्राएँ बाजार में मिलती हैं। प्रतिषेध के लिए ३००० I.U. का इन्जेक्शन दिया जाता है। बालकों में अवस्थानुसार इसकी मात्रा घटा दी जाती है। रोग को रोकने के लिए एक मात्रा पर्याप्त होती है किन्तु चिकित्सा के लिए २०,००० I.U. के कितने ही इन्जेक्शन देने

पड़ते हैं, फिर भी रोग से मुक्त होना अनिश्चित ही रहता है। किन्तु प्रतिषेध के लिए एक मात्रा का इन्जेक्शन अचूक होता है। रोग लगने के पश्चात् ही ३,००० I.U. टिटेनस ऐण्टीटौक्सिन सीरम का इन्जेक्शन दिलवा देना चाहिए। इससे रोग से रक्षा का पूर्ण निश्चय हो जाता है।

११. धमनियाँ – दिल से खून जिन विभिन्न नलियों द्वारा जाता है, उन सभी नलियों को धमनियाँ कहते हैं। इनकी दीवारें मोटी और मजबूत होती हैं, साथ ही लचीली भी होती हैं जिससे खून का बहाव बड़ी सुगमता से होता है। ज्यों-ज्यों धमनी आगे बढ़ती है, त्यों-त्यों कई शाखाओं में बँटती और पतली होती जाती है। ये हमारे शरीर के विभिन्न अंगों को ऑक्सीजन और भोजन पहुँचाती हैं।

१२. नलिकाविहीन ग्रन्थियाँ (बिना नलीवाली गिल्टियाँ)— हमारे शरीर में दो प्रकार की गिल्टियाँ (Glands) हैं। कुछ ऐसी हैं, जिनके रस शरीर के किसी भाग में नली द्वारा जाते हैं। परन्तु कुछ ऐसी गिल्टियाँ हैं जिनसे उत्पन्न रस बिना किसी प्रकार की नली द्वारा खून में मिल जाता है। ऐसी गिल्टियों को बिना नली वाली गिल्टियाँ (Endocrine glands) कहते हैं। बिना नली वाली गिल्टियाँ निम्नलिखित हैं—

(i) पिट्यूट्री (Pituitry), (ii) चुल्लिका (Thyroid), (iii) उपचुल्लिका (Parathyroid), (iv) उपवृक्क (Supra-renal) एवं (v) थाइमस (Thymus)।

१३. नख— See Page 68.

१४. नाक (नासिका)— प्रकृति ने वायु को साँस के योग्य बनाने का एक प्रबन्ध कर रखा है और वह है नाक का प्रबन्ध। नाक के नथने की दीवार श्लैष्मिक झिल्ली से आच्छादित रहती है, जिसके कारण यह हमेशा तर रहती है। फलतः, साँस लेते समय वायु के धूल-कण आदि इसमें सट जाते हैं। श्लैष्मिक झिल्ली के भीतर रक्त-केशिकाएँ जाल-सी फैली रहती हैं, फलतः नथने होकर फेफड़ों में वायु जाते समय वह गर्म हो जाती है। नथने में छोटे-

छोटे लेकिन घने बालों का समूह है, जो धूल के कण तथा कीड़े-मकोड़े आदि को अन्दर नहीं जाने देता। ये बाल एक प्रकार के फिल्टर का काम करते हैं। इसी से प्रत्येक व्यक्ति को नाक के ही द्वारा साँस लेनी चाहिए।

१५. फेफड़ा— See Page 59.

१६. महाधमनी— See Page 52.

१७. यकृत— See Page 34.

१८. रक्तहीनता— रक्त के लाल कणों की संख्या में कमी या कणों में हेमोग्लोबिन की न्यूनता के कारण रक्तहीनता (Anemia) हो जाती है। प्रायः भोजन में लौह-लवणों की कमी, लाल कण के विनाश या अधिक रक्तस्राव या रोग के कारण रक्तहीनता रोग उत्पन्न हो जाता है। अस्थि की रक्तिम मज्जा में दोष उत्पन्न होने से घातक रक्तहीनता हो जाती है। उपयुक्त ओषधि और प्रचुर लौह-लवण-युक्त भोजन के व्यवहार से रक्तहीनता दूर हो जाती है।

१९. रक्त-वारि—रक्त के सौ भागों में से रक्त-वारि करीब साठ-पैंसठ भाग है। यह जरा पीलापन लिये हुए पानी जैसा तरल तथा क्षारप्रधान पदार्थ है। इसके १०० भागों में ९० भाग पानी और शेष दस भाग घुले हुए रासायनिक पदार्थ हैं। घुले हुए पदार्थों के दस भागों में से आठ भाग प्रोटीन-जातीय पदार्थों के तथा शेष साधारण नमक, वसा, शर्करा तथा अन्यान्य लवणों के हैं।

२०. रक्त-बैंक— रक्त-बैंकों में विभिन्न वर्गों के रक्त या रक्तवारि का शुष्क चूर्ण संचित रहता है। आवश्यकता पड़ने पर पूर्णरक्त या प्लाज्मा के चूर्ण का घोल आतुरों को दिया जाता है। विभिन्न वर्गों के रक्त को वायुशून्य बोतल में भरकर शीतकारकों में महीनों रखा जा सकता है। प्रायः प्रत्येक बोतल में ५०० घन सेंटीमीटर रक्त रहता है। रक्त को जमने से बचाने के लिए इसमें सोडियम-साइट्रेट, साइट्रिक अम्ल और डेक्सट्रोज मिला दिया जाता है। अकसर रक्तान्तरण की आवश्यकता पड़ने पर रोगी के परिवार का कोई स्वस्थ व्यक्ति ही अपना रक्त देता है, यदि उसका रक्त देने के उपयुक्त पाया

जाता है। अन्यथा अभाव में रक्त-बैंकों से खरीद कर रक्त प्रदान किया जाता है।

२१. लार— लार पानी-सा तरल क्षारप्रधान पारदर्शी पदार्थ है। इसमें करीब ९९.२ प्रतिशत पानी और ०.८ प्रतिशत घुले हुए रासायनिक पदार्थ हैं। अच्छे स्वादिष्ट भोजन को देखते ही मुँह के अन्दर किसी चीज के जाने से अथवा खट्टे पदार्थ की याद से ही मुँह में पानी भर आता है। इसे ही 'लार' कहते हैं।

'लार' निकलने की ६ ग्रन्थियाँ मुँह में हैं। इनमें तीन बायीं ओर और तीन दायीं ओर हैं। कान की जड़ वाली ग्रन्थियों को कर्णमूल-ग्रन्थि कहते हैं। प्रत्येक कान के सामने भीतरी भाग में नीचे की ओर ऐसी एक-एक गिल्टी है। इसके अलावा जीभ के नीचे दोनों बगल में एक-एक गिल्टी है जिन्हें जिह्वाधर-ग्रन्थियाँ कहते हैं तथा जबड़े के नीचे दो ग्रन्थियाँ हैं, जिन्हें हन्वधर-ग्रन्थियाँ कहते हैं।

लार से लाभ— भोजन को चबाते समय ही उससे लार मिलती रहती है। लार से निम्नलिखित यांत्रिक और रासायनिक लाभ होते हैं—

(क) लार से भोजन गीला हो जाता है, जिससे यह सहज ही गले के नीचे उतर जाता है। इस प्रकार लार भोजन को निगलने में सहायता देती है।

(ख) लार भोजन को मुलायम करती है, जिससे सहज ही वह पिस जाता है। भली-भाँति पिसे पदार्थ पर पाचक रस अधिक सक्रिय होते हैं।

(ग) लार घुलनशील पदार्थ को घुलाकर स्वाद का बोध कराती है।

(घ) श्वेतसारजातीय पदार्थों को पचाने में लार मदद करती है।

२२. लाल रक्तकण— See Page 46.

२३. श्वेत रक्तकण— See page 47.

२४. शरीर का ताप— शरीर के ताप की साधारण सीमा ये हैं—

मुखगह्वर— 96·7°F. से 99°F.

पायु (Rectum)— 97·2°F· से 99·5°F.

पायु का तापक्रम अधिक विश्वसनीय (Reliable) होता है।

साधारणतया मुखगह्वर का तापक्रम ही मापा जाता है। जीभ के नीचे डाक्टरी थर्मामीटर, जो फारेनहाइट में अंशांकित उच्चतम थर्मामीटर है, की घुण्डी करीब आधा मिनट (विश्वसनीय तापक्रम के लिए दस मिनट) रख दी जाती है और तब उसे निकालकर बिना घुण्डी को स्पर्श किये हुए, पारे की उच्चता पढ़ ली जाती है।

शरीर का तापक्रम समयविशेष पर एवं अंगविशेष पर भिन्न होता है— जैसे सुबह में सन्ध्या की अपेक्षा तापक्रम कम होता है। काँख का तापक्रम मुँह से कम, मुँह का पायु (Rectum) से कम होता है।

आयु के अन्तर होने पर तापक्रम भिन्न हो जाता है। युवकों से वृद्ध का तापक्रम कम होता है।

स्त्रियों में ऋतुकाल (Menstruation) के समय तापक्रम सर्वनिम्न रहता है।

शारीरिक परिश्रम करने पर तथा अस्वस्थता की हालत में तापक्रम बढ़ जाता है।

भोजन करने पर या मानसिक आवेग (Emotion) की हालतों में भी तापक्रम बढ़ जाता है।

२५. संधि-तैल— हड्डियों की संधि (Joint) में Cartilage के बाद उसके सम्पर्क में एक प्रकार का गड्ढा (Cavity) रहता है जिसमें एक प्रकार का तरल पदार्थ रहता है जो हड्डियों की गति में सहायता पहुँचाता है। यही Joint-oil कहलाता है।

२६. सौत्रिक बन्धन— हमारे शरीर में 206 हड्डियाँ और अनेक जोड़ हैं। किसी-किसी स्थान पर दो या दो से अधिक हड्डियाँ सफेद मजबूत सौत्रिक बन्धनों से बँधी हैं। इन्हें हम सन्धिबन्ध या सौत्रिक बन्धन कहते हैं।

२७. स्वर-यंत्र और उसके कार्य— यही आवाज की इन्द्रिय और टेंटुआ का ऊपरी भाग है। यहाँ नौ कार्टिलेजों से बना एक कोष्ठ है जिनमें मुख्य चार के नाम ये हैं— चुल्ली कार्टिलेज, मुद्रा कार्टिलेज और दो त्रिकोण कार्टिलेज।

इस कोष्ठ के नीचे के भाग से टेंटुआ आरम्भ होता है। इनके अतिरिक्त एक कार्टिलेज पीपल के पत्ते की तरह होता है, जो ढक्कन का काम करता है और भोजन को स्वर-यंत्र में गिरने से बचाता है। उसे स्वर-यन्त्रच्छद (Epiglottis) कहते हैं। स्वर-यन्त्र साँस लेने में तथा बोलने में हमारी सहायता करता है। इसके अलावा भोजन को हवा की नली में जाने से रोकता है।

२८. हृदय की धड़कन (स्पन्दन)—हृदय की स्वाधीन पेशियों के संकुचन और अनुशिथिलन से हृदय का स्पन्दन होता है। संकुचन का आरम्भ ग्राहक कोष्ठों से होता है। दोनों ग्राहक कोष्ठ एक ही साथ संकुचित होते हैं। स्वतः संकुचन के कारण ग्राहक कष्ठों में दबाव पड़ने से रक्त क्षेपक कोष्ठों में चला जाता है। पुनः क्षेपक कोष्ठों के संकुचन से रक्त धमनियों में चला जाता है। दोनों ग्राहक कोष्ठों का संकुचन लगभग एक ही समय होता है। इसके बाद सारा हृदय $\frac{1}{10}$ सेकेण्ड तक विश्राम करता है, जिससे ग्राहक कोष्ठों में शिराओं द्वारा पुनः रक्त भर जाता है। फलस्वरूप ग्राहक और क्षेपक कोष्ठों के बीच के वाल्व बन्द हो जाते हैं। इस समय तीन अर्द्धचन्द्राकार पल्लेवाले वाल्व भी बन्द रहते हैं। लेकिन क्षेपककोष्ठों के सिकुड़ने से इसके भीतर के रक्त का दबाव बढ़ जाता है। फलस्वरूप त्रि-अर्द्धचन्द्राकार पल्लेवाला वाल्व खुल जाता है और दायें क्षेपक कोष्ठ का रक्त फेफड़ों में तथा बायें क्षेपक कोष्ठ का रक्त महाधमनी में धकेल दिया जाता है। दोनों क्षेपक कोष्ठ एक साथ संकुचित होते हैं। क्षेपक कोष्ठों का सिकुड़ना आरम्भ होते ही हृदय का नुकीला शीर्षभाग (Apex) भीतरी दीवार से टकरा जाता है और तब हम स्पन्दन (Beat) का अनुभव करते हैं। छाती की मध्य रेखा से तीन-सवा-तीन इंच बायीं ओर पाँचवीं और छठी पसलियों के बीच में हाथ रखकर इसका अनुभव सहज ही प्राप्त किया जा सकता है। इसके बाद पुनः ग्राहक कोष्ठों का संकुचन आरम्भ होता है। कोष्ठों के एक बार फैलने और सिकुड़ने में करीब 8 सेकेण्ड लगता है। यानी एक मिनट में ये करीब 70-75 बार फैलते और सिकुड़ते हैं। एक बार फैलने और सिकुड़ने से एक स्पन्दन होता है। इस प्रकार पूर्ण वयस्क का हृदय विश्रामावस्था में प्रत्येक मिनट में 70-80 बार

धड़कता है। प्रत्येक स्पन्दन में हृदय के चारों कोष्ठ एक बार खाली होकर रक्त से भर जाते हैं और इसी बीच हृदय विश्राम भी कर लेता है। इस प्रकार हृदय की मांसपेशियों का संकुचन और अनुशिथिलन जीवनपर्यन्त चलता रहता है।

हृदयस्पन्दन-गति व्यक्तिविशेष की आयु, शारीरिक मुद्रा, मानसिक और शारीरिक अवस्था तथा अन्यान्य कारणों पर निर्भर रहती है। युवकों की अपेक्षा बच्चों के हृदय की स्पन्दन-गति अधिक होती है। ज्यों-ज्यों आयु बढ़ती जाती है, त्यों-त्यों हृदय की स्पन्दन-गति घटती जाती है। साथ ही परिश्रम करने पर स्पन्दन-गति में वृद्धि हो जाती है।

हृदय की पेशी की खराबी, रक्त की कमी, रक्त में कार्बन-डायक्साइड की वृद्धि अथवा ज्वर से भी हृदय तेजी से धड़कता है।

२६. इन्स्यूलीन—क्लोम-रस के अतिरिक्त क्लोम से एक प्रकार का आन्तरिक स्राव भी निकलता है जिसे इन्स्यूलीन (Insulin) कहते हैं। यह स्राव शरीर में शर्करा के परिवर्तनों पर नियंत्रण रखता है। रक्त में इसकी कमी हो जाने से मधुमेह-रोग (Diabetes) हो जाता है। मधुमेह के रोगियों के मूत्र में शर्करा आती है। रक्त में 'इन्स्यूलीन' देकर ही मूत्र में शर्करा की कमी की जाती है। अतः मधुमेह के रोगी शर्कराप्रधान भोजन का कम व्यवहार करते हैं तथा रक्त में शर्करा की वृद्धि होने से इन्स्यूलीन की सूई लिया करते हैं।

(ख)

१. कीट और रोग—अनेक कीट रोगों को फैलाते हैं, इनमें प्रमुख हैं—मच्छर, घर की मक्खी और चूहे के पिस्सू।

(i) किउलेक्स जाति के मच्छरों द्वारा फाइलेरिया रोग फैलता है।
(ii) एनोफिलीज जाति की मादा मच्छर द्वारा मलेरिया रोग फैलता है।
(iii) घर की मक्खी द्वारा हैजा, टायफाइड, पेचिश इत्यादि रोग फैलते हैं।
(iv) चूहे के पिस्सू द्वारा प्लेग रोग फैलता है।

२. कीटनाशक औषधियाँ—कीटनाशक औषधियाँ दो तरह की होती हैं : (i) परजीवघ्न और (ii) कीटघ्न ।

(i) परजीवघ्न—परजीवघ्न वे औषधियाँ हैं जो शरीर की त्वचा को दुःख देने वाले जूओं और खुजली आदि के कीटाणुओं का नाश करती हैं। गन्धक, बेंजील बेंजोएट, डी० डी० टी० इत्यादि और डेरिस इसी कोटि की औषधियाँ हैं।

(ii) कीटघ्न—कीटघ्न वे औषधियाँ हैं जो खटमल, तेलचट्टा, मक्खी, मच्छर या उनके अंडों का नाश करती हैं। गैमेक्सेन, डी० डी० टी०, डेरिस इत्यादि इनमें प्रमुख हैं।

३. कीटाणुनाशक औषधियाँ—रासायनिक संशोधक पदार्थ की ही कीटाणुनाशक औषधियों में गिनती होती है। आदर्श रासायनिक संशोधक (कीटाणुनाशक औषधियाँ) वे हैं जो उच्च श्रेणी के जीवों के लिए विषैले न हों, सस्ते होते हों तथा शीघ्र पानी में घुल जायँ तथा रोग के कीटाणुओं को नष्ट करने की पूरी शक्ति रखते हों। उनसे घृणास्पद दुर्गन्ध भी न आना चाहिए। कार्बोलिक एसिड, मर्करी परक्लोराइड, पोटाशियम परमैंगनेट, चूना, ब्लीचिंग पाउडर, क्लोरीन, सल्फर-डाइ-आक्साइड, फारमल्डीहाइड, फिनाइल इत्यादि प्रमुख कीटाणुनाशक औषधियाँ हैं।

४. कोष्ठबद्धता या कब्ज—विद्यार्थी-जीवन में यह विकार अत्यन्त साधारण है। इस रोग में नियमित समय पर मल त्याग में कमी हो जाती है।

कारण—यह विकार आन्त्र-गति की शिथिलता से होता है। इसके निम्नलिखित कारण हैं—

(i) भोजन में अपच्य भाग (Roughage) की अत्यन्त न्यूनता।

(ii) भोजन में जल की कमी—जल की कमी से मल में गाँठें बन जाती हैं जिसे (Scabylla) कहते हैं जिसे बाहर निकलने में बड़ी दिक्कत होती है।

(iii) भोजन का अनुपयुक्त होना—जैसे बाजार की मिठाइयाँ, घी में तले पकवान, अधिक मसालेदार चटपटे पदार्थ, वसा की अधिकता आदि।

(iv) व्यायाम की न्यूनता।

कोष्ठबद्धता से हानि— (क) सिर में दर्द हो जाता है, (ख) भूख नहीं लगती है तथा भोजन से अरुचि हो जाती है, (ग) किसी कार्य में मन नहीं लगता है तथा उत्साह की कमी हो जाती है, (घ) कभी-कभी जी मिचलाने लगता है।

कोष्ठबद्धता को दूर करने के उपाय— अंडी का तेल, कैलोमिल, त्रिफला चूर्ण, हरिद्रा चूर्ण, मधुयष्ठिचूर्ण (Puly glycerrhiza) या liquid paraffin आदि विरेचक वस्तुओं के प्रयोग से कोष्ठबद्धता दूर हो जाती है।

५. खनिज लवण— हमारे भोजन में विशिष्ट प्रकार के कार्बनिक और अकार्बनिक लवणों का रहना नितान्त आवश्यक है। लवणों के सहारे ही भोजन पचता है, रक्त शुद्ध अवस्था में रहता है और हड्डियों का गठन नियमित रूप से होता है। लवण हमारे शरीर की आंतरिक क्रियाओं का नियन्त्रण भी करता है। बच्चों की कमजोरी, उनके अव्यवस्थित दाँत, टेढ़े पैर, धँसी हुई छाती, अविकसित फेफड़े इत्यादि उनके भोजन में खनिज लवणों की कमी की ओर संकेत करते हैं। लवणों में सोडियम, पोटाशियम, कैलसियम, लौह, क्लोरीन, फासफोरस के निम्नलिखित लवणों की अधिक आवश्यकता पड़ती है—

साधारण लवण— लवणों में साधारण लवण (सोडियम-क्लोराइड) प्रमुख है। इसे हम दाल, साग-सब्जियों, अचार इत्यादि में मिलाकर खाते हैं। इससे भोजन सुस्वादु हो जाता है। साथ ही यह भोजन को पचाने में सहायक होता है।

कैलसियम के लवण— कैलसियम के लवणों में इनके कार्बोनेट और फास्फेट अधिक उपयोगी हैं। इनके द्वारा हड्डियाँ और दाँत सबल और पुष्ट होते हैं। हमारे शरीर में मिलने वाले कैलसियम के लवण का अधिकांश भाग हड्डियों में मिलता है। हमारे शरीर को कैलसियम के लवण दूध, दूध की बनी चीजें, छेना, अंडा, अनाज, पत्तीदार सब्जियाँ, मांस, गुड़ तथा छीमीदार बीजों से प्राप्त होते हैं।

पोटाशियम— पोटाशियम के लवण हमारी रक्त-केशिकाओं तथा तन्तुओं

२. कीटनाशक औषधियाँ—कीटनाशक औषधियाँ दो तरह की होती हैं: (i) परजीवघ्न और (ii) कीटघ्न।

(i) परजीवघ्न—परजीवघ्न वे औषधियाँ हैं जो शरीर की त्वचा को दुःख देने वाले जूओं और खुजली आदि के कीटाणुओं का नाश करती हैं। गन्धक, बेंजील बेंजोएट, डी० डी० टी० इत्यादि और डेरिस इसी कोटि की औषधियाँ हैं।

(ii) कीटघ्न—कीटघ्न वे औषधियाँ हैं जो खटमल, तेलचट्टा, मक्खी, मच्छर या उनके अंडों का नाश करती हैं। गैमेक्सेन, डी० डी० टी०, डेरिस इत्यादि इनमें प्रमुख हैं।

३. कीटाणुनाशक औषधियाँ – रासायनिक संशोधक पदार्थ की ही कीटाणुनाशक औषधियों में गिनती होती है। आदर्श रासायनिक संशोधक (कीटाणुनाशक औषधियाँ) वे हैं जो उच्च श्रेणी के जीवों के लिए विषैले न हों, सस्ते होते हों तथा शीघ्र पानी में घुल जायँ तथा रोग के कीटाणुओं को नष्ट करने की पूरी शक्ति रखते हों। उनसे घृणास्पद दुर्गन्ध भी न आना चाहिए। कार्बोलिक एसिड, मर्करी परक्लोराइड, पोटाशियम परमैंगनेट, चूना, ब्लीचिंग पाउडर, क्लोरीन, सल्फर-डाइ-आक्साइड, फारमल्डीहाइड, फिनाइल इत्यादि प्रमुख कीटाणुनाशक औषधियाँ हैं।

४. कोष्ठबद्धता या कब्ज—विद्यार्थी-जीवन में यह विकार अत्यन्त साधारण है। इस रोग में नियमित समय पर मल त्याग में कमी हो जाती है।

कारण—यह विकार आन्त्र-गति की शिथिलता से होता है। इसके निम्नलिखित कारण हैं—

(i) भोजन में अपच्य भाग (Roughage) की अत्यन्त न्यूनता।

(ii) भोजन में जल की कमी—जल की कमी से मल में गाँठें बन जाती हैं जिसे (Scabylla) कहते हैं जिसे बाहर निकलने में बड़ी दिक्कत होती है।

(iii) भोजन का अनुपयुक्त होना—जैसे बाजार की मिठाइयाँ, घी में तले पकवान, अधिक मसालेदार चटपटे पदार्थ, वसा की अधिकता आदि।

(iv) व्यायाम की न्यूनता।

कोष्ठबद्धता से हानि— (क) सिर में दर्द हो जाता है, (ख) भूख नहीं लगती है तथा भोजन से अरुचि हो जाती है, (ग) किसी कार्य में मन नहीं लगता है तथा उत्साह की कमी हो जाती है, (घ) कभी-कभी जी मिचलाने लगता है।

कोष्ठबद्धता को दूर करने के उपाय— अंडी का तेल, कैलोमिल, त्रिफला चूर्ण, हरिद्रा चूर्ण, मधुयष्ठिचूर्ण (Puly glycerrhiza) या liquid paraffin आदि विरेचक वस्तुओं के प्रयोग से कोष्ठबद्धता दूर हो जाती है।

५. खनिज लवण— हमारे भोजन में विशिष्ट प्रकार के कार्बनिक और अकार्बनिक लवणों का रहना नितान्त आवश्यक है। लवणों के सहारे ही भोजन पचता है, रक्त शुद्ध अवस्था में रहता है और हड्डियों का गठन नियमित रूप से होता है। लवण हमारे शरीर की आंतरिक क्रियाओं का नियन्त्रण भी करता है। बच्चों की कमजोरी, उनके अव्यवस्थित दाँत, टेढ़े पैर, धँसी हुई छाती, अविकसित फेफड़े इत्यादि उनके भोजन में खनिज लवणों की कमी की ओर संकेत करते हैं। लवणों में सोडियम, पोटाशियम, कैलसियम, लौह, क्लोरीन, फासफोरस के निम्नलिखित लवणों की अधिक आवश्यकता पड़ती है—

साधारण लवण— लवणों में साधारण लवण (सोडियम-क्लोराइड) प्रमुख है। इसे हम दाल, साग-सब्जियों, अचार इत्यादि में मिलाकर खाते हैं। इससे भोजन सुस्वादु हो जाता है। साथ ही यह भोजन को पचाने में सहायक होता है।

कैलसियम के लवण— कैलसियम के लवणों में इनके कार्बोनेट और फास्फेट अधिक उपयोगी हैं। इनके द्वारा हड्डियाँ और दाँत सबल और पुष्ट होते हैं। हमारे शरीर में मिलने वाले कैलसियम के लवण का अधिकांश भाग हड्डियों में मिलता है। हमारे शरीर को कैलसियम के लवण दूध, दूध की बनी चीजें, छेना, अंडा, अनाज, पत्तीदार सब्जियाँ, मांस, गुड़ तथा छीमीदार बीजों से प्राप्त होते हैं।

पोटाशियम— पोटाशियम के लवण हमारी रक्त-केशिकाओं तथा तन्तुओं

में क्लोराइड और कार्बोनेट के रूप में पाये जाते हैं। ये प्रधानतः साग-सब्जियों से प्राप्त होते हैं।

लोहा— रक्त के लाल कणों के निर्माण में लोहे के लवणों की आवश्यकता होती है। साधारणतः मांस (लीवर), गुड़, अण्डे, गेहूँ तथा अन्य अनाजों से लोह-लवण प्राप्त होते हैं।

गन्धक— सल्फेट के रूप में गन्धक तन्तुओं में पायी जाती है। इसकी उपस्थिति से लीवर अधिक सक्रिय हो जाता है, जिससे अन्य लवणों के शोषण में मदद पहुँचती है। यह प्रोटीन-प्रधान भोजन के तत्त्वों द्वारा हमारे शरीर में पहुँचता है।

६. खुजली— यह एक प्रकार का चर्म-रोग है। यह रोग एक प्रकार के कीटाणु से पैदा होता है। यह छूआछूत के रोगों में से एक है।

त्वचा के ऊपर मैल रहने पर यह रोग होने की सम्भावना बढ़ती है। त्वचा के ऊपर छोटी-छोटी फुन्सियाँ दीख पड़ती हैं। उनके अन्दर पानी-जैसा पदार्थ भरा रहता है। इस पानी में खुजली के कीटाणु रहते हैं। खुजलाने से तरल पदार्थ के साथ ये कीटाणु भी फैल जाते हैं एवं इस प्रकार नीरोग स्थानों को भी आक्रान्त कर देते हैं।

खुजली होने पर नीम, गन्धक, कार्बोलिक एसिड युक्त साबुन व्यवहार करने से रोग फैल नहीं पाता है। साथ-ही-साथ रोग भी अच्छा होता है।

खुजली के रोगी के कपड़ों का व्यवहार नहीं करना चाहिए। इससे रोग फैलता है। रोगी के कपड़ों को सोडा-पानी में उबालकर धोना चाहिए।

यह रोग कष्टदायक है, पर घातक नहीं।

७. चाय— संसार में जल और दूध के बाद पेय के रूप में सबसे अधिक प्रचार चाय का है। इसमें थेइन (Theine) एवं कैफीन (Caffeine) नामक उत्तेजक पदार्थ रहते हैं, जो वास्तव में विशेष हानिकारक नहीं हैं। चाय में एक अन्य पदार्थ टैनिन (Tannin) है, जो मलावरोधक है। चाय मध्यम मात्रा में पीने से लाभ है, क्योंकि यह थकान दूर करती है। अधिक मात्रा में चाय पीने पर पाचन-शक्ति बिगड़ जाती है और भूख जाती रहती है।

८. चबाने का महत्त्व—

(i) चबाने से खाद्य पदार्थ चूर-चूर हो जाता है तथा छोटे-छोटे कणों में टूट जाता है।

(ii) मुख-गह्वर (Buccal cavity) के अन्दर खाद्य पदार्थ चबाया जाता है। अतः चबाने की क्रिया से खाद्य पदार्थ लाला से मिश्रित हो जाता है। लाला कार्बोहाइड्रेट (Carbohydrate) को पचाती है तथा निगलने की क्रिया (Deglutination) को एवं परवर्ती पाचन-क्रिया को सरल करती है।

(iii) चबाने से खाद्य पदार्थ का स्वाद तथा गन्ध मिलता है। ये पाचक रसों (Digestive juices) की निःसरण-क्रिया को उत्साहित करते हैं तथा अपाच्य एवं शरीर के लिए हानिकारक पदार्थों को निकाल देने में सहायता पहुँचाते हैं।

९. चेचक का टीका (Vaccination against small pox)— चेचक का टीका लगाने का उपाय पहले-पहल जेनर (Janner) नाम के एक प्रसिद्ध डाक्टर ने निकाला था। जिन बछड़ों को चेचक होती है उनके फफाले के मवाद से टीका लगाने की दवा तैयार की जाती है। अधिक मात्रा में दवा तैयार करने के लिए बछड़ों में जान-बूझकर चेचक फैलायी जाती है।

इस दवा के टीके मनुष्य की बाँह में लगाये जाते हैं। जिस जगह टीका लगाया जाता है, उस जगह चौबीस घण्टे में सूजन आने लगती है। इसके अलावा, वहाँ बड़े-बड़े फफोले उठ जाते हैं। इनमें धीरे-धीरे पानी और मवाद भर आता है। सात-आठ दिन में ये सूख जाते हैं और इनपर पपड़ी बनकर उतर आती है। इससे रोग-निरोध-क्षमता उत्पन्न होती है। साधारणतः, टीका लेने के बाद चेचक नहीं होती है। अगर हो भी गयी तो उसका असर कम रहता है।

चेचक से बचने के लिए टीका लेना बहुत जरूरी है। बच्चे के जन्म के तीन दिन बाद उसे टीका लगवाया जा सकता है। टीका अगर इतनी छोटी उम्र में न लगवायें तो छः महीने के भीतर जरूर लगवा दें। इसके बाद दस-बारह वर्ष की उम्र में भी टीका ले लेना चाहिए। इससे फिर जिन्दगी-भर चेचक होने का भय नहीं रहता।

१०. जहाँ-तहाँ थूकने से हानि— कई प्रकार के रोगों के कीटाणु लार में पाये जाते हैं। इनमें कुछ ऐसे हैं जो अत्यन्त संक्रामक हैं। लार थूकने से ये कीटाणु भी उसके साथ फैल जाते हैं। थूक सूखने पर कीटाणु मरते नहीं, वरन् हवा के साथ उड़ते रहते हैं। अतः थूक के सहारे रोग फैलने की सम्भावना बढ़ती है। निर्दिष्ट स्थानों पर थूकने से विसंक्रामक ओषधियों की सहायता से कीटाणुओं को मारना सरल हो जाता है, अन्यथा नहीं।

थूक पर मक्खियाँ तथा अन्य कीड़े बैठते हैं और रोग संक्रान्त करने में सहायता करते हैं। अतः जहाँ-तहाँ थूकना नहीं चाहिए।

११. जल घुलनशील विटामिन— विटामिन बी एवं विटामिन सी जल में घुलनेवाले विटामिन हैं।

विटामिन बी—इसके कई उपभेद हैं जिनमें निम्नलिखित प्रमुख हैं—

विटामिन बी$_1$ (B_1)— यह बेरी-बेरी से बचाता है तथा मांस, चोकर वाले आटे तथा ईस्ट (Yeast) से प्राप्य है।

विटामिन बी$_2$ (B_2)— इसके अभाव में चर्म-रोग तथा चक्षु-रोग हो जाते हैं। यह तरकारियों से प्राप्य है, जिसमें ईस्ट (Yeast) सबसे उत्तम साधन है।

विटामिन बी$_{12}$ (B_{12})— इसकी कमी से अनेमिया (रक्तहीनता) हो जाती है। यह तरकारियों में प्राप्य है।

विटामिन सी— यह स्कर्वी (Scurvy) से बचाता है। इसकी कमी के कारण मसूढ़े फूल जाते हैं, दाँत कमजोर हो जाते हैं तथा घाव शीघ्र अच्छे नहीं होते। यह सभी प्रकार के ताजे फलों एवं तरकारियों में प्राप्य है।

१२. टीका— चेचक, टायफायड आदि रोगों को रोकने के लिए टीका एक कृत्रिम साधन है। बलवान और स्वस्थ शरीर वाले मनुष्य में प्राकृतिक रोग-निरोध-क्षमता अधिक होती है। कमजोर मनुष्य में यह शक्ति कम होती है। यह अकसर देखा गया है कि यदि किसी व्यक्ति को कोई रोग एक दफा हो गया है, तो उसको वह रोग फिर दूसरी बार नहीं होता। उसके शरीर में उस रोग को रोकने की क्षमता आ जाती है। चेचक, टायफायड आदि रोगों में इस

तरह की प्राप्त रोग-निरोध-क्षमता होती है। रोग रोकने के लिए तरह-तरह के कृत्रिम साधन काम में लाये जाते हैं। यह टीका (Vaccination) या इंजेक्शन के द्वारा होता है। जब किसी रोग के होने की आशंका हो तो टीका या इंजेक्शन ले लें। यही कृत्रिम साधन रोग को रोक सकेगा।

चेचक का टीका— क्रमसंख्या ९ का उत्तर देखें।

१३. डी० डी० टी० — गत युद्ध में मच्छरों को मारने वाली एक अत्युत्तम वस्तु का आविष्कार हुआ है जिसको डी० डी० टी० (D. D. T.) कहते हैं। इसका उपयोग मिट्टी के तेल या जल में मिलाकर किया जाता है।

कमरे को बन्द करके एक पम्प द्वारा इसकी फुहारें दीवारों और छतों पर छिड़की जाती हैं। कुछ समय तक कमरे बन्द रखे जाते हैं। इससे मच्छर और मक्खी सब मर जाते हैं। गढ़े, नाले, जलाशय इत्यादि में, जहाँ जल भरा हो अथवा जहाँ कूड़ा या गन्दगी एकत्र हो, वहाँ इसको जल में मिलाकर छिड़कने से मच्छरों, मक्खियों तथा उनके लार्वों का नाश होता है।

यह वस्तु इतनी उपयोगी सिद्ध हुई है कि मच्छरों को मारने के लिए अब इसका प्रयोग किया जाता है और इसके द्वारा अनेक स्थान, जहाँ मच्छरों के कारण घोर मलेरिया फैलता था और रहना कठिन था, मच्छरों से पूर्णतया रहित हो गये हैं।

१४. डिप्थीरिया— See Page 160.

१५. दाँत की सफाई—प्रत्येक दिन दोनों समय दतुवन से अथवा अच्छे विशुद्ध पाउडर से दाँत को अवश्य साफ करना चाहिए। दाँत की सफाई आवश्यक है, नहीं तो दाँतों की चमक जाती रहती है और मुँह से बदबू निकलने लगती है। दाँत नहीं साफ करने से इसमें कीड़े लग जाते हैं। ये कीड़े खून में मिलकर खून विषैला कर देते हैं, मसूड़े सड़ जाते हैं और पाईरिया की बीमारी हो जाती है। इसका फल यह होता है कि अपच, हैजा आदि हो जाते हैं। कभी-कभी दाँतों की जड़ में घाव हो जाता है जिससे पीब निकलता रहता है। इस रोग की वृद्धि हो जाने से मनुष्य के शरीर का घाव अच्छा नहीं होता और अन्त में मृत्यु भी हो जाती है। खाने के बाद और खासकर

मीठा खाने के बाद दाँतों को अच्छी तरह साफ करना चाहिए। इनकी सफाई न होने से पाचन-क्रिया बिगड़ जाती है। अन्न के कण दाँतों में रह जाने से सड़ते हैं जिससे दाँतों में कीड़े पड़ जाते हैं। अन्न के कणों के सड़ने से या चीनी पर बैक्टीरिया (Bacteria) के काम से तेजाब बन जाता है। तेजाब धीरे-धीरे दाँतों को गलाता है। इस तरह दाँतों में छेद हो जाते हैं जो डेण्टल केरीज (Dental caries) कहलाते हैं। दाँतों में केरीज बहुत दुःखदायी होते हैं। इससे मसूड़ा सूज जाता है, दर्द होता है और तरह तरह की बेचैनी रहती है। (ऐसा होते ही खराब दाँतों को उखड़वा देना चाहिए)। अतः खाने-पीने के बाद दाँतों को अच्छी तरह साफ करना चाहिए। ब्रुश से या दतुवन से दाँत को साफ करना सबसे उत्तम है। नमक तथा कच्चा कोयला चूर कर दन्तमंजन आसानी से तैयार किया जाता है।

१६. दाद— दाद फंगस (Fungus) के आक्रमण के कारण त्वचा पर होता है। दाद के निम्नलिखित भेद हैं—

(i) साधारण चर्म का दाद— घाव साधारणतः एक या कई फुनसियों के जमा के रूप में आरम्भ होकर धीरे-धीरे फैलता है एवं बढ़कर मटर के दाने से तीन-चार इंच के व्यास का हो सकता है। घाव अँगूठी (Ring) की तरह बीच में आराम (Healing in the centre) होकर परिधि की वृद्धि द्वारा बढ़ता है। घाव त्वचा की सतह से कुछ ऊपर उठा रहता है एवं उसमें कुछ सूजन होती है।

(ii) धोबिया दिनाई— इस प्रकार का दाद जांघ-(Genito crural) प्रदेश में होता है। इसमें खुजलाहट अधिक होती है। यह प्रायः लाल रंग का होता है।

दाद साधारणतः खुजलाता है एवं यह शुष्क तथा आर्द्र—दो प्रकार का होता है। खुजलाहट शुरू होने पर रोगी को परेशान करता है—खासकर सभ्य समाज में यह भद्दा मालूम पड़ता है।

इसकी दवा कई प्रकार की होती है। इसे बढ़ने नहीं देना चाहिए।

दाद से बचने के लिए त्वचा को साफ रखना जरूरी है। यह छूआछूत का रोग है।

१७. प्रोटीन— इनमें कार्बन, आक्सीजन, हाइड्रोजन के अतिरिक्त नाइट्रोजन, फासफोरस, गन्धक इत्यादि तत्त्व भी पाये जाते हैं। प्रोटीन का निर्माण बहुत-से सरल यौगिकों के संयोग से होता है। इन सरल पदार्थों को एमिनो-अम्ल की संज्ञा दी गयी है। प्रोटीन हमारे शरीर की वृद्धि के लिए नितान्त आवश्यक है। प्रोटीन को, जिसमें उपयुक्त दसों प्रकार के एमीनो-अम्ल वर्त्तमान रहते हैं, पूर्ण प्रोटीन कहते हैं।

प्रोटीन के काम— प्रोटीन ही शरीर की प्रत्येक कोशिका का जीवद्रव्य तैयार करता है। हमारे शरीर में प्रोटीन विभाजित होकर एमिनो-अम्लों के रूप में रक्त-प्रवाह में मिल जाता है। इसी रूप में शरीर की कोशिकाएं इन्हें ग्रहण कर लेती हैं। फलस्वरूप शरीर में इसका पूर्णरूपेण आत्मीकरण हो जाता है। बच्चों की शारीरिक वृद्धि तथा वयस्कों में टूटी-फूटी कोशिकाओं की मरम्मत में इसकी आवश्यकता होती है।

साधन के विचार से प्रोटीन के भेद—प्राप्ति के विचार से प्रोटीन के निम्नलिखित दो साधन हैं—(i) वानस्पतिक प्रोटीन— सभी प्रकार के दाल-जातीय पदार्थ, जैसे चना, मटर, उड़द, मूँग, सोयाबीन, काजू, बादाम इत्यादि में यह पाया जाता है। गल्यूटीन के रूप में यह गेहूँ से भी प्राप्त होता है। वानस्पतिक प्रोटीन मध्यम वर्ग के होते हैं।

(ii) प्राणिज प्रोटीन— प्राणिज प्रोटीन हमें मांस, मछली, अण्डा, छेना, दूध इत्यादि से प्राप्त होता है। वानस्पतिक प्रोटीन की अपेक्षा यह सहज सुपाच्य है। भोजन में यथाचित मात्रा में इसका होना आवश्यक है। शाकाहारी भोजन में प्राणिज प्रोटीन की पूर्त्ति अधिक मात्रा में दूध और दही से की जाती है। प्रोटीनों में प्राणिज प्रोटीन को प्रथम श्रेणी दी गयी है, चूँकि इनमें इसी प्रकार के एमिनो-अम्ल पाये जाते हैं।

१८. फल— शक्ति और गर्मी के उत्पादकों में फल भी अपना विशेष स्थान रखता है। फल दो प्रकार के होते हैं— हरे (ताजे) और सूखे।

नारंगी, अनार, आम, केला, अमरूद, पपीता इत्यादि की गिनती हरे फलों में होती है। शाकाहारियों के लिए ये बहुत आवश्यक हैं। इनमें शर्करा, श्वेतसार, खनिज लवणों के अतिरिक्त विटामिन भी रहते हैं। इनमें प्रोटीन और वसा बहुत कम होती हैं। फल-सेवन से तरह-तरह के रोग से लोग बच जाते हैं तथा स्वास्थ्य ठीक रहता है। साथ-ही-साथ इनसे कब्ज भी दूर होता है। बादाम, अखरोट, किशमिश, पिस्ता इत्यादि सूखे फल हैं। ये जाड़े में खाये जाते हैं। इन फलों में प्रोटीन और वसा अधिक रहती हैं पर कार्बोहाइड्रेट कम रहता है।

१६. मधुमेह—क्लोम की गिल्टी से एक प्रकार का रस निकलता है जिसे 'इन्स्युलिन' कहते हैं। यह शक्कर के रासायनिक परिवर्तन का नियन्त्रण करता है। इसी 'इन्स्युलिन' की कमी से मधुमेह रोग हो जाता है। इस रोग में पेशाब के साथ चीनी आने लगती है। शरीर का वजन दिन-प्रतिदिन घटता जाता है। चेहरा पीला हो जाता है। भूख अधिक लगती है। पेशाब भी अधिक होता है तथा प्यास भी अधिक लगती है। थोड़ा भी शारीरिक एवं मानसिक काम करने से थकावट मालूम होने लगती है। शरीर की गाँठ-गाँठ में दर्द मालूम होता है। अगर यथासमय चिकित्सा का प्रबन्ध न हो तो रोगी की मृत्यु हो जाती है। इस रोग में रोगी को सूखी रोटी (गेहूँ की) एवं हरी साक-सब्जी का व्यवहार करने से फायदा होता है। तेल एवं घी का प्रयोग बिलकुल छोड़ देना पड़ता है। रोगी को कम खाने की सलाह डाक्टर देते हैं। हालत खराब होने पर रोज 'इन्स्यूलिन' की सूई दी जाती है।

[illegible] मुँह से साँस लेने से हानि—साँस लेने का अंग नाक है, मुँह नहीं। मुँह के सहारे साँस लेने से वह नाक का काम नहीं करता है; फलतः मुँह के सहारे प्रवेश करने वाली वायु साँस के उपयोगी बने बिना ही फेफड़ों में प्रवेश करती है। नाक के बाल तथा स्राव वायु को साँस के लायक बनाते हैं।

मुँह से प्रवेश करने वाली हवा छनती नहीं है। फलतः उसमें उपस्थित धूल-कण मुँह के अन्दर प्रवेश करते हैं। धूल-कणों के साथ कीटाणु भी रहते हैं। ये मुँह में उपस्थित भोज्य पदार्थ में बढ़ने का उत्तम माध्यम (Media

for growth) पाते हैं। इस कारण मुँह का आच्छादन (Lining) सड़ने लगता है और बदबू निकलती है। मुँह में उपस्थित लसीका-ग्रन्थियाँ इन कीटाणुओं को मारती हैं और वे फूल जाती हैं। फैरिंजाइटिस (Pharyngitis), लरिंजाइटिस (Laryngitis) आदि रोग होते हैं।

बाहर की हवा अपेक्षाकृत शुष्क होती है। अतः यह भीतर जाने के समय मुँह को सुखा देती है एवं काफी देर तक ऐसे साँस लेने से ट्रेकिया (Trachia) एवं ब्रांकस (Bronchus) को भी सुखा देती है और सर्दी, खाँसी, ब्रोंकाइटिस (Bronchitis), निउमोनिया (Neumonia) आदि भयंकर रोगों के फैलने में सहायक हो जाती है।

२१. मरोड़ (Dysentery)— इस रोग में पीड़ा और ऐंठन होती है। ऐंठन के साथ दस्त आता है तथा मल के साथ श्लेष्मा (Mucous) मिली रहती है। मल के साथ प्रायः रक्त भी आता है।

यह रोग दो प्रकार का होता है। एक बैसिलस जीवाणुओं के कारण तथा दूसरा अमीबा नामक जीव के कारण उत्पन्न होता है।

जीवाणुओं द्वारा उत्पन्न रोग में प्रतिदिन १५-२० से लेकर १०० तक दस्त आते हैं। कभी-कभी इससे ज्यादा दस्त भी आते हैं। पेट में जोरों की ऐंठन तथा पीड़ा होती है। कभी-कभी १०३° या १०४° बुखार भी हो जाता है। दस्त में मल कम पर रक्त और आँव अधिक रहते हैं। अमीबा नामक जीव के कारण उत्पन्न रोग में न तो इतने दस्त आते हैं और न ऐंठन ही उतनी होती है। इसमें ज्वर भी नहीं होता। यह रोग अधिक समय तक बना रहता है। मक्खियों का विनाश एवं भोजन के पदार्थों की उनसे रक्षा तथा मकान के चारों ओर स्वच्छता ही इस रोग से बचने के प्रमुख साधन हैं।

२२. लाल पोटाश— इसका रासायनिक नाम पोटाशियम परमगनेट (Potassium Permanganate) है। इसके रवे अत्यधिक लाल होने के कारण काले जैसे लगते हैं।

यह मुख्यतः (स्वास्थ्य-विज्ञान में) कीटाणुनाशक के रूप में व्यवहृत किया जाता है। जब हैजा महामारी के रूप में फैलता है तो पानी को विशोधित

करने के लिए यह प्रधानतः व्यवहृत होता है। अन्यान्य कीटाणुनाशक पदार्थों के जैसा यह विष का कार्य नहीं करता।

इसका 5% घोल दुर्गन्धनाशक के रूप में व्यवहृत किया जाता है। कुएँ का पानी विशोधित करने के लिए 6 औंस (या करीब 70 ग्राम) एक बाल्टी जल में अच्छी तरह घुला कर कुए में डाल दिया जाता है। तत्पश्चात् कुएँ के जल को उत्तम रूप से चलाया जाता है। जल को चलाने के पश्चात् एक बाल्टी पानी निकालकर देखा जाता है कि पानी का रंग लाल हुआ या नहीं। पानी लाल नहीं होने पर और पोटाश डाला जाता है। इसके बाद पानी को आठ घण्टे व्यवहृत नहीं किया जाता। कुएँ में लाल पोटाश साधारणतया संध्या के समय डाला जाता है तथा उसका पानी सुबह व्यवहार में लाया जाता है।

२३. विटामिन ए— यह चिकनई में घुलने वाला विटामिन है। यह कुछ विशेष प्रकार की चिकनई है। यह काड नामक मछली के तेल, मक्खन, अण्डे की जर्दी, टमाटर, पत्ती वाली हरी भाजियों तथा दूध में पाया जाता है। भोजन में इसके रहने से पाचन-शक्ति ठीक रहती है, भूख लगती है और आयु बढ़ती है। इसकी कमी से रतौंधी होती है, आँखों में आँसू नहीं बनते तथा दाँत भी कमजोर हो जाते हैं।

२४. विटामिन बी— यह पानी में घुलने वाला विटामिन है। यह पौधों के बीज, अण्डे की जर्दी, फल, साग, अँकुरे हुए गेहूँ, जौ, चावल का ऊपरी भाग तथा अन्न के छिलकों में ही पाया जाता है। यह स्नायु-संस्थान को ठीक दशा में रखता है। इसकी कमी से बेरी-बेरी और पेलेग्रा की बीमारी हो जाती है। इसके भरपूर प्रयोग से पाचन-क्रिया ठीक रहती है, भूख लगती है, चर्म-रोग होने नहीं पाता तथा यह शरीर की बाढ़ में सहायक होता है। यह कई तरह का होता है जिससे इसे 'बी कम्प्लेक्स' भी कहते हैं।

२५. विटामिन सी— यह पानी में घुलने वाला विटामिन है। यह ताजे रसदार फल, हरी सब्जी, साग और अँकुरते बीजों में पाया जाता है। संतरा, नारंगी, नीबू में यह विशेष रूप से रहता है। दाँत और हड्डियों को पुष्ट बनाने में

यह सहायक होता है। इसकी कमी से स्कर्वी (Scurvy) नामक रोग होता है, मसूढ़ों से खून निकलने लगता है, शरीर पर के घाव जल्द अच्छे नहीं होते इत्यादि।

२६. विटामिन डी— यह भी चिकनई में घुलने वाला विटामिन है। काड मछली के जिगर का तेल, दूध, मक्खन, घी, अण्डे की जर्दी में यह विटामिन पाया जाता है। खुले बदन धूप में रहने से शरीर को Vit. D मिलता है। त्वचा के नीचे आर्गोसटेरोल नामक एक पदार्थ है जो Ultra violet rays के द्वारा क्रियाशील होकर Vit. D बनाता है। यह सूखा रोग से बचाव करता है तथा हड्डियों की पूरी उन्नति में सहायक होता है। इसकी कमी से बच्चों को सुखंडी की बीमारी हो जाती है।

२७. सूर्य की किरणों से स्वास्थ्य को लाभ— (i) सूर्य की किरणों में ऐक्टिनिक रश्मियाँ, विशेषकर अलट्रावायलेट रश्मियाँ, तीव्र कीटाणुनाशक हैं। ऐक्टिनिक रश्मियाँ वायुमण्डल में ओजोन तथा हाइड्रोजन पेरोक्साइड बनाती हैं। ये पदार्थ तीव्र आक्सीकारक हैं। ये आर्द्रता का नाश भी करती हैं।

(ii) विटामिन D_2 Calciferol, अर्गोस्टेरोल पर अलट्रावायलेट रश्मि की क्रिया से बनता है। प्राकृतिक रूप से यह हमारी त्वचा में सर्य की किरण की क्रिया से बनता है।

२८. हरी तरकारी से लाभ— (i) अधिक मात्रा में क्षारीय लवण रहने के कारण यह रक्त को तीव्र रूप से आम्लिक होने से बचाती है।

(ii) विटामिन A, B_1, B_2 और C का स्रोत है।

(iii) कोष्ठबद्धता दूर करती है।

फलों से लाभ— (i) इनसे शर्करा, श्वेतसार, खनिज लवण तथा विटामिन मिलते हैं जो स्वास्थ्य के लिए आवश्यक हैं।

(ii) इनसे कब्ज दूर होता है।

(iii) इनसे भूख लगती है और पाचन-शक्ति बढ़ती है।

(iv) नारंगी, अनानास आदि फलों से प्यास मिटती है।

२६. हवा से फैलनेवाली (Air-borne) बीमारियाँ— छूत के कुछ रोगी के कीटाणुओं का वहन वायु द्वारा होता है। इन रोगों के कीटाणु रोगी की थूक, छींक, खखार, साँस इत्यादि के द्वारा बराबर बाहर आते रहते हैं और हवा में मिल जाते हैं। छींक के साथ बलगम के असंख्य कण निकलते हैं, जिन पर असंख्य कीटाणु होते हैं। ये कीटाणु हवा में तैरते रहते हैं और साँस के सहारे स्वस्थ मनुष्य के शरीर में प्रवेश कर जाते हैं, जिससे स्वस्थ मनुष्य को भी बीमारी हो जाती है। इस प्रकार फैलने वाले रोगों में निम्नलिखित हैं—

(क) खसरा, (ख) सर्दी, (ग) खाँसी, (घ) गलसुआ, (ङ) राजयक्ष्मा, (च) न्यूमोनिया, (छ) इन्फ्लुएंजा, (ज) डिप्थीरिया, (झ) मस्तिष्कसुषुम्नीय ज्वर, (ञ) चेचक, छोटी चेचक इत्यादि।

३०. अपौष्टिकता— पर्याप्त मात्रा में संतुलित भोजन के अभाव में शरीर का वजन घट जाता है, कमजोरी हो जाती है, शरीर में खून का अभाव हो जाता है, आँख की रोशनी कम हो जाती है तथा शरीर की रोग-निरोध-क्षमता घट जाती है। अतः, पौष्टिक भोजन के अभाव में मनुष्य अनेक रोगों के चंगुल में फँस जाते हैं। भोजन में पौष्टिकता की कमी इस कारण भी हो जाती है जब सभी आवश्यक तत्त्व उचित मात्रा में भोजन में सम्मिलित नहीं किये जाते हैं। विटामिन 'ए', 'बी', 'सी' के अभाव में वयस्क को बेरी-बेरी का रोग हो जाता है और बच्चों को सुखण्डी का रोग हो जाता है। अतः, अपौष्टिकता से बचने के लिए स्वास्थ्य का आवश्यक ज्ञान अनिवार्य है, नहीं तो उचित परिमाण से अधिक या कम किसी तत्त्व के प्रयोग से लोगों को बहुधा अपौष्टिकता का शिकार बनना पड़ता है। संतुलित भोजन के आवश्यक तत्त्व हैं—प्रोटीन, कार्बोहाइड्रेट, वसा, विटामिन और खनिज।

३१. अंडा— अण्डे में हमलोग मुर्गी, बतक, कबूतर इत्यादि के अण्डों को अधिकतर भोजन के रूप में व्यवहृत करते हैं। यों तो कम परिमाण में, बड़ी-बड़ी मछलियों के अण्डे भी कभी-कभी उपलब्ध हो जाते हैं; लेकिन ये सहज सुलभ नहीं हैं।

अंडे का पौष्टिक महत्त्व— अण्डे से ही बच्चे निकलते हैं। अतः स्पष्ट है

कि शरीर के सभी पौष्टिक तत्त्व इसमें वर्त्तमान हैं। साधारणतः इसमें प्रोटीन, वसा, खनिज लवण और विटामिन 'ए' और 'डी' रहते हैं। अण्डे की सफेदी (Egg-white) में चार प्रकार के प्रोटीन रहते हैं जिनसे शरीर को उन्नत कोटि का एमीनो-अम्ल प्राप्त हो जाता है। अण्डे की जर्दी (Egg-yolk) में विटामिन 'ए', 'बी', 'डी' के अतिरिक्त वसा और दो उन्नत कोटि के प्रोटीन तथा खनिज लवण विशेषकर उपयोगी लौह-लवण वर्त्तमान रहते हैं। अतः हमारे भोजन में इसका अधिक पौष्टिक महत्त्व है। उबालने या तलने से अण्डा देर में पचता है। अतः इसे यदि कच्चा ही खाया जाय तो अत्युत्तम है। एक अण्डे का पौष्टिक महत्त्व एक कप दूध से भी अधिक है। कमजोर पेट वालों के लिए दूध पचाना मुश्किल है, लेकिन अण्डे का पचाना सरल है। अतः रोगियों, कमजोर पेट वालों और बच्चों के भोजन में अण्डे का रहना आवश्यक है।

३२. उठने-बैठने की अनुचित मुद्रा का प्रभाव— मुद्रा एक ऐसी विधि है जिसके द्वारा जब हम अचेत (Unconscious) अवस्था में भी रहते हैं तो पेशियों की सिकुड़न और फैलाव की स्थिति का एकीकरण किये रहते हैं। इससे हमारे शरीर में एक विनीत और ठीक गति हो पाती है और शरीर के गुरुत्व-केन्द्र की रेखा भी स्थिर रह पाती है।

मुद्रा एक तांत्रिक क्रिया (Nervous action) है। यह मस्तिष्क के कुछ केन्द्रों से सम्बद्ध रहती है। इन्हीं केन्द्रों से निकलने वाले स्नायु (Nerve) आसन को नियन्त्रित रखते हैं।

मुद्रा का प्रभाव— आसन से मांसपेशियाँ क्रियाशील रहती हैं, मांसपेशियों में कमजोरी नहीं आती। शरीर में काम करने की क्षमता बढ़ती है, जिससे शरीर पर किसी रोग के आक्रमण का असर नहीं पड़ता।

बुरी मुद्रा—झुक कर बैठना, झुक कर खड़ा रहना, अनुचित ढंग से व्यायाम करना, ठीक ढंग से न खड़ा होना, न बैठना, न उठना ये सब बुरी मुद्रा के अन्तर्गत आते हैं।

बुरी मुद्रा का महत्त्व— इससे पेशियों में बल की कमजोरी, शरीर के रूप में विकृति, रीढ़ का टेढ़ा हो जाना इत्यादि बुरे प्रभाव पड़ते हैं। इससे

शरीर का पूर्ण विकास नहीं होता और न सुन्दर व्यक्तित्व ही रहता है। कभी-कभी शरीर विकृत-सा दिखाई देता है।

(ग)

१. दम घुटना— See Page 240.

२. नाक से रक्त बहना - See Page 255.

३. पागल जानवरों का काटना — बहुधा जाने या अनजाने पागल कुत्ता, सियार, बिल्ली, लोमड़ी, बन्दर या अन्य कोई जानवर लोगों को काट लेता है। ऐसे जानवरों का काटना खतरे से खाली नहीं होता। अगर इसका ठीक से उपचार न किया जाय, तो साधारण जख्म हाइड्रोफोबिया नामक घातक रोग का रूप धारण कर लेता है। पागल जानवरों के काटने पर निम्नलिखित उपचार करना चाहिए—

(i) यदि खून बहता है तो बहने दें। (ii) क्षत स्थान को कार्बोलिक या लाइफब्वाय साबुन और गर्म जल से भलीभाँति धोयें। (iii) अगर पोटाशियम परमैंगनेट मिले तो गर्म जल में इसके कुछ रवों को डाल कर उसके घोल से घाव को धोवें। (iv) जिस अंग पर जानवर ने काटा हो उसे नीचा किये रहें ताकि अधिक-से-अधिक विष से युक्त रक्त बह जा सके। (v) पुनः जख्म को साफ कपड़े, रूई आदि से ढक कर पट्टी बाँध दें। (vi) आहत व्यक्ति को अस्पताल पहुँचावें। (vii) डाक्टर की सलाह से सूई दिलवावें। आजकल अस्पतालों में इसकी मुफ्त सूई दी जाती है।

४. विद्युत्-धक्का— See Page 241.

५. बनावटी साँस की क्रिया—प्रायः गले में फाँसी लगने, जहरीला गैसों के सूँघने या जल में डूबने, सदमा लगने इत्यादि कारणों से साँस बन्द हो जाती है। यदि किसी भी कारण से साँस बन्द हो गयी हो तो निम्नलिखित तरीकों में से किसी भी तरीके से साँस लाने का प्रयत्न करना चाहिए और यह क्रिया तब तक जारी रखनी चाहिए जब तक डाक्टर आकर यह नहीं कह दे कि आक्रान्त व्यक्ति मर चुका है और पुनः जीवन लौटने की आशा नहीं है।

प्रवेशिका

सफलता सोपान

कैसे पकायें

क्या खायें

SURE SUCCESS

IN

DIETITICS AND COOKERY

FOR

SECONDARY SCHOOL EXAMINATION

कुमुद दास, एम० ए०

बिहार बुक डिपो, कल्याणी : मुजफ्फरपुर

i

पाठ-सूची

❀ ❀

प्रश्न—१. अपनी पाकशाला का निर्माण आप किस भांति करेंगे ताकि भोजन बनाना एक आनन्द-दायक कार्य प्रतीत हो। (1960 A)

उत्तर—१. रसोई घर दस फीट लम्बा, आठ फीट चौड़ा होना चाहिए। इसमें चार खिड़कियाँ आमने-सामने हो। कम से कम दो दरवाजा हो।

२. रसोई घर का चूल्हा—चूल्हा तीन फीट ऊँचा रहे। पत्थर कोयले के चूल्हे के लिए तीन मुँह वाला चूल्हा हो ताकि एक बार तीन चीजें बनायी जा सके। चूल्हा भी सिमेन्ट से प्लास्टर किया हुआ हो। चूल्हा के ठीक सामने धुँआ निकलने के लिए चिमनी होनी चाहिए। छत में काफी बड़ा सुराख होनी चाहिए ताकि धूँआ छत से निकल पाये।

३. रसोई घर ऐसी जगह पर बनाना चाहिए जहाँ सूर्य की किरणें अच्छी तरह जा सके।

४. इसके समीप पाखाना या गोशाला नहीं होना चाहिए।

५. रसोई घर के दरवाजे और खिड़कियों में जाली लगी होनी चाहिए ताकि मक्खी मच्छर नहीं आ सके।

६. भोजन को सुरक्षित रख सकें इसलिए एक आलमारी होनी चाहिए। इसके किवाड़ जालीदार होनी चाहिए।

७. रसोई घर में बरतन रखने के लिए रैक होना चाहिए।

८. रसोई घर में पानी का नल लगा रहना चाहिए जिससे खाना पकाने और बरतन धोने में आसानी हो।

९. रसोई घर का फर्श और दिवार सिमेन्ट से बना हो।

१०. नाली पानी निकालने के लिए ऐसी हो जिससे पानी आसानी से बाहर निकल जाये।

११. रसोई घर में बहुत अधिक सामान नहीं रहना चाहिए। इससे गन्दगी फैलती है।

१२. रसोई घर में किसी व्यक्ति को सोना भी नहीं चाहिए क्योंकि इससे उसकी साँस से निकली हवा से भोजन के दूषित होने का डर है।

प्रश्न—२. खाद्य पदार्थों की सुरक्षा (Preservation) के कौन-कौन से साधन हैं ? (1960 A)

खाद्य पदार्थों को कई दिनों तक ठीक हालत में रखना चाहें तो निम्नलिखित उपाय काम में लाये जा सकते हैं :—

१ सुखाने से--फल-तरकारी, मछली और मांस को धूप और हवा में सुखाकर उनकी नमी को नष्ट किया जा सकता है। कई दिन धूप में रखने से ऊपर की लिखी चीजें सूख जाती है और बिगड़ नहीं पाती।

२ बर्फ में रखने से--बिजली की आलमारी जिसे रेफ्रीजीरेटर कहते हैं, इस आलमारी में खाद्य पदार्थ रखने से बिगड़ते नहीं। किसी भी चीज को बर्फ में रखने से बिगड़ नहीं पाती। मांस बर्फ में रखने से बिगड़ता नहीं। मांस को यदि रेफ्रीजीरेटर में रखा जाय तो कई दिनों तक बिगड़ता नहीं।

३. अंचार और चटनी –खाद्य पदार्थों में नमक, मसाला और तेल तथा खटाई मिलाकर अधिक दिनों तक बिगड़ने से बचाया जा

सकता है। आम के फांक को तेल में रखने पर वर्षों सुरक्षित रख सकते हैं।

४. धुएँ द्वारा–मांस के लोथड़े को दिवार में लटका कर, जहाँ पर रसोई बनाई जाती है, धुँआ लगने दिया जाय तो वह भी कई दिनों तक सुरक्षित रखा जा सकता है।

५. रासायनिक पदार्थों द्वारा—सल्फर डाय-ऑक्साइड और बेनजोइक अम्ल खाने को बिगड़ने से बचाते हैं। सल्फर डाय-ऑक्साइड मुरब्बे में डालने से मुरब्बे बिगड़ते नहीं। बेनजोइक अम्ल अंचार, चटनी आदि में मिलाने से बिगड़ते नहीं।

६. बहुत सी चीजें सिरके में डालने से बिगड़ने नहीं पाते जैसे-अचार, चटनी और प्याज के टुकड़े।

७. हवा का अलगाव—अंडे को पानी में रखने से सड़ने नहीं पाते। अन्न जैसे—बूंट, मसूर, गेहूँ इत्यादि को बोड़े में भरकर सीकर।

८. उबालने के द्वारा कीटाणुओं को मारकर पदार्थ की रक्षा की जा सकती है। माँस को हल्का सा उबालकर डिब्बे में बन्द कर दिया जाता है। डिब्बे के ढक्कन में भाप निकलने के लिए एक छेद रहता है। डिब्बे दो घन्टे तक ११०° सेंटीग्रेड की माप में रखे जाते हैं फिर निकालकर उनके छेद बन्द कर उन्हें फिर एक घण्टे गर्म किया जाता है। इस तरह डिब्बे में हवा नहीं रह जाती जिससे उसका सामान खराब नहीं होता।

प्रश्न—३. होली के अवसर पर आप पचास सामिष और निरामिष व्यक्तियों के लिए एक 'सहभोज' का प्रबन्ध करेंगे, तो आप की कौन सी खाद्य सूचि होगी ? (1960 A.)

उत्तर यदि होली के अवसर पर एक सहभोज का प्रबन्ध करें जिसमें पचास व्यक्ति हों तो उनके लिए निम्नलिखित खाद्य सूचि होगी – इसमें तीस आदमी सामिष होंगे और बीस आदमी निरामिष होंगे :—

१ आंटा—१५ किलो ।
२ डालडा—५ किलो ।
३ मैदा—पूआ के लिए -५ किलो ।
४ बेसन—बूंट, ऊरद ५ किलो । (२½ किलो प्रति)
५ तेल सरसो—२ किलो ।
६ आलू, कोवी, मटर—१५ किलो ।
७ चीनी—८ किलो ।
८ मसाला, प्याज इत्यादि—½ किलो, ५ किलो ।
९ टमाटर—५ किलो ।
१० दूध—५ किलो ।
११ चाय—१०० ग्राम ।
१२ दही—१० किलो ।
१३ पान—२०० खिल्ली ।
१४ सिगरेट—एक डब्बा टिन का ।
१५ मेवा—½ किलो ।

१६ मांस- १० किलो

१७ जलावन—१ मन पत्थर कोयला।

१८ पत्तल—२०० ।

१९ अबीर, अबरख, सेन्ट—५) रु० का।

२० फुटकर खर्च के लिए—२५) रु०।

प्रश्न—४. बिहार में खाद्य पदार्थों के किन-किन तत्वों के अभाव में प्राय: कौन-कौन से रोग उत्पन्न होते है, इनसे बचने के लिए आप किन स्थानीय साधनों का उपयोग करेंगे। (1960 A.)

उत्तर—चावल, आंटा, दाल, दूध घी और सब्जियों की कमी से मनुष्य को तरह-तरह की बिमारियाँ होती रहती है। जैसे—टी० बी०, रक्ताभाव, मलेरिया, पेचिश इत्यादि। बिहार में दो तीन वर्षों से सूखा के कारण फसल अच्छी तरह तैयार नहीं होती। उत्तरी बिहार में तो खासकर मुजफ्फरपुर और दरभंगा जिले में बहुत फसलें नष्ट हो जाती हैं बाढ़ से।

१. दूध, घी और उचित भोजन न मिलने के कारण एनेमिया और आँख की बिमारियाँ हो जाती है। इनकी कमी को पूरा करने के लिए ढेकी का कूटा चावल, मसूर, रहर, ऊरद की दाल, अंकुरित चना, पालक का साग इत्यादि खाने की चीजें उपयुक्त होगी।

२. विटामिन 'सी' की कमी से खून की बीमारी हो जाती है हड्डियाँ और दाँत कमजोर हो जाते हैं। इस बीमारी से बचने के लिए भात, रोटी, तरकारी के अलावे फलों का प्रयोग अधिक करवाना उचित होगा। जैसे-ताजा गाजर, अमरूद, हरी तरकारियाँ, अंकुरित बीज। जैसे -चना और मूंग।

प्रश्न—५. सब्जियों के पकाने में आप कैसी सावधानी बरतेंगे ताकि उनके सार भोज्य तत्व नष्ट न हो जायें। (1960A. 1965A.)

उत्तर—मनुष्य के आहार में सब्जियों का एक विशेष स्थान है। सब्जियों में शाक, भाजी, करमकल्ला आलू, फूलकोवी, अरवी, शालजम, प्याज, टमाटर. सेम इत्यादि आते हैं। प्रत्येक वस्तुओं के अपने अलग-अलग गुण हैं।

१. शाक-भाजी—इनमें चूना, फौसफोरस सोडियम, क्लोरिन आयोडिन, गन्धक आदि तत्वों का संमावेश होता है। ये रक्त को शुद्ध करने में सहायक होते है तथा क्षार और अम्ल का अनुपात ठीक रखते हैं। इनमें प्रोटीन उत्तम प्रकार का होता है। इनमें विटामिन ए, बी, सी होते हैं। यह रेचक और मलशोधक होते हैं। शाकों को पकाने में सावधानी—शाकों का पकाने के लिए केवल भाप ही उचित है। यदि पानी देने की जरूरत भी हुई तो उसे शाक में ही सुखा देना चाहिए। इससे निकले पानी फेंके नहीं जाएँ। जिस बर्त्तन में शाक पकाया जाये, उस बर्त्तन को ऊपर से ढ़क देना चाहिये। इससे शाकों के सार तत्व नष्ट नहीं होते।

आलू—आलू का बहुत कुछ प्रोटीन पानी में घुलनशील होता है। यदि काटकर आलू को पानी में डाल दिया जाए तो लगभग ८८% प्रोटीन और लवण पानी में घुल जाता है। पर बिना छिले खौलते पानी में डाला जाए तो केवल १% नष्ट होगा। इसलिए आलू उबालने में सावधानी वरतनी चाहिए। आलू में विटामिन 'बी' सी होते हैं।

३. टमाटर—यह सब्जी और फल भी है। इसमें समस्त अम्ल होते हैं। इसमें फौसफोरस, चूना, लोहा, गन्धक आदि लवण होते हैं। इसमें विटामिन ए०, बी०, सी० होते हैं। पके टमाटर फल की तरह खाये जा सकते है। इसके पकाते समय इतनी सावधानी होनी चाहिए कि इसके पानी बर्बाद न हों।

अतः अगर सब्जियों के पानी फेंके न जायें, ज्यादा गलायें न जायें, तो सार तत्व नष्ट नहीं होंगे।

प्रश्न—६. जन साधारण के लिए आप एक ऐसी वृहत् सूचि प्रस्तुत करें जिसमें स्थानीय सामिष तथा निरामिष दोनों प्रकार के भोजनों में पूरा 'प्रोटीन' मिले। विचार कीजिए। (1960 A.)

उत्तर—स्थानीय जन साधारण सामिष तथा निरामिष व्यक्तियों के लिए निम्नलिखित भोजन सूचि होगी :—

	वस्तु	प्रोटीन की मात्रा
१	चावल	६·६८
२	दाल अरहर	२७·६७
३	दाल मूंग	२३·६५
४	दाल मसूर	२५·४७
५	आटा गेहूँ	१२·२४
६	आलू	१·२०
७	कोबी	१·८०
८	बैगन	०·८६

	वस्तु	प्रोटीन की मात्रा
९	कद्दू	०.८०
१०	नमक—	यह स्वास्थ्य के लिए आवश्यक है।
११	शक्कर—	यह भी स्वास्थ्य के लिए आवश्य है।
१२	तेल, घी-	प्रोटीन नहीं रहने पर भी जरूरी है।
१३	दूध, गाय अथवा भैंस	४.८०
१४	मांस	१६.७२
१५	मछली	१५.००
१६	अंडे की जर्दी	१६.२०
१७	कुछ गरीदार मेवे फल।	
१८	शुद्ध और मीठा जल।	

प्रश्न—७· रक्षक (Protective) खाद्य पदार्थ क्या है? मानव पोषण में इनका क्या महत्व है? चर्चा करें।

(1961 A. 1964 A. 1965 A.)

उत्तर:—हमारे भोजन में अनेक प्रकार के पदार्थ सम्मिलित हैं जिनमें से प्रत्येक हमारे जीवन एवं स्वास्थ्य के लिए आवश्यक है। इन्हीं खाद्य पदार्थों को रक्षक खाद्य पदार्थ कहते हैं। मानव शरीर में निम्नलिखित खाद्य पदार्थों का अधिक महत्व है :—

१ प्रोटीन
२ लवण
} शरीर की रचना करते हैं।

३ वसायें
४ कार्बोहाइड्रेट
} शरीर में शक्ति और गर्मी पैदा करते हैं।

५ विटामिन	}	ये जीवन दायिनी है और स्वास्थ्य के लिए
६ जल		अति आवश्यक है।

१. प्रोटीन —यह हमारे शरीर के तंतुओं को बनाता है तथा दुर्बल होने की अवस्था में उनकी मरम्मत करता है। प्रोटीन समस्त प्राणियों के जीवन तथा वृद्धि के लिए आवश्यक है। यदि शरीर की आवश्यकता से अधिक ग्रहण किया जाय तो ये शरीर में कुछ वसा और ग्लाइकोजन बनाते हैं।

२. लवण—यह भोजन को केवल स्वादिष्ठ ही नहीं बनाता वरन् शारीरिक आवश्यकता की भी पूर्ति करता है। लवण शरीर का एक आवश्यक अंश है। अमाशय में पाये जाने वाले पाचक रस हाइड्रोक्लोरिक अम्ल का भी साधन यह लवण है। लवण हमलोगों को हरी शाक-सब्जी तथा हरे फलों से प्राप्त होता है।

३. वसा —यह घी, मक्खन, तेल आदि के रूप में मिलता है। वसा से परिश्रम करने की शक्ति उत्पन्न होती है। वसाओं से शरीर में उष्णता तथा शक्ति उत्पन्न होती है।

४. कार्बोहाइड्रेट —शक्कर और निशास्त्रा इसके सबसे बड़े उदाहरण हैं। शरीर के अन्दर कार्बोहाइड्रेट का लगभग वहीं काम है जैसा कि वसाओं का। वसा के साथ कार्बोहाइड्रेट का भी रहना आवश्यक है। निशास्ता समस्त अन्न जैसे गेहूँ, चावल और मक्का तथा आलू में भी पाया जाता है। खाड़, (गुड़) ऊँख, चुकन्दर, अंगूरों के रस कार्बोहाइड्रेट के उदाहरण हैं।

५. विटामिन—विटामिन को जीवनदायिनी कहते हैं। ये मुख्यतः पाँच प्रकार के होते हैं—विटामिन 'ए', 'बी', 'सी', डी' तथा 'ई'।

'ए' —यह वसा अथवा तैलीय पदार्थों में घुलनशील है। यह ताजा दूध, मक्खन, अंडे की जर्दी, मछली, सेब, टमाटर, नारंगी, मटर, क्रीम इत्यादि में पाया जाता है। यह विटामिन शरीर के लिए आवश्यक है। इसकी कमी से नेत्र रोग होते हैं। संतानोत्पत्ति के साथ भी इसका सम्बन्ध है। इसकी कमी से शरीर की शक्ति एवं माता के स्तनों में दूध की कमी हो जाती है।

'बी' —इनमें ५ या ६ प्रकार के विटामिनों को 'बी' का ही रूप माना गया है। इसकी कमी से बेरी-बेरी नामक रोग फैलता है। यह विटामिन जल में घुलनशील है। यह विटामिन हरे शाक, फल तथा वृक्ष के भिन्न-भिन्न भागों में जैसे—पत्ती, तने में पाया जाता है। नींबू, नारगी, टमाटर, सेब, मटर, गाजर, आलू, दूध, शहद, चावल की लाली में बहुत पाया जाता है।

'सी'—यह विटामिन स्कर्वी नामक रोग को रोकने वाला है। यह टमाटर, नींबू, नारंगी, हरे शाक, फल, गाजर, अंकुरित अनाज के अंकुर में पाया जाता है। यह विटामिन जल में घुलनशील है।

'डी'—यह दूध, मक्खन, घी, तेल, तथा मछली के तेल में पाया जाता है। यह विटामिन उन सब वस्तुओं में उपस्थित है जिनमें विटामिन 'ए' पाये जाते हैं। इसकी कमी से बच्चों को रिकेटस होने का डर है। इस रोग में हड्डियाँ नम और टेढी हो जाती है।

'ई'—यह विटामिन 'ए' और 'डी' की भांति तेलों में घुलनशील है। मटर, सेम, हरेशाक, पत्ताकोवी, दूध, मक्खन तथा पशु वसा में पाया जाता है। इसकी कमी से उत्पादन शक्ति नष्ट हो जाती है।

६. जल—जल हमारे समस्त तन्तुओं में पाया जाता है। जल का कार्य भोजन को पचने के बाद-घुला देना है तथा इस योग्य बना देना है कि वह शरीर में चूसा जा सके। यह रक्त को तरल रखता है। प्रत्येक मनुष्य को प्रतिदिन तीन सेर जल पीने की आवश्यकता है। इसके पीने के अतिरिक्त इसे हम कई प्रकार से, भोज्य पदार्थों द्वारा तथा स्नादि कार्यों के रूप में ग्रहण करते हैं। Protective खाद्य पदार्थ में विशेषकर दूध, हरी तरकारियाँ, मांस, अंडा और फल होना चाहिए।

प्रश्न—८. विटामिन 'ए' के अभाव से कौन-कौन रोग उत्पन्न होता है ? यह जीवति कौन-कौन पदार्थों में पाया जाता है ? विवरण करें। (1960 A.)

उत्तर—जीवति 'ए' के अभाव में नेत्र रोग शरीर की वृद्धि का रूकना, राज्यक्षमा, चर्म रोग, रिकेट्स आदि रोग हो जाते हैं। संतानोत्पत्ति के साथ भी इसका सम्बन्ध है। इसकी कमी से शक्ति कम हो जाती है तथा माताओं के स्तनों में दूध की कमी हो जाती है। इसके अतिरिक्त दस्त, अतिसार, बहरापन, गुर्दे में पथरी नसों में पानी आदि उतरने के रोग हो जाते हैं।

जीवति 'ए' निम्नलिखित चीजों में पाया जाता है : –

करमकल्ला, सोहजन की पत्ती, मेथी की पत्ती, पालक गाजर, पका आम, पका पपीता, संतरा, पका टमाटर, कौडलिवर वायल, (मछली का तेल), शार्क लिवर वायल, कलेजी, अंडा, मक्खन, मछली चर्बीदार दूध।

प्रश्न ६. खाना पकाने के कौन-कौन से तरीके हैं ? किस तरीके को आप सबसे अच्छा समझते हैं और क्यों ?

(1961 A., 1966 A., 1967 A.)

उत्तर :—भोजन पकाने का निम्न विधियाँ हैं :—

१. पानी में खौलाकर या उबालकर—इस तरह से पकाने के लिए एक धातु के बरतन में आवश्यकता के अनुसार पानी डालकर आग पर खौलायेंगे। चावल या दाल को चुनकर धोकर खौलते हुए जल में डालकर पकायेंगे जब वह गल कर तैयार हो जाए तब उसे आग से उतार लेंगे।

तरकारियाँ भी उबालकर ही पकायी जाती हैं।

२. भुनकर—आलू की भुँजिया या परवल की भुँजिया यदि बनाये तो आलू या परवल को महीन काट कर आग पर चढ़ाकर पकायेंगे। खौलते हुए तेल में आलू या परवल को डाल दिया जाता है। ऊपर से नमक मसाला भी डाल दिया जाता है और इतना भूँजा जाता है कि वह काफी तरह से गल जाये।

३. छानना या तलना—घी या तेल में पूरी, कचौड़ी, पुआ, फुलकी, निमकी और सिंघाड़ा इत्यादि को छानकर बनाया जाता है। इसके लिए काफी घी या तेल चाहिए। इस प्रकार के बने हुए भोजन देर में पचते हैं।

४. सेंकना—आटे की रोटी या बिस्कुट आग पर सेक कर पकाया जाता है। यह रीति तलने या भूँजने से श्रेष्ठकर है।

५. भुलसकर पकाना—मछली, आलू, शक्करकन्द इत्यादि को कभी-कभी दहकते हुए कोयले में डाल दिया जाता है और पकाया जाता है।

६. भाप से पकाना–इस तरह के भोजन बनाने के लिए कुकर (cooker) की आवश्यकता होती है। कुकर में भोजन भाप से पकता है। स्वास्थ्य के लिए इस तरह का भोजन अति उत्तम है।

मैं समझती हूँ कि सबसे उत्तम तरीका भोजन बनाने का कुकर में ही है। इस तरह के भोजन से स्वास्थ्य को लाभ होता है।

प्रश्न—१०. लोहा का मानव पोषण में क्या महत्व है ? इस खनिज के मुख्य तथा सस्ते स्रोतों को लिखें।

(1961 A., 1965 A.)

उत्तर—यह तीसरा लवण है जो शरीर के लिए अति आवश्यक है। रक्त में लाल रंग उसमें लाल कण की उपस्थिति के कारण होता है। रक्त के इन कणों का काम है—(१) साँस द्वारा अन्दर गई हुई वायु से ऑक्सीजन खींचकर शरीर को कोषाणुओं में पहुंचाना और उनके विकारों के जलने में सहायक बनकर उनके स्वास्थ्य की वृद्धि में सहायता देना एवं (२) आंतों से पचकर रक्त में गये हुए खाद्य-पदार्थों के ऑक्सीकरण में सहायता देना। रक्त के ये लाल कण लोहे से बनते हैं। शरीर में रक्त की कमी से साधारणतः आहार में लोहे की कमी समझना चाहिए।

लोहे स्त्रोतों के मुख्य पदार्थः—

अन्न	मिली ग्रा० प्रति औंस
बाजरा	२·५
ज्वार	१·८
जो	१·१
गेहूँ	२·०
चावल	०·८
चने की दाल	२·५
ऊरद की दाल	२·८
मूंग की दाल	२·४
अरहर की दाल	२·५
मटर	१·३
मेवे तथा तेलहन	
बादाम	१·०
काजू	१·४
तिल	३ ०
मूंगफली	५
खजूर	३·०
शाक आदि	
धनिया	२·८
मेथी	४·८
पुदीना	४·४

अन्न	मिली ग्रा० प्रति औंस
पालक	१·४
बथुआ	१·२
पान	१·६
गुड़	३·२
पापड़	४·६
खमीर	६·१

दूध में लोहे की मात्रा बहुत कम होती है। परन्तु ज्यादा दूध में यह कभी पूरी हो जाती है।

प्रश्न—११. बहुतायत भारतीय असंतुलित भोजन पर निर्भर करते हैं। आप उस भोजन को बिना विशेष मूल्य बढ़ाये संतुलित के समान कैसे बना सकते हैं? (1961 A.)

उत्तर—भारत में गरीबी के कारण अधिकांश लोग असंतुलित भोजन पर निर्भर करते हैं तथा दूध, घी, मांस अण्डा आदि रक्षक पदार्थों का सेवन नहीं कर सकते जिसके कारण न्यून पोषण की समस्या देश के सामने आ जाती है। इसके निवारणार्थ सरकारी सेन्ट्रल फूड टेक्नौलोजिकल रिसर्च इन्सटीच्युट, मैसूर ने एक सस्ता संतुलित भोजन बनाया है जिसको किसी भी प्रकार के साथ मिला लेने से वह भोजन संतुलित बनाया जा सकता है। इसको इण्डियन मल्टीपर्पस फूड कहते हैं। यह मूंगफली और चने के आटे के समिश्रण से बनता है। तथा इसमें समस्त विटामिन यथोचित मात्रा में सम्मिलित कर दिये जाते हैं। यह तीन प्रकार का होता है। एक

नमकीन जो नमकीन भोजन में मिलाया जा सके, दूसरा फीका जो मीठे भोजन में मिलाया जा सके और तीसरा २०% मखनिया दूध का पाउडर मिला हुआ जो बच्चों के लिए उपयोगी है ।

न्यून पोषण का उपचार दो प्रकार से होना चाहिए :—

१ सहायक कारणों का निदान और उनका उपचार।

२ आहार में यथोचित सुधार। इसके लिए प्रथम दैनिक जीवन की चर्या से पता लगाना चाहिए कि रहन-सहन की किस त्रुटि अथवा शरीर के किस रोग के कारण यह अवस्था पैदा हुई है। यदि आवश्यकता हो तो इसके लिए चिकित्सक की सहायता ली जानी चाहिए ।

या

उत्तर:--संतुलित भोजन में छः चीजें आती हैं—प्रोटीन, वसा, कार्बोहाइड्रेड, लवण विटामिन और जल। इन्हीं पदार्थों के व्यवहार से स्वास्थ्य अच्छा रहता है। चूकि भारत एक गरीब देश है अतः यहाँ की जनता को ये छः चीजें कम मूल्य तर मिल सकें ।

भारत की गरीब जनता के लिए निम्नलिखित भोजन जिसमें खर्च भी कम हो और तन्दुरुस्ती भी ठीक रहे : –

१ प्रोटीन—चावल, दाल ऊरद, मसूर। आंटा, चना, जौ, बाजरा, मक्का, मकई। तरकारी- कद्दू, घिउरा, साग और टमाटर।

२ कार्बोहाइड्रेट—इसके लिए गुड़।

३ वसा—तेल, घी और डालडा।

४. लवण—हरी पत्ती वाले शाक, जैसे:—
चने की साग, बथुआ, पालक, प्याज और साधारण नमक।

५. विटामिन 'ए' के लिए—टमाटर, शक्कर कन्द अंकुरदार चना, क्रीम निकाला दूध।

'बी' के लिए—चोकर सहित आटा पपीता शक्कर कन्द. लाल चावल।

'सी' के लिए—आवला शलजम. टमाटर, प्याज मूली गाजर, केला. इमली. अमरूद।

'डी के लिए—पालक का साग मछली का तेल इत्यादि।

'ई' के लिए—अंकुरित मटर, चना, सेम, हराशाक।

जल तो बिना मूल्य के ही प्राप्य।

प्रश्न—१२. संक्षेप में टिप्पणियाँ लिखें :—

(क) सोयावीन—(Soyabean)
(ख) वनस्पति—(Vanaspati)
(ग) भूनना—(Frying)
(घ) रीकेट्स—(Reckets) [1961 A]

उत्तर—(क) सोयावीन—मटर और सेम की जाति का होता है। यह एक उपयोगी अन्न है। इसमें चिकनाई और विटामिन 'बी' बहुत है। इसका प्रोटीन उत्तम प्रकार का होता है। इसको हम दाल की श्रेणी में रख सकते हैं। जापान में इसका बड़ा प्रचार है। सोयावीन में प्रोटीन वसा और कार्वोज है।

(ख) वनस्पति-वानस्पतिक भोजन पदार्थों को हम पाँच श्रेणियों में बाँट सकते हैं।

१ शूक वर्ग (Cereal)—गेहुँ, जौ, मकई, बाजरा, ज्वार, चावल आदि।

२ दाल वर्ग—मसूर, मूंग, ऊरद, मटर इत्यादि।

३ शाक वर्ग—गोभी, टमाटर, लोकी, पालक इत्यादि।

४ कन्द वर्ग—आलू, गाजर, चुकन्दर, शलजम, मूली इत्यादि।

५ पाचवाँ वर्ग फलों का है। जिसमें सूखे और हरे फल हैं। नारंगी, अनार, अंगूर, आम, बादाम, पिस्ता, मुनक्का इत्यादि।

(ग) भूँजना Frying-भोजन को घी या तेल में पकाने की क्रिया को भूँजना कहते है। खाद्य पदार्थ के कण वसा से मिल जाने के कारण गरिष्ट हो जाता है। मछली को भी इसी विधि से पकाया जाता है। बहुत सी तरकारियाँ, पूरी, कचौड़ी आदि इसी विधि से पकायी जाती है। इस प्रकार के भोजन से पाचन शक्ति कमजोर हो जाती है।

(घ) रिकेट्स-Reckets की बीमारी अधिकतर बच्चों में पायी जाती है। इसमें हड्डियाँ टेढ़ी और मुलायम हो जाती है। यह जीवति 'डी' की कमी से होता है। इससे बचने के लिए विटामिन 'डी' युक्त पदार्थों का सेवन करना चाहिये। जैसे—दूध, मक्खन, घी, मछली का तेल, अंडा इत्यादि।

प्रश्न—१३. संतुलित भोजन से आप क्या समझते हैं? एक साधारण काम करने वाले साधारण भारतीय का क्या संतुलित भोजन होगा? (1961 S)

उत्तर—संतुलित भोजन के तीन मौलिक अवयव होते है—[१] प्रोटीन, [२] कार्बोहाइड्रेट, [३] वसा। भिन्न-भिन्न पदार्थों में इनकी मात्रा भिन्न-भिन्न होती है। किसी में प्रोटीन अधिक होता है तो किसी में कार्बोहाइड्रेट, तो किसी में वसा।

इसके आलवा तीन और वस्तुयें हैं जो भोज्य पदार्थों में पायी जाती है—(१) जल, (२) लवण, (३) विटामिन।

साधारण काम करने वाले साधारण भारतीय का संतुलित भोजन प्रति दिन :—

सामग्री	छटांक
गेहूँ का आटा	८
दाल	२
चना चावल का भूजा	८
चावल	८
चीनी (गुड़)	१$\frac{1}{2}$
घी या तेल	१
हरी सब्जियाँ	४
दूसरे प्रकार की तरकारियाँ	२
दूध	४
नमक	१

सामग्री	वजन
मांस या मछली	२ छटांक
जल	३ सेर।

प्रश्न—१४. प्रोभूजिनें (Proteins) क्या है ? इसके मुख्य स्त्रोत क्या हैं ? (1961 S)

उत्तर—Proteins प्रोभूजिनें -इनमें कार्बन, ऑक्सीजन, हाइड्रोजन के साथ नाइट्रोजन, गन्धक और फॉसफोरस भी है।

इनका विशेष काम शरीर के टूटे-फूटे भागों को फिर से बनाना है। शरीर की क्षति को पूर्ण करना प्रोटीन का ही काम है। यह नये-नये सेलों को उत्पन्न भी करती है। प्रोटीन निम्नलिखित चीजों में पायी जाती है —

बाजरा, ज्वार, जौं, गेहूँ, चावल घर का कूटा, मकई, सब तरह के दूध, दही, मक्खन, चना की दाल, अरहर की दाल, मूंग की दाल, मसूर की दाल, मांस, अण्डा, बादाम, अखरोट, मूंगफली, गरी इत्यादि।

प्रश्न—१५. जीवतियाँ (Vitamins) क्या है ? जीवति 'सी' (Vitamin C) के अभाव वाले खाद्य-पदार्थों के खाने से कौन-कौन बिमारियाँ होती है। इस जीवति के (Vitamin) क्या मुख्य स्त्रोत (Source) हैं ? लिखें। (1961 S)

उत्तर—शरीर को स्वास्थ्य तथा अच्छी हालत में रखने के लिए विटामिन की जरूरत होती है। इन्हें जीवनीय तत्व कहते हैं। ये

पदार्थ प्रायः सभी प्राकृतिक फल, साग, भाजी तथा दूध इत्यादि में पाये जाते हैं।

(Vitamin C) विटामिन 'सी' की कमी से स्कर्वी खून की बिमारियाँ, पित्त एवं त्वचा की खराबी, शरीर के जोड़ों तथा मसूड़ों में रोग हो जाता है। यह पानी में घुलनशील है। यह ताजे फल— नारंगी, आँवला, नींबू, टमाटर, हरी सब्जियों एवं अंकुरित अन्न के दाने में पाया जाता है। इसके अलावे करमतल्ला, पालक, करैला, बैगन, भिण्डी, कद्दू, प्याज, आलू, शक्करकन्द, मूली इत्यादि में भी पाये जाते हैं।

प्रश्न–१६. सिरियल (Cereal) के पकाने से उसके पोषक मूल्य पर क्या प्रभाव पड़ता है? वर्णन करें। (1961 S)

उत्तर—गेहूँ, जौ, मकई, ज्वार, बाजरा, चावल आदि को सिरियल (Cereal) कहते हैं। इसे शूक वर्ग हिन्दी में कहते हैं। इन सबों में कार्बोहाइड्रेट की अधिकता है।

पकाने से भोजन सुपाच्य और स्वादिष्ट हो जाता है। गर्मी के प्रभाव से भोजन सामग्री में मिले हुए रोगों के कीटाणुओं का नाश भी हो जाता है। पकाने से भोजन गल कर छोटे-छोटे टुकड़ों के रूप में बदल जाता है जो कि नर्म हो जाने के कारण आसानी से पचाया जा सकता है और भोजन पर पाचक रसों की क्रिया भी उत्तम विधि से होती है। चावल को पकाने से उसके ऊपर का आवरण गल कर फट जाता है। जिससे भीतर से स्टार्च के कण बाहर निकल आते हैं

और आसानी से चबाकर खाया जा सकता है। ऐसी हालत में पाचक रसों की क्रिया उत्तम रीति से होती है।

रोटी पकाने के लिए गेहूँ, जौ, मकई इत्यादि को पिसवाना चाहिए। गेहूँ के आँटे से चोकर नहीं निकालना चाहिए। आँटा एक सिरियल है। इसे बिना पकाये हुए नहीं खाया जा सकता, आंटे को पकाने से मुलायमियत आ जाती है और आसानी से पचाया जा सकता है जो स्वास्थ्य के लिए आवश्यक है।

प्रश्न—१७. कैलशियम का कार्य मानव पोषण में क्या है? यह खनिज कौन-कौन से खाद्य पदार्थों में प्रचुर मात्रा में पाया जाता है? (1961 S.)

उत्तर—कैलशियम को हिन्दी में चूना या खाटिक कहते हैं। मुख्यतः चूने से ही दाँत और हड्डियाँ पुष्ट होती हैं। इसी के कारण हृदय की क्रिया ठीक रूप से होती है, रक्त में जमने की शक्ति रहती है। शरीर में संक्रामक रोगों जैसे मलेरिया आदि के विरोध की शक्ति रहती है। शरीर के टूटे-फूटे सेलों की मरम्मत हो सकती है। पाचन स्वस्थ्य रहता है और मिहनत करने पर शीघ्र थकान नहीं होती। बच्चों में कब्ज, रिकेटस तथा दाँत निकलने में देरी या कष्ट आहार में चूने की कमी का कारण है। बार-बार जुकाम और खाँसी या राजयक्ष्मा चूने की कमी से होती है।

प्रचुर मात्रा में चूना निम्नलिखित चीजों में पाये जाते हैं—

असली दूध, दूध से बने अन्य पदार्थ, द्वीदल अनाज जैसे चना,

मूंग, ऊरद आदि। हरे फल, शाक, गरीदार मैज अंडे की जरदी इत्यादि।

प्रश्न—१८. संक्षेप में टिप्पणियाँ लिखें—

(क) दाल (Pulses)

(ख) मूंगफली (Ground Nuts)

(ग) आम (Mango)

(घ) बेरी-बेरी (Beri-Beri) 1961 S.

उत्तर—(क) दालें (Pulses)—वानस्पतिक पदार्थों में अन्य सब पदार्थों की अपेक्षा दालों में अधिक प्रोटीन होती है। इसलिए उसको निर्धन मनुष्यों के लिए 'माँस' कहा जाता है। कुछ दालों में प्रोटीन और कार्बोहाइड्रेट का अनुपात १:२ या १:४ का होता है। ऊरद, मूंग, मसूर, मटर, अरहर, चना आदि का अधिक प्रयोग किया जाता है। दालों में वसा की कमी के कारण घी इत्यादि के साथ खाना चाहिए। चावल और घी युक्त दाल में भोजन के सब विशिष्ट अवयव उपस्थित होते हैं। दालों में लवण का भी काफी भाग रहता है। मटर और सेम में गन्धक, मसूर, मोठ और अरहर की दालों में लौह पाया जाता है। दालों को पकाने के लिए पहले साफ कर लेना चाहिये। गठिया रोग से पीड़ित मनुष्यों के लिए दालों का प्रयोग हानिकारक है। यह देर से पचती है तथा इससे यूरिक एसिड उत्पन्न होता है जो कि गठिया का मुख्य कारण होता है।

(ख) Ground Nuts—मूंगफली—यह बहुत ही पुष्ट पदार्थ है। यह जमीन के नीचे फलती है। इसमें प्रोटीन होता है। वसा भी

इसमें प्रचुर होता है। मूंगफली सस्ती होने के कारण गरीब-अमीर सभी खाते हैं। मूंगफली से तेल भी तैयार किया जाता है। यह रेचक होती है। अधिक खाने से आंतों को नुकसान पहुँचती है।

(ग) आम (Mango)–आम कई प्रकार के होते हैं। बीजू और कलमी। कलमी में मालदह, बम्बई, सिपिया आदि अनेक प्रकार के होते हैं। कच्चे आम से चटनी अँचार बनाया जाता है। पके हुए आम से अमावट बनाया जाता है। पका आम स्वास्थ्य के लिए लाभदायक होता है। आम और दूध मिलाकर खाने से शरीर को बहुत लाभ पहुँचता है। अतः हमलोगों को चाहिए कि आम खाकर दूध भी पी लें। आम में विटामिन 'ए' और 'सी' बहुत होता है।

(घ) बेरी-वेरी (Be:i-Beri)–विटामिन 'बी' की कमी से यह बीमारी लोगों को होती है। इसलिए पौलिश किया हुआ चावल तथा भूसी रहित अन्न सेवन नहीं करना चाहिए। खराब तेल सरसो का खाने से भी वेरी-वेरी की बीमारी होती है।

प्रश्न—१६. स्वस्थ्य जीवन के लिए संतुलित भोजन का क्या महत्व है। (1962 A)

उत्तर –संतुलित भोजन में छः चीजों का रहना आवश्यक है।

(१) प्रोटीन, (२) कार्बोहाइड्रेट, (३) वसा, (४) खनिज लवण, (५) जल, (६) विटामिन।

मनुष्य का भोजन संतुलित होना चाहिए। भोजन से शरीर में शक्ति का संतुलन बराबर रहता है। भोजन करना मनुष्य के लिए

अति आवश्यक है। भोजन हमारे शरीर के बढ़ते हुए भागों में नवीन तन्तुओं का निर्माण करते हैं। ये टूटे फूटे सेलों की मरम्मत और शरीर के विभिन्न भागों को मजबूत रखते हैं। शारीरिक काम करने वाले और मानसिक काम करने वाले बच्चे तथा वृद्धों को अलग-अलग प्रकार का भोजन करना चाहिए।

मनुष्य को किसी भी कार्य को करने के लिए शक्ति की जरूरत होती है। यह शक्ति भोजन ही से आती है। मनुष्य के शरीर में कार्य को ठीक रूप से चलाने के लिए नियमित ताप चाहिए। शरीर में गर्मी पैदा करना भोजन का काम है।

भोजन संतुलित होना चाहिए असंतुलित भोजन से स्वास्थ्य खराब हो जाता है। अच्छे प्रकार के भोजन से मनुष्य स्वस्थ्य एवं दीर्घ जीवी होता है।

प्रश्न—२०. खाद्य क्या है? आप इसका वर्गीकरण कैसे करेंगे? उदाहरण दें। (1962 A)

उत्तर—भोज्य पदार्थ को ही खाद्य कहा जाता है। इसके अन्तर्गत निम्नलिखित चीजें हैं—

१ शुकवर्ग —इसमें चावल, जौ, बाजरा, मकई, गेहूँ इत्यादि है। दाल या शिम्बी वर्ग—जैसे अरहर, मूंग, मसूर उरद, चना इत्यादि।

२ शाक वर्ग— इनमें हरी पत्तियों वाली तरकारियाँ आती हैं। जैसे कदुआ, गोभी, पालक, परवल, टमाटर, बथुआ साग इत्यादि।

३ मांस वर्ग—इसमें सब तरह के मांस आते है। जानवरों के मांस और पक्षियों के माँस।

४ मसाला-धनिया, हल्दी, मिर्च, लहसुन तथा प्याज इत्यादि।

५ कंद वर्ग—आलू, गाजर, चुकन्दर, शलजम मूली इत्यादि।

६ दूध वर्ग—गाय, बकरी, भैंस इत्यादि के।

७ फल वर्ग-इसमें हरे फल होते हैं। जैसे केला, नारंगी, पपीता अमरूद, आम, नाशपाती, सेव, अंगूर इत्यादि।

प्रश्न—२१. भास्वर (Phosphorus) का मानव पोषण में क्या महत्त्व है? इस खनिज के मुख्य खाद्य स्रोतों को लिखें।

(1962 A.)

उत्तर—फास्फोरस-यह हड्डियाँ बनाने और उनको पुष्ट करने में चूना का अनिवार्य साथी है। यदि फास्फोरस और कैलशियम की मात्रा में अनुपात न रहे अर्थात् जितने फास्फोरस के लिए जितना कैलशियम उससे कम ज्यादा हो जाये तो हड्डियों का बढ़ना बन्द हो जाता है। फास्फोरस न हो तो शरीर का बढ़ना बन्द हो जाता है।

फॉस्फोरस की प्रतिदिन की आवश्यकता—

छोटे बच्चे के लिए	१.५ ग्राम
प्रौढ़ स्त्री या पुरुष के लिए	१.५ ,,
गर्भिणी तथा माता ,,	२.० ,,

एक सेर दूध में लगभग .६ माशा फॉस्फोरस होता है और पूर्णतया पच जाता है।

फॉस्फोरस की उपलब्धि के मुख्य पदार्थ—

दूध प्रति औंस	मि० ग्राम
दूध गाय	२५
दूधभैंस	३७
दूध बकरी	३४
दूध का पाउडर [सम्पूर्ण दूध]	२०८
दूध का पाउडर मखनिया दूध	२८०
खोवा भैंस	१२०

अन्न प्रति औंस	मि० ग्राम
बाजरा	६६
ज्वार	७६
जौ	६५
कंगनी	८२
मक्का	६६
चावल अरवा	४८
चावल उसना	८०
गेहूँ	६१
चना	८८
बादाम	१४०
मूंगफली	११०
मांस	४३
मछली	११६
अण्डा	६२

प्रश्न—२२. दाल को उबालने से उसके पोषक मूल्य पर क्या प्रभाव पड़ता है ? वर्णन करें। (1962 A)

उत्तर—दाल को उबालने से कई लाभ हैं :—

१ दाल के प्रोटीन या जितने भी गुणकारी तत्व उसमें होते है। उबालने से सरल हो जाते हैं। उस पर पाचक रस का प्रभाव शीघ्र पड़ता है।

२ दाल को पकाने से उसके प्रोटीन, कार्बोज, वसा को कम पाचक रस की जरूरत होती है। आंतों को कम परिश्रम करना पड़ता है।

३ दाल में कुछ कीटाणु रहते हैं। उबालने से वे नष्ट हो जाते हैं और स्वास्थ्य को लाभ पहुँचाते हैं खाने के बाद।

४ दाल में स्वाद आ जाता है।

५ दाल को वहुत तेज आंच पर नहीं उबालना चाहिए। इससे दाल के कुछ गुणकारी तत्व नष्ट हो जाते हैं।

प्रश्न—२३ जल में घुलनशील जीवतियाँ (Vitamins) कौन-कौन से हैं और इसके मुख्य खाद्य स्त्रोतों का उल्लेख करें। (1962 A)

उत्तर—विटामिन 'बी' और 'सी' जल में घुलनशील विटामिन हैं। विटामिन 'बी' पौधों के बीजों में, अण्डों की जर्दी में, विभिन्न फलों में और सब्जियों में गेहूँ, चावल (लाल), में पाये जाते हैं। विटामिन बी' भूख को बढ़ाने में सहायता करता है। इसकी कमी से वेरी-वेरी रोग होता है।

विटामिन 'सी'—यह विटामिन जल में घुलनशील है। यह बहुधा रसीले फल जैसे—नींबू, सन्तरा इत्यादि में, भाजियों में, विशेषकर टमाटर में पाया जाता है। यह दांतों को मजबूत करता है। स्कर्वी के रोग से रक्षा करता है। यह घावो के भरने में और खून बनने में मदद करता है।

प्रश्न – २४. संक्षेप में टिप्पणियाँ लिखें —

[क] रतौन्धी
[ख] दृढ़फल (Nuts)
[ग] भर्जन (Baking)
[घ] अण्डा (1962 A)

उत्तर–(क) रतौन्धी-यह बीमारी विटामिन 'ए' की कमी से होती है। इस विटामिन का विशेष प्रभाव आँख, फेफड़ा, चर्म तथा शरीर के भीतर की कोमल झिल्लियों पर पड़ता है। यह विटामिन 'ए' हमारे खाद्य पदार्थों के अंश को जो शरीर के इन भागों को बनाता है, मरम्मत करता है और रोग रहित रखता है। शरीर को उपयोगी बनाने में सहायता देता है।

(ख) दृढ़ फल—नारियल, अखरोट, सुपारी इत्यादि हैं। नारियल का गुदा, अखरोट का गुदा, शरीर को बहुत लाभ पहुँचाता हैं। अखरोट में किसमिस मिलाकर जाड़े में व्यवहार किया जाता है। (Nuts) सुपारी या कसैली का व्यवहार अधिकतर पान के साथ किया जाता है। अखरोट और गरी में विटामिन 'ए' और 'सी' पाया जाता है।

(ग) Baking भर्जन—रोटी का तवा पर पकाना, आंटा को खमीर बनाकर तन्दूरी रोटी बनाना तथा बिस्कुट भी सेक कर बनाये जाते हैं। यह भोजन तैयार करने की सरल रीति है।

(घ अण्डा—अण्डा दूध से कुछ समानता रखता है। किन्तु अण्डे में दूध से कैलशियम कम पाया जाता है। अंडे में लोहा अधिक होता है। इसमें कार्बोहाइड्रेट नहीं होता है। अण्डे के पीले भाग में और सफेद भाग में प्रोटीन होता है, पीले भाग में विटामिन 'ए', 'डी' अधिक होता है। अंडा में शरीर को बनाने के लिए सब चीजें मौजूद हैं।

प्रश्न—२५. जीवन के लिए उचित भोजन का क्या महत्व है ?

(1963 A)

उत्तर—उचित भोजन हमारे जीवन के लिए नितान्त आवश्यक है। हमारे शरीर के हर अंग हर वक्त काम करते रहते हैं। जब हम सोते हैं, तब भी कुछ यन्त्र काम में लगे रहते हैं। इस कारण अंगों के कोष सदा टूटते-फूटते रहते हैं। भोजन ही, इन कोषों को बनाता है और मरम्मत करता है। काम करने के लिए शक्ति की आवश्यकता है। उचित भोजन से ही हमें शक्ति प्राप्त हो सकती है।

भोजन संतुलित होना चाहिए। संतुलित भोजन को ही उचित भोजन कहते हैं। इसमें प्रोटीन, कार्बोहाइड्रेट, लवण, वसा और विटामिन का होना नितान्त आवश्यक है। भोजन हमेशा ताजा और गर्म करना चाहिए। भोजन की सामग्री ऐसी हो जिसमें मिलावट न

हो। भोजन में मिलावट रहने से शरीर कमजोर हो जाता है। अतः स्वस्थ्य जीवन के लिए उचित और शुद्ध भोजन की आवश्यकता है।

प्रश्न—२६. लोहा (Iron) का मनुष्य के पोषण में क्या महत्व है ? वर्णन करें तथा इसके मुख्य खाद्य स्रोतों को बतायें।

(1963 A.)

उत्तर—यह तीसरा लवण है जो शरीर के लिए अत्यन्त आवश्यक है। रक्त का लाल रग उसमें लाल कण की उपस्थिति के कारण होता है। रक्त के इन कणों का काम है (१) सांस द्वारा अन्दर गई हुई वायु से ऑक्सीजन खींचकर शरीर के कोषाणुओं में पहुँचाना और उनके विकारों के जलने में सहायक बनकर उनके स्वास्थ्य की वृद्धि में सहायता देना एवं (२) आंतों से पच कर रक्त में गये हुए खाद्य-पदार्थों के औक्सीकरण में सहायता देना। रक्त के ये लाल कण लोहे से बनते हैं। शरीर में रक्त की कमी से साधारणतः आहार में लोहे की कमी समझना चाहिए।

लोहे की उपलब्धि के मुख्य पदार्थ

अन्न वर्ग	मि० ग्रा० प्रति औंस
बाजरा	२·५
ज्वार	१·८
जौ	१·१
गेहूँ सम्पूर्ण	२·०
चावल	०·८
चावल (उसना घर का कुटा)	०·८

अन्न वर्ग	मि० ग्राम प्रति औंस
चावल (मशीन कुटा)	०·६
दाल वर्ग—चने की दाल, उरद की दाल	२·८
मूंग की दाल	२·४
अरहर की दाल	२·५
मटर की दाल	१·३

मेवे तथा तेलहन —

वर्ग	मि. ग्रा. प्रति औंस	वर्ग	मि. ग्रा. प्रति औंस
बादाम	१·०	काजू	१·४
तिल	३·०	मूंगफली	·५
खजूर	३ ०	धनिया	२·८
मेथी	४·८	पुदीना	४·४
पालक	१·४	बथुआ	१·२
पान	१·६	गुड़	३·२
पापड़	४·८	खमीर	६ १

दूध में लोहे की मात्रा बहुत कम होती है परन्तु ज्यादा दूध से यह कमी पूरी हो जाती है। सफेद चावल, मैदा, चीनी, घी, तेल इनमें लोहे की मात्रा बिल्कुल ही कम होती है।

लोहे की दैनिक आवश्यकता ६-३० मि० ग्राम तक होती है जो आयु और शारीरिक स्वास्थ्य पर निर्भर है। स्त्रियों को अधिक लोहा चाहिए। गर्भिणी तथा माता को बहुत अधिक लोहा चाहिए। वनस्पति पदार्थों का लोहा पशु पदार्थों के लोहे की अपेक्षा कम पचता है।

प्रश्न—२७. जीवतियाँ (Vitamins) क्या हैं ? जीवित 'ए' (Vitamin A) की कमी से कौन कौन बीमारियाँ होती हैं ? वर्णन करें। (1963 A.)

उत्तर—जीवतियाँ (Vitamins)—ये भी एक तरह के रासायनिक पदार्थ हैं जो भोजन तथा भोज्य पदार्थों में कम या अधिक मात्रा में उपस्थित रहते हैं। इनकी उपस्थिति शरीर में भोजन के पाचन, शरीर की वृद्धि (विकास) के लिए तथा शरीर को स्वस्थ्य रखने एवं उसे रोगों से बचाने के लिए अत्यन्त आवश्यक है। विशेषतः ये छोटे तथा बढ़ते हुए बच्चों के लिए अमूल्य पदार्थ हैं। शरीर में इनका होना आवश्यक होता है तथा जीवन के लिए अत्यन्त उपयोगी सिद्ध होने के कारण ही इनको जीवनीय तत्व भी कहा जाता है। ये शरीर में काम के लिए एक दूसरे पर निर्भर होते हैं। इनसे शरीर का उचित विकास और सुधार होता रहता है। भोजन में यदि विटामिन्स की कमी या अभाव रहे तो हमारा स्वास्थ्य बिगड़ जाता है तथा कई अभावजन्य रोग उत्पन्न हो जाता है। कभी-कभी तो इसकी कमी के कारण मनुष्य की मृत्यु तक हो जाती है। विटामिन्स ताजा फल, दूध, कच्चे अण्डे, ताजा तथा हरी तरकारियों आदि में पाए जाते हैं; किन्तु वस्तुओं के सड़ने गलने तथा गरम करने, तलने तथा उबालने से ये जीवनीय तत्व नष्ट हो जाते हैं।

विटामिन—'ए' (Vitamin 'A')—यह विटामिन तेल में घुलनशील है तथा मक्खन, दूध, घी, वसा, अण्डे, हरी पत्तीदार

तरकारियों, अंकुरित हुए दानों तथा मछलियों के यकृत में पाया जाता है। यह शरीर की वृद्धि करता है तथा रोगों को होने से बचाता है। इसकी कमी से शरीर ठीक से विकसित नहीं हो पाता, जीवन-शक्ति का ह्रास होता है और गले व फेफड़े में औपसर्गिक रोग तथा आंख की बीमारियाँ हो जाती हैं। यक्ष्मा, खांसी तथा सूखी खुजली (एक प्रकार का चर्म रोग) भी उत्पन्न होते देखे गए हैं। यह विटामिन गाजर में सबसे अधिक मात्रा में मिलता है तथा इस प्रकार सस्ता भी है।

प्रश्न—२८. भोजन पकाने के कितने तरीके हैं? तरकारी पकाने के लिए आप किसे सबसे उत्तम तरीका समझते हैं और क्यों?

(1963 A.)

उत्तर—भोजन पकाने की कुछ विधियाँ—

१ उबालना—उबालने के समय पानी का ताप १६० फा० होना चाहिए।

२ तलना

३ भूनना

४ सेंकना

५ भाप से पकाना

६ झुलसना।

तरकारी का स्थान मनुष्य के आहार में विशेष है। तरकारियों में शाक, भाजी, करमकल्ला, फूलगोभी, आलू, अरुई, शलजम, प्याज, टमाटर, सेम इत्यादि है। साग भाजी में फास्फोरस,

सोडियम, क्लोरिन, आयोडिन बहुत है। तरकारी को जब आग पर पकाया जाय तो उसका पानी सुखा देना चाहिए। क्योंकि उसका पानी फेंकने से गुणकारी पदार्थ नष्ट हो जाते हैं। इसके पानी को बिल्कुल सुखा देना चाहिए। और सब तरकारियाँ जैसे – आलू, परवल, रामतोरई, अरवी इत्यादि को पकाते समय बहुत अधिक तेल या घी में नहीं भूनना चाहिए क्योंकि इसके गुणकारी पदार्थ जल जाते हैं। तरकारी तो उबालकर ही खाना ठीक है किन्तु स्वाद लाने के लिए उसे खूब भूनते हैं और मसाला वगैरह देते हैं। अधिक मसाला तेल घी में पाचन शक्ति बिगड़ जाती है। सबसे उत्तम तरीका आलू को उबाल कर चोखा बनाकर खाना स्वास्थ्यप्रद है। बहुत सी तरकारियाँ कच्ची भी खाई जाती है। जैसे—मूली, टमाटर, इन्हें सलाद के रूप में खाना चाहिए।

प्रश्न—२६. अन्न क्या है ? मनुष्य के भोजन में इसका क्या महत्व है ? वर्णन करें। (1963 A)

उत्तर – चावल, दाल, गेहूँ, जौ, बजरा, मकई, बूंट, चना, मसूर, अरहर, तीसी, सरसों इत्यादि को अन्न कहते हैं। मनुष्य अन्न खाकर ही बचता है और अच्छा स्वास्थ्य प्राप्त करता है। बिना अन्न का कोई व्यक्ति शायद ही रह सकता है। अन्नों में विटामिन प्रोटीन, कार्बोहाइड्रेट, वसा तथा लवण सब कुछ पाया जाता है। जो शरीर के लिए आवश्यक है। बिना इनके शरीर न कायम रह सकता है और न बन सकता

है। अन्न की आवश्ककता सबों को होती है। यहां तक कि पशु पक्षी भी अन्न खाना चाहते हैं। पक्षियाँ अन्न के टुकड़ों को घरों के अन्दर से चुनकर खाती है। गाय, भैंस, बैल, घोड़ा इत्यादि को भी अन्न खिलाया जाता है ताकि वह स्वस्थ्य रहे। बिना अन्न के मनुष्य का जीवित रहना असम्भव है।

(1963 A.)

प्रश्न—३०. संक्षेप में टिप्पणियाँ लिखें—

(क) वनस्पति [Vanaspati]

(ख) रक्तहीनता [Anaemia]

(ग) मछली [Fish]

(घ) भूनना [Roasting]

उत्तर (क) वनस्पति (Vanaspati)—वनस्पति को भोज्य पदार्थ में बांट सकते हैं —

शूक वर्ग-जैसे गेहूँ, जौ, मकई, बाजरा, ज्वार, चावल आदि।

दाल—जैसे अरहर, मूंग, मसूर, उरद, मटर इत्यादि।

शाक वर्ग—गोभी, टमाटर, लौकी, पालक इत्यादि।

कन्द वर्ग-जैसे-आलू, गाजर, चुकन्दर, शलजम इत्यादि।

फल वर्ग-५ वाँ वर्ग फलों का है। इसमें हरे फल और सूखे फल आते हैं जैसे—बादाम, नारंगी, अनार, अखरोट, मुनक्का इत्यादि।

(ख) रक्तहीनता (Anaemia) स्वास्थ्य के मिश्रित भोजन की सबसे उत्तम है। एनिमिया के रोगों के लिए सबसे उत्तम

भोजन वह है जिसमें प्रोटीन, वसा, लवण, कार्बोहाइड्रेट विटामिन और जल काफी मात्रा में है। एनिमिया के मरीज को Vitamin 'B' Complex आदि अधिक खिलाना चाहिए। केवल एक ही चीज से शरीर बलवान नहीं हो सकता। दूध और फल एनिमिया के मरीज को अधिक खिलाना चाहिए।

(ग) मछली (Fish) – मछली में पानी अधिक और नाइट्रोजन कम होता है। इससे यह जल्दी पच जाती है। मांस की अपेक्षा इसमें फास्फोरस और विटामिन A, D काफी मात्रा में रहता है। लोगों की भ्रान्त धारणा है कि मछली के लिए मस्तिष्क में पोषक तत्व अधिक मात्रा में है।

(घ) भूनना (Roasting)–भोजन अधिक भूनने से उसके अवयव जल जाते हैं। मांस को हल्की आंच पर भूनना चाहिए और उसपर भूनते हुए बराबर घी टपकाना चाहिए ताकि उसकी बाहरी अंग सख्त न हो जाय। चिकनाई द्वारा मांस के पोषण तत्व उसके कुछ अंशों में रह जाते हैं। उबाला मांस भुना मांस से अधिक स्वास्थ्यवर्द्धक होता है। भुना मांस अधिक स्वादिष्ट होता है।

प्रश्न ३१. प्रोभूजिनें (Proteins) क्या है? इनके मुख्य खाद्य स्त्रोतों तथा कार्यों को लिखें। (1963 S)

उत्तर—यह कार्बन, हाइड्रोजन, ऑक्सीजन, नाइट्रोजन, गन्धक तथा फास्फोरस आदि के सहयोग से बनता है।

प्रोटीन हमारे शरीर में मुख्यतः निम्नलिखित कार्य करती है :—

१ शरीर के अंगों की क्षति पूर्ति करना और उन्हें बनाना।

२ शरीर के पाचक रस या अन्य रस प्रोटीन की सहायता से बनते हैं।

३ ऑक्सीजन का शोषण शरीर में प्रोटीन के कारण ही होता है।

४ कभी-कभी प्रोटीन शक्ति उत्पादन का कार्य भी करती है।

५ वृद्धि के समय बालक को प्रोटीन मिला हुआ खाद्य पदार्थों का सेवन करना अत्यन्त आवश्यक है।

प्रोटीन निम्नलिखित चीजों में पायी जाती है —

१ अंडे की सफेदी, दूध, सब दालों में, बाजरा, जौ, गेहूं, चावल, खोआ, मांस, बादाम, अखरोट, मूँगफली, गड़ी, तिल।

प्रश्न—३२. असंतुलित भोजन से आप क्या समझते हैं। आप इसे यथा सम्भव कैसे सुधार सकते हैं। (1963 S)

उत्तर—असंतुलित भोजन से शरीर अपने समुचित स्वास्थ्य और उन्नति का अंश नहीं पाता है, और जो कुछ खाया जाय वह पूर्ण रूप से शरीरोपयोगी नहीं हो पाता है जिस कारण न्यून पोषण हो जाता है।

भारत में न्यून पोषण एक चिन्ताजनक रूप में पाया जाता है। दुष्परिणाम प्रोढों की अपेक्षा बच्चों और नवयुवकों पर बहुत बुरा पड़ता है। यही वह आयु है जब बच्चे के शरीर का विकास होता है।

न्यूण पोषण के कारण कई हैं जिनमें तीन मुख्य हैं —
(१) निर्धनता, (२) अज्ञानता, (३) परिवारों तथा समाज की असावधानी।

इसमें सुधार लाने के तरीके निम्नलिखित हैं —

१ प्रोटीन के लिए—सेम, मटर, मसूर का प्रयोग किया जाना चाहिए।

२ वसा के लिए—मक्खन निकाला दूध, तेल, डालडा।

३ कार्बोहाइड्रेट के लिए-गुड़, शक्कर, आटा, शक्करकन्द, मोटा चावल, आलू।

४ खनिज लवण के लिए-मखनिया दूध, छोटी मछली, बाजरा, ज्वार, मकई, लोहा, मटर, मूंगफली, गुड़, पालक, धनिया।

५ विटामिन्स :-

विटामिन 'अ' के लिए—धनिया की पत्ती, पुदीना, पालक, मछली, पपीता।

विटामिन 'बी' के लिए—बाजरा. उड़द की दाल, चने की दाल, तिल, मूँगफली।

विटामिन 'सी' के लिए-आवला, अमरूद, पका पपीता, केला, पालक, भिण्डी, बैंगन।

विटामिन 'डी' के लिए—विटामिन 'ए' के अनुसार।

६ जल—यह तो मुफ्त ही आसानी से गरीबों को भी मिल सकता है।

प्रश्न—३३. निर्जल पकाने के तरीके में पौष्टिक तत्व का नाश कम होता है। इसका उल्लेख करें। (1963 S)

उत्तर—निर्जल पकाने के श्रेणी में आते हैं भूनना, धीमी आंच पर पकाना, सेंकना, तलना. झूलसना, भाप से पकाना।

१ भूनना—भूनने का तरीका यह है कि कड़ाही में तेल या घी डालकर किसी तरकारी को जैसे—आलू. परवल, बैंगन आदि मांस को जिसमें हड्डी न हो, कड़ाही में भूनकर खाया जा सकता है जैसे—कलेजी, मछली को भी कड़ाही में तेल के सहारे भूनकर खाने के प्रयोग में लाया जाता है।

२ धीमी आंच पर पकाना—यह विधि कम खर्चीला तथा साधारण है। इसमें मांस के पतले-पतले टुकड़े कर दिये जाते हैं तथा बर्त्तन (कड़ाही) में रखकर तेल, नमक, मसाला आदि देकर धीमी आंच पर पकाया जाता है। इस प्रकार के मांस में तेल का कम अंश प्रयोग किया जाता है।

३ सेंकना—खमीरी रोटी तथा बिस्कुट तन्दूर में सेंका जाता है। रोटी को आग पर तवा रख कर सेंका और पकाया जाता है।

४ तलना—यह भोजन पानी के बजाय घी या तेल में पकाया जाता है। इसमें घी या तेल अधिक खर्च होता है। बहुत सी तरकारियाँ, पकवान, पूरी, कचौड़ी घी में तल लिया जाता है।

५ झुलसना · मांस को छोटे-छोटे टुकड़े में काटकर लोहे की सींक में मांस को गूंथ कर, नमक मसाला लगाकर आग पर रखकर

भूना जाता है। आग से मांस को थोड़ा ऊंचा रखा जाता है ताकि उसमें धूल तथा राख न लगे और बराबर सींक को उलटते रहना चाहिए तथा तेल टपकाते रहना चाहिए।

निर्जल पकाने की श्रेणी में चावल, मकई, बूँट इत्यादि के भूंजा भी आते हैं जो बालू को आग पर गर्म करके भूजा जाता है। मूंगफली भी आग पर बालू के गर्म करने पर ही भूना जाता है। इस विधि द्वारा भोज्य पदार्थ के गुणकारी तत्व नष्ट नहीं होते। कूकर द्वारा पकाये जाने वाले भोजन को भी निर्जल की श्रेणी में लाया जा सकता है परन्तु कुकर का भोजन भाप और पानी दोनों द्वारा पकाया जाता है। इसलिए कुकर का पकाया भोजन निर्जल की श्रेणी में नहीं के बराबर ही आता है।

प्रश्न—३४. रक्षक खाद्य क्या है? मनुष्य के भोजन में इनका क्या महत्व है वर्णन करें। (1963 S.)

उत्तर—रक्षक खाद्य पदार्थ निम्नलिखित हैं:-

१ प्रोटीन—प्रोटीन दो हैं—पशु और वनस्पति प्रोटीन।

२ खनिज लवण—ये शरीर के मांस और हाड़ बनाते हैं।

३ वसा:—

४ कार्बोहाइड्रेट—ये शरीर को शक्ति और गर्मी देते हैं।

५ विटामिन्स—जो मुख्यतः पांच प्रकार के हैं A, B, C, D and E., इन्हें जीवनदायिनी कहते हैं। विटामिनों के बिना

मनुष्य जीवित नहीं रह सकता है। ये हर तरह से शरीर को बनाते हैं, और मजबूत रखते हैं।

६ जल - जल से पाचन क्रिया ठीक प्रकार से होती है। शरीर का जहर पेशाब के द्वारा बाहर निकलता है।

ये उपर्युक्त वस्तुएँ शरीर को मजबूत और सुदृढ़ बनाने में अधिक सहायक होते हैं। रक्षक खाद्य पदार्थ में अधिक मात्रा दूध, अण्डा, मांस, हरी तरकारियों की होनी चाहिए।

प्रश्न-३५. स्कर्वी (Scurvy) क्या है ? जीवति 'सी' (Vitamin C) के मुख्य खाद्य स्त्रोतों को लिखें। (1963 S.)

उत्तर-स्कर्वी के मरीज वे हैं जिनका रक्त और रक्त नालिकाएँ उचित रीति से काम नहीं करती। स्कर्वी एक प्रकार का रोग है। इसमें मसूढ़ों से रक्त स्त्राव होता है। त्वचा पर नीले तथा बैंगनी रंग के चकत्ते पड़ जाते हैं। यह रोग विटामिन 'सी' की कमी से होती है। विटामिन 'सी' जल में घुलनशील विटामिन है। यह विटामिन नींबू, अनार, अंगूर, हरी तरकारियों आलू, गाजर, प्याज, आवला तथा अंकुरित अनाज में अधिक मात्रा में पाये जाते हैं।

प्रश्न ३६. संक्षेप में टिप्पणियाँ लिखें— (1963 S)

(क) ताजा फल [Fresh Fruits]

[ख] भाप से पकाना [Steaming]

(ग) सोयाबीन [Soyabean]

(घ) घी [Ghee]

उत्तर—(क) ताजा फल (Fresh Fruits) ताजे फलों का प्रयोग विटामिन और लवण के लिए किया जाता है। फलों में जल की मात्रा बहुत अधिक होती है। परन्तु प्रोटीन और बसा की मात्रा बहुत कम होती है। कार्बोहाइड्रेट्स भी शक्कर के रूप में उसमें मिले रहते हैं। फलों के प्रयोग से हम कई रोगों से बचे रहते हैं फलों में लवण भी पाये जाते हैं। नींबू और सन्तरे में साइट्रिक एसिड (अम्ल) विशेष रूप से पाया जाता है।

(ख) भाप से पकाना—भाप से पकाना सबसे उत्तम विधि है। आजकल बहुत से लोग कुकर (Cooker) में खाना पकाते हैं। उसमें भोजन भाप द्वारा पकता है जिससे लवण तथा अन्य अवयवों के नष्ट होने का डर नहीं रहता।

एक और विधि से भोजन बनाने की है, जिसे दूध के पेस्टराइजेशन (Pasteurisation of milk) के समान बनाया जाता है।

भोजन सादा और शुद्ध होना चाहिए जिसमें कच्ची तरकारियाँ तथा कम पके हुए पदार्थों का मिश्रण हो। पर एक बात यहाँ स्मरण रखने योग्य है कि स्वाद भी भोजन का एक आवश्यक अंग है। यदि भोजन रूचिकर न होगा तो पाचन रस पूर्ण रूप से न निकलेगा तथा भोजन अच्छी तरह से पच न सकेगा।

(ग) घी (Ghee)—घी एक चिकनई युक्त पदार्थ है। इसमें वसा की महत्ता अधिक होती है। घी, मक्खन को तपाकर निकलता है। घी उत्तम पदार्थ है परन्तु मक्खन की अपेक्षा यह देर से पचता है। आज के इस मंहगाई के युग में घी का मिलना कठिन तो नहीं पर दुस्कर अवश्य ही है। यह स्वास्थ्य के लिए आवश्यक है। इससे शरीर में शक्ति तथा गर्मी आती है। घी कोमल अंगों की रक्षा तथा पाचन क्रिया में सहायक होता है। पर घी का अधिक प्रयोग भी स्वास्थ्य के लिए हानिकारक होता है। इसकी अधिकता से चर्बी बढ़ जाती है तथा पाचन शक्ति के खराब होने का भी भय बना रहता है।

प्रश्न —३७. भोजन क्यों पकाया जाता है। चावल पकाने के सबसे उत्तम तरीके का वर्णन करें। (1964 A)

उत्तर मनुष्य को कुकिंग एनिमल (Cooking animal) कहा गया है। मनुष्य ही एक ऐसा जीव है जो अग्नि की सहायता से भोजन को पका कर खाता है। पकाने से भोजन स्वादिष्ट तथा सुपाच्य हो जाता है। गर्मी के प्रभाव से भोजन सामग्री में मिले हुए रोगों के कीटाणु का नाश भी हो जाता है। गर्म और ताजा भोजन करने से हैजा, अतिसार, पेचिश आदि रोग भी नहीं होते। भोजन को पकाने से भोज्य-पदार्थों के कणों के ऊपर रहने वाला छिलका फट जाता है और उन पर पाचक रसों का पूरा-पूरा प्रभाव पड़ कर भोजन शीघ्र पच जाता है। पकाने से भोजन गल कर छोटे छोटे टूकड़ों के रूप

में बदल जाता है। जो कि नर्म हो जाने के कारण आसानी से पचाया जा सकता है। चावल, आलू, पकाने से उसके ऊपर का आवरण गल कर फट जाता है जिससे भीतर से कण के स्टार्च बाहर निकल आते हैं और वे आसानी से पच जाते हैं।

चावल के पकाने का सबसे उत्तम तरीका यह है कि चावल चुनकर, धोकर, खौलते हुए जल में डाल देना चाहिए। जल की मात्रा इतना रहे जिससे चावल अच्छी तरह डूबकर पक जाय। पक जाने के बाद माड़ को चावल से पसाकर निकाल लेना चाहिए। कुछ लोगों का कहना है कि माड़ पसाने से चावल का भात सिट्ठी के रूप में रह जाता है और लाभदायक चीजें माड़ के साथ निकल जाती है। अतः चावल में उतनी ही जल होना चाहिए जिससे चावल गल जाए और उसका माड़ उसी में सुख जाय। इस प्रकार चावल का गुणकारी तत्व नष्ट नहीं होता। माड़ बिना निकाले हुए भात बनाते समय खौलते हुए चावल में थोड़ा घी डाल दिया जाय तो भात लथ पथ नहीं होता और देखने में अच्छा लगता है।

प्रश्न—३८. एक गरीब बिहारी परिवार के लिए संतुलित भोजन योजना कैसे करेंगे। (1964 A)

उत्तर—गरीब परिवार के व्यक्ति के लिए भी प्रोटीन, कार्बोहाइड्रेट, वसा, लवण, विटामिन और जल आवश्यक है। कम मूल्य में निम्नलिखित संतुलित भोजन का प्रबन्ध करना उचित होगा।

प्रोटीन के लिए-दाल, चावल का भात, जौ, मकई का आटा, ऊरद, मसूर की दाल।

कार्वोहाइड्रेट के लिए-गुड़, शक्कर, शकरकन्द आलू इत्यादि।

खनिज लवण के लिए—सखनिया दूध, तिल, मेथी, छोटी मछली, मूंगफली, गरी, बाजरा, ज्वार, मटर, खजूर, धनिया, पोदीना, पालक इत्यादि।

वसा के लिए—मक्खन निकाला दूध, तेल, डालडा, मछली की चर्बी।

विटामिनों के लिए पालक, कद्दू, घिउरा, अमरूद, अंकुरित चना इत्यादि।

जल- जल का तो मूल्य ही नहीं लगता।

प्रश्न- ३६. जीवति 'डी' विटामिन डी की कमी से कौन-कौन बीमारियाँ होती हैं ? इसका निवारण गरीब समुदाय में कैसे कर सकते हैं। (1964 A)

उत्तर—विटामिन 'डी' विटामिन 'ए' की भाँति तेल में घुलनशील है। इस विटामिन का काम शरीर में चूने, फास्फोरस का शरीर की आवश्यकतानुसार आत्मीयकरण होता है। इसकी कमी के कारण बच्चों की हड्डियाँ तथा शरीर वृद्धि रुक जाती है और बच्चों की हड्डियां मुलायम होकर टेढ़ी हो जाती है। बच्चे रिकेट्स से ग्रसित हो जाते हैं। यह विटामिन भी विटामिन ए के साथ ही साथ तथा उन्हीं पदार्थों में पाया जाता है —दूध, मक्खन, मछली, अंडे के तेल इत्यादि

में। यह विटामिन 'ए' की अपेक्षा अधिक ताप सह सकता है, यह विटामिन शरीर में तेल की मालिश करके सूर्य की धूप में थोड़ी देर तक रहने पर भी आवश्यक मात्रा में मिल सकता है, क्योंकि सूर्य की प्रकाश में अल्ट्रावायलेट किरणें रहती है। ये किरणें त्वचा पर पड़कर उसके नीचे के स्नेह से विटामिन 'डी' का निर्माण कर देती है, जो कि शरीर के उपयोग में आ जाता है अतः प्राकृतिक साधनों में से इस विटामिन को प्राप्त करने के लिए हमें धूप का सेवन कुछ समय अवश्य करना चाहिए। इस प्रकार तेल की मालिश करके बच्चों को थोड़ी देर धूप में लिटाने से सूखा रोग धीरे-धीरे ठीक किया जा सकता है।

प्रश्न—४०. एक साधारण भोजन में वसा के महत्व का वर्णन करें। एक सामान्य भारतीय के लिए इसका दैनिक मांग क्या है ? (1964 A)

उत्तर—वसा (Fats) कार्बोहाइड्रेट की भाँति ये पदार्थ भी कार्बन हाइड्रोजन और ऑक्सीजन के संयोग से बनते हैं, किन्तु इसमें ऑक्सीजन और हाइड्रोजन के अनुपात भिन्न-भिन्न होते हैं। इनके योग जल से अणु नहीं बन सकते हैं। वसा के पदार्थ ग्लिसरीन और वसाम्ल (Fatty Acids) इत्यादि के संयोग से बनते हैं। साधारण तेल, चर्बी, घी, मक्खन आदि शुद्ध वसा के उदाहरण है। चर्बी एक ज्वलनशील पदार्थ है, जो हल्की होने के कारण पानी पर तैर जाती है। वह दो रूपों

में प्राप्त होती है—एक प्राणिज वर्ग की वसा (Animal Fat) तथा दूसरी वनस्पति वर्ग की वसा (Fat from the vegetable kingdom) । इसमें प्राणिज वसा में वनस्पतिक वर्ग की वसा से अधिक विटामिन होते हैं तथा प्राणिज वसा का पाचन भी मानव-शरीर में आसानी से हो जाता है।

१ वसा का कार्य सारे शरीर में कार्बोहाइड्रेट की तरह से ही शक्ति तथा ऊष्मा उत्पन्न करना है। वसा कार्बोहाइड्रेट से लगभग तीन गुणा शक्ति तथा ऊष्मा उत्पन्न करती है, अतः इसी कारण से गर्मी में चिकनाई खाने की इच्छा नहीं होती और न वह ठीक से हजम ही हो पाती है।

२ वसा से शरीर में चिकनाई उत्पन्न होती है, जिसके फलस्वरूप ओजरूपी प्रोटीन या अल्यूमिन (Allumin) का नाश बहुत कम होने पाता है।

एक सामान्य भारतीय के लिए दैनिक मांग—

तेल - एक छटांग प्रतिदिन, घी—एक छटांग प्रतिदिन।

प्रश्न—४१. संक्षेप में टिप्पणियाँ लिखें — (1964 A)

(क दूध, (ख) भर्जन (Baking), (ग) सोयावीन (Soyabean), (घ) पपीता।

उत्तर—दूध सभी खाद्य तत्त्वों से युक्त संतुलित आदर्श आहार है। डेढ़ वर्ष तक के बच्चों का तो यह एकमात्र आहार है। दूध,

प्रोटीन, वसा, लवणादि और शर्करा का जल में एक प्रकार का घोल है जो माताओं और मातृ जाति के पशुओं के स्तन से दोहन-विधि द्वारा स्त्रावित होता है।

दूध के किस्में :—

(१) स्त्री दुग्ध।

(२) गो दुग्ध।

(३) भैंस का दूध।

(४) बकरी का दूध।

सेंकना (Baking) सेंकना भी काफी देर तक भूनना ही है। यह काम बन्द बरतनों में किया जाता है। खमीरी रोटी (तन्दूर रोटी) तथा विस्कुट भी इसी प्रकार सेंक कर बनाये जाते हैं। इसमें कार्बोहाइड्रेट टूट जाता है। कार्बोहाइड्रेट पर लगी चर्बी के कारण पकवान को पचाना कठिन हो जाता है, इसलिए थूक भी अपना काम पकवानों पर भलीभांति नहीं कर पाती। यह भोजन तैयार करने की सरल तथा अच्छी रीति है। तन्दूर या भट्ठी के भीतर रख कर भोजन के पकाने को सेंकने की क्रिया कहते हैं।

पपीता :—इसमें पैपेन नामक एक पदार्थ होता है जो पाचन के लिए अति उपयोगी है। हमारे पेट में इसी पदार्थ के होने के कारण भोजन पचता है। अतः इसकी कमी बाहर से पपीता द्वारा पूरी की जा सकती है। परन्तु पपीता तभी फायदा करता है जब रक्त-क्षार प्रधान हो अर्थात् शाकभाजी

का सेवन अधिक हो। पपीता की तेजी का अन्दाजा इससे लगाया जा सकता है कि जो गोश्त न पकता हो पपीता डाल देने से पक जाता है। पके पपीता में विटामिन 'ए', बी' और 'सी' तीनों होते हैं। परन्तु कच्चे में विटामिन 'ए' नहीं होता।

प्रश्न—४२. भिन्न-भिन्न प्रकार के खाद्य पदार्थ क्या हैं ? दाल के पोषक महत्व का वर्णन करें (1965 A)

उत्तर—दाल का पोषक तत्व - अरहर, मूँग, मसूर, मटर, उरद इत्यादि। इनमें प्रोटीन अधिक होती है। यद्यपि मांस और अन्डे की अपेक्षा कम होती है। तथापि शाकाहारी लोगों को प्रोटीन के अभाव की पूर्ति के लिए दाल अधिक मात्रा में व्यवहार करनी चाहिए। यह देर से पचता है। वसा और कार्बोहाइड्रेट की कमी को पूरा करने के लिए यह घी डालकर रोटी के साथ खाई जाती है। गठिया के रोगी को दाल नहीं खाना चाहिए। दाल से यूरिक अम्ल उत्पन्न होता है जो गठिया का मुख्य कारण है।

प्रश्न—४३. शिशु के भोजन में दूध के महत्व का वर्णन करें।
(1965 A)

उत्तर—बच्चों के लिए दूध सर्वांग सम्पन्न पदार्थ है। बच्चों के लिए माता का दूध सर्वोत्तम पदार्थ है। इसके बाद गाय के दूध का स्थान है। दूसरा नम्बर बकरी के दूध का है। बच्चों के लिए गाय का दूध बकरी के दूध से श्रेष्ठ होता है। दूध खाने

से बच्चों की आयु बढ़ती है। सारे शरीर के अंग पुष्ट होते हैं। बच्चों के लिए दूध जितना लाभदायक है उतना ही उनके स्वास्थ्य को खराब कर सकता है। यदि दूध खराब हो। दूध की गन्दगी और शिशु के मृत्यु का भी घना सम्बन्ध है।

प्रश्न ४४. हरी पत्तीदार सब्जियों के पोषण तत्वों पर पकाने का क्या प्रभाव पड़ता है ? सब्जी पकाने के सबसे उत्तम तरीके का वर्णन करें। (1965 A)

उत्तर—मनुष्य के आहार में हरी पत्तीदार शाकों का एक विशेष स्थान है। स्वास्थ्य के लिए ये दूध के समान गुणकारी है। बच्चों के आहार में शाकों के रहने से उनकी बाढ़ सिवाय दूध के अन्य समस्त पदार्थों की अपेक्षा अधिक होती है, क्योंकि उनमें कैलसियम, फास्फोरस, सोडियम क्लोरिन, आयोडिन. गन्धक, आदि बहुत होते हैं, यहाँ तक कि अनाज के दुगुना से लेकर पांचगुना तक पाये जाते हैं। इसलिए ये रक्त को शुद्ध रखते हैं और उसमें क्षार तथा अम्ल का अनुपात ठीक रखते हैं। केवल अनाज या मांस खाने वालों का रक्त अम्ल हो जाता है; परन्तु क्षार-प्रधान होने के कारण अम्लता नाशक होता है। (२) इनका प्रोटीन उत्तम प्रकार का होता है और अनाज के प्रोटीन की कमी को दूध के समान पूरा करता है। (३) इनमें विटामिन ए, बी और सी पर्याप्त मात्रा में होते हैं। इस दृष्टि से पालक सर्वश्रेष्ठ है। पालक और लाल चौलाई में मक्खन का तिगुना विटामिन ए होता है, विटामिन बी ए

से कम और खमीर का तिहाया होता है और विटामिन सी समस्त मेवों, फलों और शाकों से अधिक होता है।

शाकों के पकाने में लवणों की हानि पालक, करमकल्ला, प्योज आदि पदार्थों को भाप द्वारा तथा साधारण बरतन में पकाकर पता लगाया गया है कि पालक के शाक को बिना पानी डाले बन्द बरतन में पकाने से उसके लवणों में कोई हानि नहीं होती अन्यथा कुछ कमी आ जाती है।

पकाने में विटामिनों की हानि—साधारण पकाने में विटामिन ए और बी कुछ कम हो जाते हैं परन्तु विटामिन सी बहुत कम हो जाता है। केवल १० मिनट तक बन्द बरतन में पकाने से लगभग ६५ प्रतिशत विटामिन सी मर जाता है। इसलिए हरे शाक—कच्चे और पकाये दोनों—यथासम्भव प्रत्येक मनुष्य के प्रतिदिन के भोजन में होने चाहिए। कच्चे शाक बहुमूल्य फलों से भी बढकर होते हैं। शाकों के धोने में बड़ी सावधानी रखनी चाहिए और विशेषकर कच्चे खाये जाने वालों में। क्योंकि बहुधा रोग के कीटाणु खेतों से शाक के पत्तों के साथ शरीर के अन्दर पहुँच जाते हैं। नमक के पानी या गरम पानी से धोना अति उत्तम होगा। गन्दे शाक के कारण ही अक्सर बच्चों के पेट में कीड़े आ जाते हैं। पकाने के लिए भी पहले धोकर फिर काटना चाहिए। पकाते समय शाक में जो पानी छूटता है उसे फेंकना न चाहिए नहीं तो बहुत कुछ लवण और विटामिन निकल जाते हैं।

भारत में सरसों, मूली, पुदीना, सोया, मेथी आदि शाकों के कच्चे खाने का रिवाज पहले ही से है। कच्चे खाये जाने वाले कुछ अन्य शाक जैसे—पालक या सलाद (Lettuce) का भी रिवाज बढ़ना चाहिए। यह गुणकारी होने के साथ-साथ स्वादिष्ट भी होते हैं। ये रायता के रूप में भी खाये जाते हैं।

प्रश्न—४५. जीवति बी (विटामिन बी) के अभाव से होने वाले रोगों को लिखें। इस जीवति के मुख्य खाद्य स्त्रोत क्या है ?

(1965 A)

उत्तर—यह विटामिन पानी में घुलनशील तथा ताप को सहने वाला होता है, अतः यह हरे साग. फल, टमाटर, सेव, मटर, गाजर, दूध, मट्ठा, चावल मूली. शहद, सूखे मेवे, अनाजों की भूसी इत्यादि पदार्थों में अधिकता से पाया जाता है। भोजन में इसकी उपस्थिति भोजन को सुपाच्य बना देती है। इसकी कमी से वेरी-वेरी नामक रोग हो जाता है। इसलिए पालिश किया हुआ चावल तथा भूसी रहित अन्न का सेवन नहीं करना चाहिए। इसके अलावा विटामिन 'बी' की कमी से मंदाग्नि, कब्ज, त्वचा पर धब्बों तथा चकत्तों का पड़ना, चिड़चिड़ापन. निद्रानाश, उदर-शूल. होठों की फटन, मुँह आना आदि उपद्रव उत्पन्न हो जाते हैं तथा विटामिन B. की कमी से विशेष रूप से वेरी-वेरी तथा परिसरीय नाड़ीशोध (Peripheral Neuritis) नामक रोग उत्पन्न हो जाता है।

प्रश्न—४६ संक्षेप में टिप्पणियाँ लिखें — (1965 A)

(क) अण्डा, (ख) भूनना, (ग) अमरूद, (घ) घी।

उत्तर—दूध के बाद शरीर के लिए हितकारी पदार्थों में अण्डे का ही नम्बर आता है। इसके सेवन से शरीर की वृद्धि होती है क्योंकि यह बहुत जल्दी पच जाता है। पेट की बीमारी वाले रोगियों की औषध अण्डे के पानी के रूप में दिया जाता है। अण्डे में शरीर के पोषण के लिए आवश्यक प्रत्येक पदार्थ होते हैं। यह दूध के समान पूर्ण खाद्य पदार्थ नहीं, क्योंकि इसमें खनिज लवण बहुत कम होते हैं तथा स्टार्च या श्वेतसार (कार्बोहाइड्रेट) बिल्कुल नहीं होती। कई लवण तो बाहरी आवरण या खोल (Shell) से मिलकर घुल जाते हैं। फिर भी अण्डे बहुमूल्य खाद्य-पदार्थ हैं क्योंकि उनमें प्रोटीन, वसाएँ तथा विटामिन बहुत अधिक होते हैं।

भूनना (Frying)—भोजन को घी या तेल में पकाने की क्रिया को भूनना कहते हैं। खाद्य पदार्थ के कण वसा से मिल जाने के कारण अपाच्य हो जाता है। मछली को भी इसी विधि से पकाया जाता है। बहुत सी तरकारियाँ, पूरी, कचौड़ी आदि इसी विधि से पकाये जाते हैं। इस प्रकार से पकाए भोजन से पाचन शक्ति कमजोर हो जाती है।

अमरूद—इसमें विटामिन बी, सी होते हैं। यह कब्ज को दूर करता है। इसको खाने से शरीर में ताजगी और पाखाना साफ होता है। अमरूद कई तरह के होते हैं :—

पटनिया, इलाहाबादी, गोरखपुरी, बनारसी-इसमें इलाहाबादी और गोरखपुरी मशहूर हैं। इनमें बीज कम होते हैं और खाने में मजेदार होते हैं।

घी - यह मक्खन को तपाकर निकाला जाता है। हमारे देश में इसका प्रयोग मक्खन की अपेक्षा बहुत अधिक किया जाता है। यह अधिक समय तक रखा भी जा सकता है, किन्तु यह मक्खन से देर में पचता है। शुद्ध घृत अत्यन्त उत्तम भोज्य पदार्थ है। इसको दाल में मिलाकर रोटी अथवा चावल के साथ प्रयोग किया जाता है। भैंस के दूध से बनाए हुए घी में गाय के घी की अपेक्षा अधिक वसा होती है। भैंस का घी सफेद और गाय का घी पीला होता है। जाड़ों में जो घी तैयार किया जाता है वह गर्मियों में बनाए हुए घी की अपेक्षा उत्तम माना जाता है।

प्रश्न—४५. अन्न क्या है ? मनुष्य के भोजन में इनका क्या महत्व है ? वर्णन करें। (1965 S)

उत्तर—चावल, दाल, गेहूँ, जौ, बाजरा, मकई, बूंट, मसूर, अरहर, तीसी, सरसों इत्यादि को अन्न कहते हैं। मनुष्य अन्न खाकर ही बचता है और अच्छा स्वास्थ्य प्राप्त करता है। बिना अन्न का कोई व्यक्ति शायद ही रह सकता है। अन्नों में विटामिन, प्रोटीन, कार्बोहाइड्रेट, वसा तथा लवण सब कुछ पाया जाता है। जो शरीर के लिए आवश्यक है। बिना इनके न शरीर कायम रह सकता है और न बन सकता है। अन्न की

आवश्यकता सबों को होती है यहाँ तक कि पशु को भी होती है। पक्षियाँ अन्न के टुकड़ों को घरों के अन्दर से चुनकर खाती है। गाय, भैंस, बैल, घोड़ा इत्यादि को भी अन्न खिलाया जाता है ताकि वह स्वस्थ्य रहे। बिना अन्न के मनुष्य का जीवित रहना असम्भव है।

प्रश्न—४८. पकाने में सबसे अधिक क्षति जीवति 'सी' की होती है, वर्णन करें। (1965 S)

उत्तर- विटामिन 'सी' जल में घुलनशील विटामिन है। यह ताजे फल, दूध, हरे शाक में होता है। विटामिन 'सी' निम्नलिखित चीजों में पाया जाता है :—

१ आंवला
२ अमरूद
३ नीम्बू का रस
४ सन्तरा
५ अन्नास
६ पका पपीता
७ सेव
८ पका टमाटर
६ कच्चा टमाटर
१० लाल शाक और हरा शाक
११ करमकल्ला
१२ धनिया की पत्ती

१३ मूली की पत्ती

१४ गोभी

१५ भिण्डी

१६ पका आम

१७ पालक

ऊपर लिखी अधिक चीजों को हम बिना आग में पकाये ही प्रयोग कर सकते हैं। इन्हें आग पर चढ़ाने की जरूरत ही नहीं पड़ती जैसे—अमरूद, नींबू, सन्तरा, अन्नास, पका आम, पका पपीता सेव, केला इत्यादि। कुछ तरकारियाँ भी हैं जिन्हें हम पकाकर ही खा सकते हैं। पकाने में भी विटामिन सी की क्षति जरूर होती है मगर पकाना जरूरी है। पकाते समय इसे ज्यादा नहीं भूनना चाहिए। जिस बर्त्तन में यह पकाये जाये उस बर्त्तन को ढ़ँक देना चाहिए ताकि विटामिन 'सी' निकल न जाये। जरूरत से ज्यादा भी जलाना नहीं चाहिए नहीं तो विटामिन 'सी' अधिक नष्ट हो जायेगा। कोशिश इस बात की करनी चाहिए की विटामिन सी' वाले फल या कुछ तरकारियाँ जैसे—टमाटर, धनिया की पत्ती, मूली की पत्ती का प्रयोग हम कच्चे ही कर सकते हैं।

प्रश्न—४६ चूना के पोषक महत्व का वर्णन करें और इस खनिज के मुख्य स्त्रोतों को लिखें। (19 5 S.)

उत्तर—यह खाने वाले चूने का ही शुद्ध रूप है। मुख्यतः इसी से दाँत और हड्डियाँ बनती तथा पुष्ट होती है। इसी के कारण हृदय

की क्रिया ठीक रूप से होती है। रक्त में जमने की शक्ति होती है। शरीर के संक्रामक रोगों के, जैसे—मलेरिया आदि से बचने की शक्ति रहती है। शरीर के टूटे-फूटे सेलों की मरम्मत हो सकती है। पाचन स्वस्थ्य रहता है। परिश्रम करने पर थकान नहीं आती। बच्चों में कब्ज, रिकेट्स तथा दांत निकलने में देरी या कष्ट बच्चे के आहार में कैलसियम की कमी समझना चाहिए। इस खनिज के मुख्य खाद्य स्त्रोत निम्नलिखित है :—

१ दूध—गाय, भैंस, बकरी।

२ दही और खोआ।

३ दाल—चना, अरहर, मूंग, उरद, मसूर।

४ मेवा तथा तेलहन, बादाम, तिल।

५ शाक सब्जी हरे और लाल साग, गाजर, पुदीना, मेथी।

६ मांस, अण्डा, छोटी मछली।

७ अन्न—गेहूँ, जौ।

प्रश्न ५०. संक्षेप में टिप्पणियाँ लिखें:— (1965 S)

(क) दृढ़ फल (Nuts) (ख) भाफ से पकाना (Steamiry) (ग) केला (घ) मांस।

उत्तर—दृढ़फल—अखरोट, कसैली, बादाम, गड़ी, बेल, कटहल इत्यादि।

अखरोट:- इसके कड़े छिलके को तोड़कर भीतर का गूदा निकाला जाता है। इसका व्यवहार जाड़े में किसमिस के साथ किया जाता है। यह स्वास्थवर्धक है और इससे खून बनता है।

कसैली:-कसैली का प्रयोग पान में अधिक होता है। बहुत से लोग सिर्फ कसैली ही खाते हैं। कसैली का प्रयोग दरभंगे जिले के मैथिलो में अधिक हैं।

बादाम:—बादाम कई तरह के होते हैं किन्तु सबसे ऊपर के छिलके कड़े होते हैं। इसको भी तोड़कर ही खाते हैं। भीतर का गूदा मुलायम और उजला होता है। बादाम को पानी में फुलाकर और पिसकर बहुत से लोग मिश्री के साथ खाते हैं। बादाम से दिमागी ताकत बढ़ती है और खून भी अधिक होता है।

गड़ी :—गड़ी के ऊपर का छिलका बहुत कड़ा होता है। बिना हथौड़ी के नहीं फटता। इसका भीतरी भाग भी कुछ कड़ा होता है। इसका प्रयोग लोग और फलों की तरह करते हैं।

बेल:-कच्चे बेल को बहुत से लोग आग में पका कर खाते हैं इससे पेचिस दूर हो जाती है। पके बेल को तोडकर गर्मी के दिनों में लोग खाते हैं। इसका शर्बत भी बनाया जाता है। इससे पाखाना साफ होता है और शरीर में ताजगी आती है।

कटहल: —इसका छिलका बहुत कड़ा होता है। छिलके को छीलकर तरकारी बनाई जाती है। पके कटहल को भी

खाया जाता है। यह स्वास्थ्य के लिए लाभदायक नहीं है। इससे बीमारियाँ भी हो जाती है।

भाप से पकाना- आजकल मशीन के द्वारा दूध को भाप से पकाया जाता है। ऐसे मशीनों का प्रयोग बड़े-बड़े अस्पतालों में हुआ करता है। कूकर में भी चावल, दाल और तरकारी भाप से पकते हैं। भाप से पकाने में विटामिनों की क्षति नहीं होती है।

केला :—यह अति उपयोगी फल है। इसमें लोहा और कार्बोहाइड्रेट अधिक होता है। इसमें विटामिन 'सी' भी काफी होता है। दूध के साथ खाने से केला और दूध का पाचन शीघ्र होता है। साधारणतया यह मल बांधता है। अधिक मात्रा में खाने से कब्जनाशक हो जाता है। इसका प्रचार अधिक होना चाहिए।

मांस : इसमें प्रोटीन, वसा और नमक अधिक मात्रा में पाये जाते हैं। इसमें सबसे अधिक प्रोटीन की मात्रा पाई जाती है। मांस का प्रयोग करते समय एक बात का ध्यान रखना चाहिए कि बीमार जानवर का गोश्त न हो और न बासी हो। खराब गोश्त के प्रयोग से शरीर में विष फैल कर मृत्यु भी हो सकती है। डिब्बों में आने वाले मांस-मछली से विष फैलकर मौत का कारण हो सकता है।

प्रश्न—५१. भोजन जीवन के लिए बहुत आवश्यक है, व्याख्या करें। (1966 A)

उत्तर—हमारे भोजन करने का उद्देश्य यह है कि शरीर के समस्त हानि को पूर्ण किया जाय। शरीर को गर्म रक्खा जाए। शरीर के भीतरी तथा बाहरी कार्यों के लिए जितनी शक्ति की आवश्यकता हो वह उत्पन्न की जाए। बच्चे जो भोजन करते हैं उसका एक भाग शरीर के बढ़ते हुए (अवयव) भागों की रचना में भी व्यय होता है। मानव शरीर अस्थियों का एक ढाँचा है जिसमें माँसपेशियों में गति, मस्तिष्क और मज्जा तन्तु द्वारा उत्पन्न होती है उनको शक्ति भोजन से प्राप्त होती है जो हम खाते हैं साथ ही निरर्थक पदार्थ भी निकलते हैं। मानव शरीर का निर्माण भोजन से होता है उसकी मरम्मत भी उसी भोजन से होती है।

हमारा शरीर भोजन के पौष्टिक भाग को ग्रहण कर लेता है और उसी से बढ़ता है।

भोज्य तत्वों के प्रकार—

१ प्रोटीन २ लवण	शरीर की रचना करने वाले हैं।
३ वसायें ४ कार्बोहाइड्रेट	शक्ति उत्पादक है।
५ जल ६ विटामिन	स्वास्थ्य के लिए आवश्यक है।

भोजन में निम्नलिखित चीजें शामिल हैं —
(१) चावल, आंटा (२) दाल (३) तरकारियाँ (४) तेल, घी, मसाले (५) दूध, दही, मक्खन (६) फल (७) मांस मछली, अण्डा।

आहार का महत्व—मनुष्य को जीवन कायम रखने के लिए जल, वायु, भोजन की आवश्यकता है किन्तु आहार का महत्व उसी समय उत्तम है जबकि खाने वाली चीजें शुद्ध हो ताजे हो, सड़े-गले न हो। आजकल सब चीजों में मिलावट रहने के कारण आहार के महत्व में कमी हो गई है और शरीर दुर्बल हो जाता है। अतः तरकारी, दूध, घी, जल इत्यादि शुद्ध और बिना मिलावट की चीजों को खायें। भोज्य पदार्थ गले न हो एवं ताजा होना चाहिए। जरा भी कुछ शक हो कि चीज खराब है तो नहीं प्रयोग करना चाहिए। भोजन को अच्छी तरह पकाये हो, सादा हो, अधिक मसाला और तल ज्यादा न हो। इस तरह के भोजन से लाभ के बदले हानि ही होती है। चावल का माड़ नहीं फेंकना चाहिए। आंटा चोकर सहित हो। भोजन में शाग-सब्जियों की मात्रा काफी होनी चाहिए। दूध, घी के बिना भोजन का महत्व घट जाता है। आहार में घी, दही, सब्जियों का भी होना आवश्यक है।

प्रश्न—५२. गाय के दूध में भिन्न-भिन्न अवयव कौन-कौन हैं? प्रत्येक अवयव की उपयोगिता का वर्णन करें।

(1966 A:)

उत्तर—गाय के दूध में निम्नलिखित अवयव होते हैं :—

१	प्रोटीन	४%
२	वसा	२·६%
३	शर्करा	५·८%
४	लवण	०·१६%
५	जलीय अंश	८७%

(१) प्रोटीन दूध के प्रोटीन में फास्फोरस और अल्बुमिन के प्रोटीन है और कैलसियम का भी कुछ अंश है। प्रोटीन शरीर की रचना नये-नये सेलों की उत्पत्ति करना और टूटे-फूटे सेलों की मरम्मत करती है।

(२) वसा—वसा का काम है शरीर में गर्मी और शक्ति पहुँचाना।

(३) शर्करा—शर्करा से भी शरीर को शक्ति और गर्मी प्राप्त होती है।

(४ लवण लवण से शरीर की हड्डियाँ मजबूत होती हैं और शरीर के कोमल अंग को लाभ पहुँचता है।

(५) उपरोक्त तत्वों के अतिरिक्त दूध में कई विटामिन भी है। इसमें विटामिन बी, ए, हैं। जिससे शरीर को जीवन शक्ति मिलती हैं।

प्रश्न –५३. जल में घुलनशील विटामिनों का वर्णन करें।

(1966 A)

उत्तर—विटामिन बी और सी जल में घुलनशील विटामिन हैं। विटामिन बी से वेरी-वेरी बिमारी और खून की बीमारी नहीं

होती है। विटामिन बी लाल चावल, दूध, अंकुरते अनाज, मांस मछली और अन्डे के जर्दे में पाया जाता है।

विटामिन 'सी' भी जल में घुलनशील विटामिन हैं। ये उबालने से नष्ट हो जाता है। यह साग-सब्जी में पाया जाता है जैसे—टोमैटो, नीम्बू, नारंगी, आवला, अमरूद इत्यादि। विटामिन सी की कमी से स्कर्वी नामक रोग हो जाता है।

प्रश्न—५४. हरी सब्जी और फल शरीर के रक्षक खाद्य पदार्थ कहलाते हैं। वर्णन करें। (1966 A 1967 S)

उत्तर—हरी तरकारियाँ ये हमारे शरीर को खनिज लवण तथा विटामिन प्रदान करती है। हरे पत्तों वाले शाकों, यथा पालक सोया, बथुआ, चौलाई आदि से शरीर को लोहा प्राप्त होता है। इनमें कोई विशेष पोषक शक्ति नहीं होती किन्तु एक ऐसी वस्तु अवश्य होती है जिसे सेल्यूलोज (Cellulose) या खोभर कहते हैं। यह आंतों में बिलकुल नहीं पचती। अतः इसके कारण आंते उत्तेजित होती है तथा अपना कार्य नियमित रूप से किया करती है जिसके फलस्वरूप मल-त्याग शुद्ध होता रहता है और कब्ज नहीं होने पाता। जिस व्यक्ति को कब्ज की शिकायत हो, उसे हरे शाकों का उपयोग अधिक करना चाहिए। शाकों में जल का बहुत अधिक भाग रहता है तथा कुछ नाइट्रोजन युक्त पदार्थ भी होते हैं किन्तु वसा नहीं पायी जाती, इस कारण उनको सदा घी या तेल में भूनकर या उनकी रसदार तरकारी बनाकर खाई जाती है। शाकों से

अन्नों तथा फलों की भांति रोग उत्पन्न हो सकते हैं, इसलिए उनको पकाने के पहले भली-भांति देख लेना चाहिए तथा शुद्ध जल में धोकर ही बनाना चाहिए।

फल :—ताजा फलों का प्रयोग खनिज लवण तथा विटामिनों को प्राप्त करने के लिए किया जाता है। फलों में जल की मात्रा बहुत अधिक होती है तथा प्रोटीन व वसा बहुत कम होती है। कार्बोहाइड्रेट भी शक्कर के रूप में मिलते हैं। कच्चे फलों में अम्ल अधिक होता है तथा पके फलों में विटामिन अधिक होता है। इनमें स्कर्वी को नाश करने की उत्तम शक्ति होती है, विशेषकर नींबू और नारंगी में।

शाकों में प्रायः विटामिन तो उनके पकाये जाने के कारण नष्ट हो जाते हैं, मगर फलों के विटामिन बिना पकाये हुए खाने के कारण हमें पूरे-पूरे रूप में मिलते हैं। फल आंतों के पाचन कार्य में सहायता देते हैं और रक्त में क्षारीयता उत्पन्न करते हैं। भोजन की त्रुटि से जो रोग उत्पन्न होते हैं, उनमें इनका प्रयोग करने से बहुत लाभ होता है। फलों में अंगूर, केला, सेव, सन्तरा, मौसमी, अनार तथा आम आदि मुख्य है; जिनका प्रयोग अधिक किया जाता है। फलों में खनिज लवण प्रायः साइट्रेटड या टारटेट के रूप में रहते हैं। नींबू और सन्तरे में साइट्रिक अम्ल Citric Acid) रहता है।

(1966 A.)

प्रश्न—५५. संक्षेप में टिप्पणियाँ लिखें :—

(क) रक्तार्म (ख) स्कर्वी

उत्तर :—(१) कार्बोहाइड्रेट के भेद निम्नलिखित है :—

[१] श्वेतसार [२] शर्करा

श्वेतसार-(स्टार्च) श्वेतसार को माड़ या स्टार्च कहते हैं। यह एक वानस्पतिक पदार्थ है। यह हमें पौधे के विभिन्न भागों से प्राप्त होता है। भोजन में यह विशेषकर—चावल, गेहूँ, मकई, बाजरा, आलू आदि से प्राप्त होता है। ठंडे जल में यह अघुलनशील है, लेकिन गर्म जल में इसका कुछ भाग अवश्य घुल जाता है।

(ख) स्कर्वी-यह बीमारी विटामिन 'सी' की कमी से होती है। स्कर्वी के बीमारी में रक्त तथा रक्त नलिकाओं पर विशेष प्रभाव पड़ता है। इस बीमारी में खून खराब हो जाता हैं, मसूड़े खराब हो जाते हैं क्योंकि उनसे खून आने लगते हैं। त्वचा पर नीले रंग के चकते पड़ जाते हैं। ये विटामिन ताजा हरे फलों में पाये जाते हैं जैसे नींबू, अंगूर, अनार, हरी तरकारियाँ, आलू, प्याज, गाजर इत्यादि में।

प्रश्न ५६: विटामिनों का नाम लिखें और उनकी उपयोगिता की व्याख्या करें। (1967 A)

उत्तर :—विटामिन शरीर को हृष्ट पुष्ट रखने के लिए खुराक में जरूरी है। मुख्य विटामिन ५ प्रकार के होते।

विटामिन एः-यह वसा में घुलने वाला (Fat Soluble) विटामिन है। यह मछली के तेल, मक्खन, अंडा और गाजर

में ज्यादातर पाया जाता है। इसकी कमी से शरीर में रोग से लड़ने की ताकत कम हो जाती है। रतौन्धी (Night Blindness) भी इसी की कमी से होती है। उबालने से इस विटामिन का नाश नहीं होता है।

विटामिन 'बी'—यह जल में घुलने वाला (Water Soluble) विटामिन है। यह लाल चावल, इष्ट (Yeast), दूध, अंकुरते अनाज, मांस-मछली और अण्डे की जर्दी में पाया जाता है। इसकी कमी से बेरी-बेरी आदि रोग होते हैं।

विटामिन 'सी'—यह भी जल में घुलनेशील है। यह उबालने से नष्ट हो जाता है। यह शाक-सब्जी और फलों में पाया जाता है। टमाटर, नींबू, नारंगी, आंवला, अमरूद में विशेष परिमाण में पाया जाता है। इसकी कमी से स्कर्वी नामक बीमारी होती है।

विटामिन 'डी'—यह वसा में घुलनशील विटामिन है। यह मछली के तेल, दूध, मक्खन, चर्बी, अण्डा आदि में मिलता है। यह अस्थियों की ठीक वृद्धि में सहायक होता है। इसलिए इसकी कमी से रीकेट्स और औस्टो की मलेशिया होता है। यह भी उबालने से नष्ट नहीं होता है।

विटामिन 'ई'—यह भी वसा में घुलनशील विटामिन है। यह अनाज जैसे गेहूँ के बीजों के तेल में मिलता है। इसकी कमी से मनुष्य की उत्पादन शक्ति नष्ट हो जाती है। यह उबालने से नष्ट नहीं होता है।

प्रश्न – ५७. भोजन के कौन-कौन अवयव हैं, वे शक्ति कैसे देते हैं व्याख्या करें। (1967 A)

उत्तर—जो भोजन हम ग्रहण करते हैं उसमें कुछ मौलिक तत्व पाये जाते हैं जो हमारे जीवन तथा हमें स्वस्थ्य रखने के लिए अत्यन्त आवश्यक है। भोजन में मुख्यतः निम्नलिखित तत्व पाये जाते हैं।

(१) प्रोटीन (२) कार्बोहाइड्रेट (३) वसा (४) लवण (५) जल (६) विटामिन।

१ प्रोटीन २ खनिज लवण	ये शरीर में मांस और हाड़ बनाते हैं।
३ वसा ४ कार्बोहाइड्रेट्	ये शरीर में शक्ति और गर्मी पैदा करते हैं।

(५) विटामिन—विटामिन को जीवनदायनी कहते हैं।

(६) जल—पाचन क्रिया के लिए और खून के दौरान के लिए जल आवश्यक है।

प्रोटीन अंडा की सफेदी, दूध, दाल इत्यादि में पाये जाते हैं।

कार्बोहाइड्रेट—चीनी, गुड़, आंटा, आलू इत्यादि में पाये जाते हैं।

वसा - मछली के तेल में, मक्खन, दूध इत्यादि में पाये जाते हैं।

लवण—पालक, मूली, फलों में पाये जाते हैं।

जल--पाचन क्रिया और खून के दौरान तथा शरीर के सफाई के लिए आवश्यक है।

विटामिन 'ए'—मक्खन, घी, दूध, वसा, अंडे, हरी पत्ती दार तरकारियों में पाये जाते हैं। इसकी कमी से शक्ति का ह्रास, फेफड़े और आँख की बीमारियाँ हो जाती है।

विटामिन 'बी'–की कमी से बेरी-बेरी की बीमारी हो जाती है। ये विटामिन लाल चावल, हरे शाग, फल, टमाटर मटर, गाजर, चावल हाथ का कूटा हुआ इत्यादि में पाये जाते हैं।

बिटामिन 'सी'-इसका प्रभाव खून और रक्त नलिकाओं पर पड़ता है। खून में खराबी मसूढ़ों से रक्त स्त्राव होता है। विटामिन सी की कमी से। ये विटामिन ताजा फल, हरे शाकों में मिलते हैं जैसे-नींबू, अंगूर, अनार, हरी तरकारियाँ आवला इत्यादि।

विटामिन 'डी'—की कमी से हड्डियाँ मुलायम और टेढ़ी हो जाती है। इसकी कमी से सूखा रोग (Rickets) की बीमारी हो जाती है। विटामिन डी दूध, मक्खन, अंडे, मछली इत्यादि चीजों में पाये जाते हैं।

विटामिन 'ई'– यह विटामिन गेहूँ की भूसी, गेहूँ के अंकूर, तेल, दूध, मक्खन, मटर, तेल, हरी तरकारियों में

पाये जाते हैं। इस विटामिन की कमी से स्त्री तथा पुरुषों के प्रजनन सम्बन्धी अंगों को हानि पहुँचती है।

प्रश्न—५८. पोषण (Nutrition) के लिए खनिज लवण क्यों आवश्यक है, व्याख्या करें। (1967 A)

उत्तर—खनिज लवण (Mineral Salt) भोजन के ये तत्व हर प्रकार के भोजन में पाये जाते हैं। शरीर में वैसे भी लवणों की प्रचूर मात्रा रहती है। इनमें से सोडियम क्लोराइड सोडा फास्फेट मैगनीशियम, पोटाशियम तथा लोहे के सल्फेट या फास्फेट आदि लवण मुख्य हैं। कैलशियम, मैगनीशियम तथा पोटैशियम के लवण शरीर की हड्डियों के लिए आवश्यक हैं। इसी प्रकार लौह के लवण रक्त के लिए उपयोगी है। लवण हमको फलों शाकों इत्यादि वस्तुओं से प्राप्त होते हैं। पत्तों वाले साग जैसे—पालक, मूली, चौलाई आदि सेवन करने से भी लवण हमारे शरीर में उचित मात्रा में पहुँच जाते हैं। इन फलों तथा शाकों का प्रयोग करते रहने से हमारी पाचन क्रिया ठीक रहती है, मलोत्सर्ग भला-भाँति होते रहने के कारण कब्जियत नहीं होने पाती और शरीर हल्का तथा फुर्तीला बना रहता है।

ये खनिज लवण हमारे शरीर में हड्डी तथा दाँत बनाते हैं, उनको मजबूती प्रदान करते हैं तथा रक्त में अत्यधिक अम्लता को रोकते हैं। इसके अतिरिक्त ये मांस पेशियों के कार्य में तथा गुर्दों को ठीक तरह से काम करने में सहायता

भी देते हैं। कैलशियम हमें दूध, पनीर, अन्डे, सुपारी, दाल, फल तथा पत्तीदार तरकारियों से प्राप्त होता है तथा यह रक्त के जमने तथा हृदय को ठीक-ठीक काम करने में सहायता देता है। इसकी कमी से शरीर में सामान्य दुर्बलता, हड्डियों का मृदु हो जाना तथा अस्थियों की अधूरी वृद्धि दाँतों का सड़ना रिकेटस रोग उत्पन्न हो जाते हैं। फास्फोरस भी दूध, अन्डा, पालक, सोयाबीन, गाजर तथा चौलाई से प्राप्त होता है और शरीर में अस्थि. मज्जा, नाड़ी-तन्तुओं तथा मस्तिष्क को बल प्रदान करता है। लोहा हमें यकृत (लिवर), टमाटर, प्याज, चोकर समेत अनाज, पालक, अण्डा. दूध तथा मकोय आदि वस्तुओं से प्राप्त होता है। यह रक्त को धातुओं तथा कोषाओं के पास ऑक्सीजन ले जाने की शक्ति प्रदान करता है। इसकी कमी में रक्त-क्षय, पाचन में दुर्बलता आदि के लक्षण उत्पन्न होते हैं। इसी प्रकार नमक या सोडियम हमें खाने वाले नमक, टमाटर आदि पदार्थों से प्राप्त होता रहता है और यह शरीर के तन्तुओं में पानी की मात्रा को ठीक रखता है और पाचक रसों यथा आमाशयिक रस तथा पित्त रस को बनाता है।

प्रश्न—५९. भोजन पकाने की कौन-कौन सी गीली विधियाँ हैं या भींगा पकाने के कौन-कौन तरीके हैं। उनकी व्याख्या करें।

उत्तर—उबालना (Boiling) भोजन से पोषक पदार्थों का सत निकालने, खाने में सम्पूर्ण पुष्टिकारक पदार्थ और गन्ध रहने देने, तथा केवल पकाने के लिए खाद्य पदार्थ उबाले जाते हैं।

शोरबा बनाने, दलिया पकाने, मांस पकाने और आलुओं तथा चावलों को पकाने के लिए उबालने की क्रिया का सहारा लिया जाता है। इसी प्रकार अन्य पदार्थों को जैसे—दाल, रसदार तरकारियाँ, खीर, सेवई, साबुदाना, वार्ली इत्यादि बनाने में चीजों को आग पर चढ़ाकर पानी में खौलाना और गलाना पड़ता है इसी को भींगा पकाना, गीला पकाना या (Wet method of cooking) कहा जाता है।

प्रश्न—६०. 'अपुष्टिकारक भोजन' (Malnutrition) पर एक निबन्ध लिखें। (1967 A)

उत्तर—भारत में न्यूनपोषण एक चिन्ताजनक रूप में पाया जाता है। यह असन्तुलित कुभोजन जिससे शरीर अपने समुचित स्वास्थ्य और उन्नति के अंश न पाने अथवा ऐसी वाह्य परिस्थिती जिसके कारण जो कुछ खाया जाय वह पूर्ण रूप से शरीरोपयोगी न हो सके, का परिणाम है। इसका दुष्परिणाम प्रौढ़ों की अपेक्षा बच्चों और नवयुवकों पर बहुत बुरा पड़ता है। यही वह आयु है जब बच्चे के शरीर का विकास होता है।

न्यूनपोषण कई कारणों से हो सकता है जैसे आहार निकृष्ट प्रकार का हो पूर्ण मात्रा में न हो। असन्तुलित हो, पाचन अस्वस्थ्य हो, पूर्ण रूप से परिपाक तथा आक्सीकरण न हो, कोई ऐसा रोग हो जो पाचन अथवा आक्सीकरण में बाधक हो। वर्त्तमान स्थिति में भारत में सभी कारण उपस्थित

हैं, परन्तु इनके मुख्य कारण तीन हैं—(१) निर्धनता (२) अज्ञानता और (३) परिवारों तथा समाज की असावधानी।

आजकल महँगी के कारण गांव वालों ही के लिए नहीं वरन् मध्यम वर्ग वालों के लिए भी दूध, दही, घी, फल मांस आदि पोषक तथा शाक फल आदि रक्षक पदार्थ उनके सामर्थ्य के बाहर की चीजें हैं, परन्तु अज्ञानता के कारण में जो भी सुधार किया जा सकता है, पूरी कलरियाँ तथा आवश्यक मात्रा में प्रोटीन, लवण, विटामिन आदि अवयव प्राप्त करने के लिए अनाज, साग-सब्जि ही में संतुलन तथा महँगे पदार्थों के स्थान पर सस्ते समान उपयोगी पदार्थों का सेवन भी नहीं किया जाता। आजकल नवयुवकों में न्यूनपोषण के सहायक कारण हैं कम मात्रा में दूध, शाक, फल और मिठाई तथा चाय काफी का बचपन से ही उपयोग, खाने के बीच-बीच में कुछ न कुछ खाते रहना, जल्दी जल्दी खाना, समय कुसमय खाना, स्कूल में दोपहर में कोई पोषक पदार्थ न खाना, गन्दी बस्तियों और गलियों में रहना, दाँत के रोग सहन शक्ति से अधिक थकान, रक्त विकार, पेट के कीड़े, मलेरिया तथा अन्य संक्रामक रोग। जैसा कि आजकल की मनोवृति है, कम आयु में अधिक पढ़ाई के भार से उक्त त्रुटियों के दुष्परिणाम और गहरे होते जा रहे हैं।

(1967 A)

प्रश्न ६१. टिप्पणी लिखें —

(क) मसाले [Condiments]

उत्तर—मसाले ऐसे पदार्थ हैं जो कि भोजन में उसकी गन्ध और स्वाद को बढ़ाने के लिए भिन्न-भिन्न रूपों में डाले जाते हैं, अतः वे सहायक भोज्य पदार्थ भी कहलाते हैं। मसाले थूक तथा दूसरे रसों को बढ़ाकर पाचन क्रिया को तेज करते हैं। इन मसालों में निम्नलिखित मुख्य हैं और प्रायः किसी न किसी रूप में थोड़ी या बहुत मात्रा में आवश्यकतानुसार भोजन में डाले ही जाते हैं जैसे—काली मिर्च, अदरक, जायफल, जावित्री, लौंग, लाल मिर्च, धनिया, पोदीना, अजवाइन आदि इनमें से कुछ मसाले विटामिन युक्त तथा कुछ उड़नशील तेलों से युक्त होते हैं। यद्यपि इन पदार्थों में भोजन के कुछ भी तत्व नहीं होते, किन्तु फिर भी वे शरीर की विभिन्न पाचन ग्रन्थियों को उत्तेजित करते हैं तथा भोजन को सुस्वादु भी बनाते हैं। मसालों को थोड़ी मात्रा में भोजन में डालना चाहिए। युवा बालकों तथा बालिकाओं को इन पदार्थों की प्रायः आवश्यकता नहीं होती और यथासम्भव उनको इन मसालों का प्रयोग करने से बचना चाहिए। अगर ये मसाले भोजन में अधिक मात्रा में मिला दिये जाएँ तो वे अन्न मार्ग की श्लैस्मिक झिल्ली या म्युकस झिल्ली में रगड़ पैदा करके उसे विकार युक्त कर देते हैं। अतः इनके अधिक प्रयोग से पाचन दुर्बल, क्षुधानाश, मलबद्धता, अतिसार, उदर पीड़ा आदि लक्षण उत्पन्न होने का डर रहता है। अचार चटनी और अधिक मसालों का प्रयोग न करना चाहिए।

❀

प्रश्न—६२. टिप्पणी लिखें - (1967 S)

(क) भेजीटेबुल घी [Vegetable Ghee]

(ख) चीनी ।

उत्तर—भेजीटेबुल घी का प्रचलन आज से २५ वर्ष पहले नहीं था। इसका प्रचार भारतवर्ष में १९४४ से हुआ है, जबसे अधिक गिरानी हो गयी है। भेजीटेबुल घी के बहुत से किस्में आज-कल निकल गये हैं जैसे—खजूर छाप डालडा, हनुमान छाप, रसोई, रथ छाप इत्यादि। कहां तक गिनाय। आय आज बाजारों में बीसो किस्म के डालडा पाये जाते हैं। बाजार में घी की बनी हुई चीजें नहीं मिलती, प्रत्येक दुकान नें भेजीटेबुल घी की बनी हुई पूरी, कचौड़ी, मिठाइयाँ मिलती हैं। लोग भेजीटेबुल की बनी हुई चीजें खाने के आदि हो चुके हैं। शादी-विवाह, उत्सव, भोज सब तरह की दावतों में भेजीटेबुल घी ही काम में लाया जाता है। भेजीटेबुल घी स्वास्थ्य की दृष्टि से लाभदायक नहीं है।

चीनी—ईधन पदार्थों में कार्बोज का नम्बर दूसरा है। चीनी शुद्ध कार्बोज है। आजकल भारत में बहुत ज्यादा चीनी तैयार की जाती है। चीनी की आवश्यकता सबों को है। कुछ वर्ष पहले चीनी विदेशों से मंगायी जाती थी। आजकल हमारे भोजन का चीनी क अग बन गया है। सुबह उठिये चाय चाहिए। वह बिना चीनी के बन ही नहीं सकती है। सुबह, दोपहर चाय शाम चाय हर समय चाय चाहिए। चूँकि

भारत में आजकल दूध की कमी हो गई है। अतः मेहमानों का स्वागत दूध की बजाय चाय से होता है। नाश्ता कीजिए तो चीनी, दूध पीजिए तो चीनी युक्त, मिठाइयाँ खाइए चीनी का। मतलब सारे समय चीनी की आवश्यकता पड़ती है। बच्चे चीनी ही तथा चीनी की बनी चीजों को ज्यादा पसंद करते हैं। गर्मियों में स्कूल कॉलेज से आइए शर्बत की आवश्यकता, दफ्तर से आइए तो लस्सी की आवश्यकता होती है। जिसमें चीनी ही प्रधान नायक होता है। मतलब यह है कि बिना चीनी के हमलोगों का रहना मुश्किल है। शायद ही ऐसा कोई व्यक्ति होगा, जिसने चीनी का स्वाद नहीं जाना है। सभ्य समाज में, शादी व्याह, पर्व त्योहार या दावतों में गुड़ का प्रयोग मिट्टी पलीद का कारण बनती है। और इन सबों में चीनी की बहुत आवश्यक है। यदि चीनी न रहे तो दुनियाँ में काम ही न चले। बहुत सी दवाइयाँ भी चीनी मिला कर बनाई जाती है। मरीजों को पथ्य में यानी बार्ली, साबुदाना दूध में चीनी डालकर खिलाया जाता है।

प्रश्न—६३. दूध की बनावट के विषय पर लिखिए। इसे पूर्ण भोजन क्यों कहते हैं। (1968 A.)

उत्तर—दूध सभी खाद्य तत्त्वों से युक्त संतुलित आदर्श आहार है। डेढ़ वर्ष के बच्चों का तो यह एकमात्रा आहार है। दूध, प्रोटीन, वसा, लवणादि और शर्करा का जल में एक प्रकार का घोल है जो माताओं और मातृजाति के पशुओं के स्तन से दोहन विधि द्वारा स्रावित होता है।

विभिन्न दुग्धों की रचना में उसके तत्वों की मात्रा में अन्तर होता है। मुख्य-मुख्य दुग्धों की रचना की तालिका निम्नलिखित है :—

दुग्ध	प्रोटीन	वसा	शर्करा	लवण	जलीयअंश
स्त्रीदुग्ध	२·६७%	२·६%	५·८७%	०·१६%	८७%
गोदुग्ध	४·%	३·७%	४·८%	०७%	८६%
भैंस का दूध	४·४%	६%	४·८%	०·८%	८१%
बकरी का दूध	३·६२%	४·२%	४%	०·५६%	६७·५४%

प्रोटीन दूध के प्रोटीन में फास्फोरस और अलबुमिन के प्रोटीन है। कैलशियम का भी कुछ अंश है।

दूध सर्वश्रेष्ठ भोजन है क्योंकि यह एक पूर्ण खाद्य पदार्थ है। इसका कारण है कि इसमें भोजन के सभी आवश्यक अंश प्रोटीन, वसा, कार्बोज, खनिज लवण तथा विटामिन पाये जाते हैं। वास्तव में शरीर को पुष्ट बनाने वाली प्रत्येक वस्तु इसमें मिलती है। पैदा होने से लेकर ६ या ७ मास तक बच्चा माँ के दूध पर ही व्यतीत करता है। माँ के दूध में गाय की अपेक्षा अधिक शर्करा होती है। परन्तु प्रोटीन तथा अन्य खनिज लवण कुछ कम मात्रा में पाये जाते हैं। इसी कारण से शिशुओं के लिए माँ का दूध और कुछ बड़े बालको, बालिकाओं तथा युवा पुरुषों के लिए गाय का दूध सर्वोत्तम खाद्य पदार्थ है। मलाई निकाला हुआ दूध या मखनिया दूध वह

दूध है जिसमें से मलाई मशीनों की सहायता से निकाल ली गई हो। इस प्रकार का दूध भी बच्चों की वृद्धि तथा स्वास्थ्य के लिए उत्तम है। इसमें केवल वसा छोड़कर प्रोटीन, विटामिन, कार्बोज खनिज लवण तथा जल आदि सभी भोजन के प्रमुख अंग रहते हैं। दूध आसानी से मनुष्य के शरीर की सारी आवश्यकताओं की पूर्ति बहुत कुछ अंशों में कर सकता है। यह खाद्य पदार्थ बच्चों तथा शाकाहारी मनुष्यों के लिए तो अत्यन्त महत्व का है। गाय के दूध में माँ के दूध की अपेक्षा प्रोटीन तथा लवण आदि पदार्थ अधिक मात्रा मे रहते हैं। इसलिए बच्चों की वृद्धि के लिए गाय का दूध गुणकारी है।

वैसे तो ताजा कच्चा दूध सब प्रकार के दूधों से अधिक लाभदायक होता है, किन्तु हमारे देश में अधिकांश गाएँ तथा भैंसे बीमार रहती है। यह निश्चित है कि इस प्रकार की रुग्ण गायों और भैंसों का दध भी बीमारी के कीटाणुओं युक्त तथा हानिकारक होगा, अतः इस प्रकार की अवस्था में कच्चा दूध पीने से लाभ के बजाए हानि की अधिक सम्भावना रहती है। हमें दूध के इस दोष मिटाने के लिए उसे उबाल लेना चाहिए। दूध एक उबाल का ही प्रयोग में लाना चाहिए। अधिकांश विटामिन्स भी नष्ट हो जाता है ज्यादा दूध खौलाने से। दूध को कभी-कभी वास्पीभूत करके उसका महीन सूखा चूर्ण बना लिया जाता है और वह 'शुस्क दुग्ध चूर्ण' के रूप में बेचा जाता है। इस चूर्ण में दुग्ध के समस्त ठोस पदार्थ होते हैं। इसको गरम पानी में मलाकर पुनः दूध की तरह काम में

लाया जा सकता है। इस प्रकार यह एक उत्तम खाद्य पदार्थ भी है।

प्रश्न—६४. चूना, लोहा और फास्फोरस के स्त्रोत और उपयोगिता के विषय में लिखें। (1968 A)

उत्तर—चूना (कैलशियम)--चूने से दाँत और हड्डियाँ बनती है। संक्रामक रोग से बचाव होती है। बच्चों के भोजन में चूना अधिक होना चाहिए। यह दूध द्विदल अनाज, फल, हरे, शाक, अण्डा, अंडे के पीले भाग में चूना पाया जाता है।

लोहा :—यह दूसरा लवण है। रक्त में लाल रंग उसमें रक्त कण के उपस्थित के कारण है जो लोहा से बनता है। रक्त के इन कण का कार्य है:—सांस द्वारा अन्दर गई हुई वायु से आक्सीजन खींचकर शरीर के सेलों में पहुंचना और उनके विकारों के जलने में सहायक बनकर उनके स्वास्थ्य और वृद्धि म सहायता देना। आंतों में पच कर रक्त में गये हुए खाद्य पदर्थों के जलने में सहायता देना। रक्त के यह लाल कण लोहे से बनते हैं। शरीर में रक्त की कमी से साधारणत: आहार में लोहे की कमी समझना चाहिए। नीचे लिखे हुए चीजों में लोहा पाया जाता है:-हरी पत्तियों वाले साग, पालक का साग, करम कल्ला, मेथी का साग, बथुआ का साग, तरबुज, खीरा, मटर; टमाटर, मूली, प्याज, गेहूँ, दाल, गाजर, मछली, अन्डा, कलेजी, कच्चा मांस।

फास्फोरस :—इससे हड्डियाँ बनती हैं और मजबूत होती यह चूने का साथी है। इसकी कमी से शरीर बढ़ना बन्द हो जाता है। यह पालक, गाजर, लौकी, मूली, खीरा, फूल, गोभी, जौ, गेहूँ, दाल, मांस, मछली और अन्डे में पाये जाते हैं।

प्रश्न—६५. एनोमिया पर टिप्पणी लिखिए :— (1968 A.)

उत्तर—एनोमिया से पीड़ित व्यक्ति का शरीर पीला मालूम पड़ता है ऐसे व्यक्ति के शरीर में खून की बहुत कमी हो जाती है। यह बीमारी असंतुलित भोजन खाने से होती है। स्वास्थ्य के लिए संतुलित या मिश्रित भोजन उत्तम है। एनेमिया के मरीज को विटामिन (बी) B Conplex अधिक खिलाना चाहिए। भोजन में वैसी चीजें खिलाना चाहिए जिसमें दूध, दही, घी, फल की मात्रा अधिक हो।

प्रश्न—६६. भोजन को किस तरह पकायेंगे जिससे जल में घुलनशील विटामियों की क्षति नहीं हो वर्णन करें। यदि भोजन में उनका नाश हो जाए तो उससे शरीर को क्या हानि हो सकती है। (1958 A)

उत्तर :—जल में घुलनशील विटामिन 'B' और 'C' हैं।

बहुत देर तक खुले बर्त्तन में पकाने से यह विटामिन मर जाता है। परन्तु प्रतिदिन के रोटी, दाल आदि के पकाने में नहीं मरता। इसलिए यथा सम्भव भोजन बन्द वर्त्तन और

मामूली तेज आँच से पकाना चाहिए। इसी कारण कड़ाही के पकाये पदार्थ कम लाभदायक होते हैं।

विटामिन बी शून्य भोजन का अवगुण कम परिश्रम करने वालों में अधिक वेग पकड़ता है। इसीलिए परिश्रमियों को विटामिन बी की कमी कम हानिकारक सिद्ध होती है। अनाजों में विटामिन बी वर्ग उसके बीज में अर्थात् जहाँ पर अंकुर निकलता है, होता है। चोकर के नीचे के भाग में भी कुछ होता है। सम्पूर्ण अनाज का आंटा खाने वालों को इस विटामिन का अभाव नहीं होता।

उसने चावल में यह उसको बनाते समय चावल के अन्दर प्रवेश कर जाता है इसलिए समस्त भाग में पाया जाता है। अरवा चावल में ऊपर के भाग में रहता है। मिल के कुटे चावल में इसकी कमी है।

बी वर्ग के अन्य विटामिन अधिक महत्व के नहीं होते। ये उन पदार्थों में पाये जाते हैं जिनमें विटामिन बी, बी २ है। संक्षेप में इनकी उपयोगिता निम्नलिखित रूप में पायी गई है।

पायरिक्सीन– यह आहार के आक्सीकरण में उपयोगी होता है।

पेन्टोथेनिक एसिड इसके अभाव में बाल गिरने लगते हैं; खाल के रोग हो जाते हैं; और स्नायु विकार के रोग हो जाते हैं।

वियोटीन—इसके अभाव में चर्म रोग, हृदय रोग, मन्दाग्नि, स्वभाव में निरुत्साह और कभी-कभी भ्रम का रोग हो जाता है।

कोलिन और इनोसिरोल-वसा के आक्सीकरण में योग देते हैं।

प्रश्न-६७. एक 'वढ़ते हुए बच्चे' को जो भोजन देंगे उसका सविस्तार वर्णन करें। (1969 A)

उत्तर-छोटे बच्चों का आहार—माता का दूध बच्चे के लिए सर्वोत्तम खाद्य है परन्तु तभी जब माता स्वस्थ्य हो, उसका भोजन उत्तम प्रकार का हो और वह संयम के साथ दूध पिलावे। लेकिन आजकल दरिद्रता, अज्ञानता और फैशनोपासना के कारण यह असम्भव सा हो रहा है। इसलिए माता के दूध की त्रुटियों की पूर्त्ति के लिए वाह्य पदार्थों की सहायता लेने की आवश्यकता पड़ती है।

दूध पिलाने का समय बिलकुल बंधा होना चाहिए। अनियमित समय पर दूध पीने वाले बच्चे, पेट के रोगी हो जाते हैं और जल्दी-जल्दी दूध पिलाने से और भी अधिक।

साधारणतया स्वस्थ बच्चों को आरम्भ हीं से ३-३ घंटे में दूध पिलाना चाहिए इससे जल्दी नहीं। वहुत स्वस्थ बच्चे के लिए ४-४ घंटे तक में हर्ज नहीं है।

विटामिन ए, बी और सी के लिए हरे शाक, संतरा और टमाटर का रस दिया जाना उचित होगा। अक्सर, अंगूर का

रस दिया जाता है। यह रेचक और रक्तवर्द्धक होता है। परन्तु विटामिनों की दृष्टि से शाक, टमाटर और सन्तरे से डेढ़ा पड़ता है। फलों में सबसे अधिक गुणकारी टमाटर और सन्तरा है और शाकों में चौलाई और पालक।

बच्चों को भी जल की वैसी ही आवश्यकता पड़ती है जैसे सयानों को. विशेषकर गर्मी, ज्वर, अनपच, कब्ज और दांत निकलते समय। इसके अतिरिक्त इससे बच्चे का मुँह साफ हो जाया करता है और मुखरोग होने की कम संभावना रहती है। इसलिए पैदा होने के दिन से ही उन्हें पकाया हुआ ठण्डा जल कम-से-कम दिन में दो बार १० बजे और ४ बजे तीसरे पहर या इससे भी अधिक बार दूध पिलाने के समयों के बीच में देना चाहिए।

माता के दूध से वंचित बच्चों को गाय या बकरी का दूध दिया जाना चाहिए। गाय का दूध माता के दूध से भारी होता है और बकरी का गाय से भी अधिक भारी।

आजकल स्वच्छ दूध नहीं मिलता इसलिए डब्बों का दूध पिलाया जाता है। ऐसी दशा में भी फलों का रस उतना ही आवश्यक है। यथा सम्भव दूध ताजा ही दिया जाना चाहिए, परन्तु स्वच्छ हो।

विलायती दूध तीन प्रकार के होते हैं :—

(१) सुखाये हुए दूध जैसे—ग्लैक्सो (Glaxo) और काऊ ऐन्ड गोट। इन दूधों में वसा और विटामिन सी की कमी

रहती है। दुर्बल पाचन वालों के लिए यह ठीक पड़ते हैं। परन्तु स्वस्थ के लिए इनमें क्रीम मिलाने की आवश्यकता पड़ती है। सन्तरे का रस इनके साथ अवश्य दिया जाना चाहिए।

सुखाये दूध से कैलसियम कम हो जाता है। उसके लिए कैलसियम लैक्टेड अलग से दिया जाना चाहिए। सातवें मास से बच्चे को अनाज भी दिया जाना चाहिए।

अनाज में कुछ गली चीजें जैसे – गला भात, गली दाल, गेहूँ तथा जौ की दलिया और कुछ कड़ी चीजें जैसे – रोटी का छिलका, विस्कुट आदि होना चाहिए। अनाज जितना पचे उतना ही बढ़ाना चाहिए।

(१) शर्करा पदार्थ कदापि न बढ़ने पावे नहीं तो दांत और स्वास्थ्य दोनों बिगड़ जाते हैं।

(२) बंधे समयों पर भोजन मिले।

(३) रुचि किसी हद तक स्वाभाविक हुआ करती है, परन्तु बहुत कुछ यह बनाई जाती है और बचपन ही वह अवस्था जब यह बनती है। बचपन में नमकीन खाने वाले सयानी तक नमकीन ही खाते हैं। और मीठा खाने वाले मीठा।

(४ बचपन में सफाई से और चबाकर खाने की आदत डालना चाहिए।

इसलिए १२ वर्ष से १८ वर्ष की आयु तक उनके आहार में रक्षक पदार्थ तथा कलरियों के मूल्य में कमी न होनी चाहिए। देखा जाता है कि आजकल किशोरावस्था में बालक-बालिकायें प्रकृति के अनुसार लम्बे हो जाते हैं परन्तु दुर्बल और नाजुक हो जाते हैं। कारण यह है कि वृद्धि के लिए पोषक अंश आहार से न पाने पर शरीर के रक्षित कोष (Reserve) से उन्हें लेते हैं। जैसे—नई हड्डियों के लिए वह कैलसियम पुरानी हड्डियों से ले लेते हैं। परिणामस्वरुप उनकी हड्डियाँ कोमल और पेशियाँ ढीली हो जाती है और न्यून पोषण के कारण अनेक रोग उन्हें आ घेरते हैं।

प्रश्न—६८. दूध की उपयोगिता लिखें और बतलावें कि उससे बनी हुई कौन-कौन सी चीजें किसी रोगी के लिए व्यवहार की जाती है ? (1969 A)

उत्तर—दूध एक सर्वश्रेष्ठ भोजन है बच्चे, जवान और बूढ़ों के लिए। क्योंकि इसमें प्रोटीन, वसा, कार्बोज, लवण तथा विटामिन पाये जाते हैं। दूध आसानी से मनुष्य के शरीर की सारी आवश्यकताओं की पूर्ति बहुत कुछ अंशों में कर सकता है।

१. टायफायड के मरीज के लिए दूध को फाड़कर छेना बनाया जाता है और दिन में कई बार उसे पिलाया जाता है।

२. मामूली बुखार के मरीज को दूध और साबूदाना या बार्ली और साबूदाना मिलाकर खिलाया जाता है।

३. इन्फ्लुयन्जा के मरीज को भी केवल दूध या साबूदाना मिलाकर दे सकते हैं।

४. छोटे बच्चों का तो ये प्रमुख आहार है। चाहे वो बीमार हो या स्वस्थ्य क्योंकि बच्चे बिना दूध के नहीं रह सकते हैं।

५. एनेमिया के मरीज को काफी दूध पिलाया जा सकता है जिससे उसकी तन्दुरुस्ती अच्छी हो जाती है।

६. माताएँ जो बच्चों को दूध पिलाती हैं उन्हें भी बच्चा के जन्म के बाद से काफी दूध पिलाया जाता है ताकि उनको ताकत मिले।

प्रश्न—६६. चार रोगों का वर्णन करें जो भोजन के किसी अवयव की कमी से होते हैं। प्रत्येक किस चीज की कमी से होता है, बतलाएँ। (1969 A)

उत्तर :—(१) शरीर की कमजोरी, रतौन्धी, जुकाम, खांसी विटामिन 'ए' की कमी से होती है।

विटामिन 'ए'—यह एक शरीर भार-वर्द्धक विटामिन है। यह वसा, तेल आदि में विलेय है यह साधारणतः मछली के तेल, अन्डे की जर्दी, मांस, मक्खन, छेना, हरी साग-सब्जियों आदि से प्राप्त होता है। गुण :—यह शारीरिक वृद्धि में सहयोग देता है। अतः बच्चों और गर्भवती स्त्रियों के लिए यह अत्यन्त आवश्यक है। भोजन में इसकी कमी

रहने से रतौन्धी रोग हो जाता है—आक्रान्त व्यक्ति रात में भली भांति देख नहीं पाते। बच्चों के भोजन में इनकी कमी रहने से नाक, आँख, कंठ और चमड़े के संक्रामक रोग होने का अधिक भय रहता है। यह शरीर को नीरोग रखता है। यह पाचन शक्ति को ठीक रखता है। इसकी उपस्थिति में सांस सम्बन्धी रोग होने का भय नहीं रहता है। साथ ही, यह अन्य विटामिनों को शरीर के लिए उपयोगी बनाने में सहायता देता है।

(२) शरीर के चर्म रोग, प्लेगरा, बाल गिरने की बीमारी, स्कर्वी नामक रोग विटामिन 'बी' की कमी से होती है।

विटामिन बी-का वास्तव में एक समूह है, जो (Vitamin B Comples) कहलाता है, जिसमें पांच छः किसिम की विटामिन 'बी' पाई जाती है। यह ऊष्मा को सहन कर लेती है। इस कारण उबालने से नष्ट नहीं होती. पर जल में घुल जाती है। इसलिए जिस जल में साग को उबाला जाय उसे प्रयोग में लाना चाहिए। यह हरे साग, फल, टमाटर, सेव, मटर गाजर, मूली, दूध, मट्ठा, शहद, चावल (बिना पालिश किया हुआ।) अनाजों की भूसी, सूखे मेवे इत्यादि में पाई जाती है। इसी की कमी से बेरी-बेरी रोग हो जाता है। इस लिए भूसी और छिलका उतारा हुआ अन्न नहीं खाना चाहिए जैसे गेहूँ। मन्दाग्नि, कब्ज, त्वचा पर धब्बे, चिड़चिड़ा पन, नींद की कमी, उदरशूल इत्यादि उपद्रव इसी विटामिन

की कमी के कारण होते हैं। Peripheralneuritis नामक रोग भी इसी की कमी से उत्पन्न होता है।

(३) विटामिन सी—स्कर्वी नामक रोग का हो जाना, मसूढे से खून का बहना, त्वचा पर लाल चकत्ते पड़ जाना विटामिन 'सी' की कमी है। यह विटामिन जल में घुलती है। वायु के सम्पर्क में इसका जल्दी नाश हो जाता है। विटामिन ए और बी की अपेक्षा यह उष्मा को भी कम सहन करती है। ठंड में इसका नाश नहीं होता। फलों को यदि बर्फ में रक्खा जाय तो इस विटामिन का ह्रास नहीं होता। यह विटामिन ताजे फल, हरी तरकारियों, आलू, गाजर, प्याज इत्यादि में अधिक मात्रा में पायी जाती है तथा सब अन्नों के दानों में जब अंकुर फूट आते हैं, यह उपस्थित रहती है। अंकुरित अनाज स्वास्थ्य के लिए बहुत हितकर होता है।

(४) विटामिन 'डी'—रिकेट्स, हड्डी का कमजोर होना, बच्चों की हड्डियाँ टेढ़ी हो जाना लक्षण है विटामिन डी की कमी का। इस विटामिन की सहायता से शरीर में कैलसियम और फास्फरस का आत्मीकरण होता है। इसकी कमी के कारण बच्चों की हड्डियाँ मुलायम होकर टेढ़ी हो जाती है और इन्हें सूखे का रोग (Rickets) घेर लेता है। यह विटामिन उन पदार्थों में उपस्थित रहती हैं, जिसमें विटामिन ए पाई जाती है अर्थात् यह दूध, मक्खन, अण्डे, मछली के तेल आदि में मिलती है। यह विटामिन ए की अपेक्षा

अधिक स्थायी है और उष्मा सहन कर लेती है। यह तेल में घुल जाती है।

प्रश्न—७०. संक्षेप और स्पष्ट शब्दों में एक निबन्ध लिखें :—

शिशु के आहार के रूप में माँ के दूध का महत्व।

(1960 A.)

उत्तर माता का दूध बच्चों के लिए सबसे उत्तम पदार्थ है। परन्तु तभी जब माता स्वस्थ हो। माता का भोजन उत्तम प्रकार का हो और संयम के साथ दूध पिलावे। लेकिन आजकल गरीबी, दरिद्रता और फैशनोपासना के कारण यह असम्भव है। माता के भोजन उत्तम होने चाहिए क्योंकि बच्चों को बहुत से रोग बहुधा माता के दूध के खराबी के कारण हो जाता है। शिशु को दूध जो माँ से प्राप्त होता है उस माँ को काफी मात्रा में विटामिन 'बी' देना चाहिए। इसके अलावे माँ को हर हालत में परहेज रखना चाहिए। दूध पिलाने का समय बिलकुल बँधा रहना चाहिए। तभी बच्चे स्वस्थ रह सकते हैं। अनियमित समय पर दूध पीने वाले बच्चे की तन्दुरुस्ती खराब हो जाती है। माता के ही दूध के कारण बच्चे स्वस्थ रह सकते हैं। साधारणतः आरम्भ से बच्चे को २ २ घंटे पर दूध पिलाना चाहिए। बाद में बच्चे जब ५-६ महीने के हो जाय तो ३-३ घंटे पर दूध पिलाना चाहिए। माता के दूध के अभाव में गाय का दूध पानी मिलाकर औंटकर और चीनी डालकर २-२ या ३-३ घंटे पर पिलाना चाहिए। चूँकि गाय का दूध

भी आजकल शुद्ध नहीं मिलता इसलिए छोटे बच्चों के लिए ग्लैस्को, लैक्टोजन को काम में लाना चाहिए।

प्रश्न—७१ संक्षेप में एक निबन्ध लिखें —

टीन के डिब्बे में बन्द किये गये खाद्य पदार्थों के उपयोग पर संक्षेप में एक निबन्ध लिखें।

उत्तर - १६४७ ई० के पूर्व जिस समय अंग्रेजों का राज्य था, विलायत से टीन के डिब्बों में तरह-तरह के खाद्य पदार्थ बन्द कर भारत में आते थे जैसे सूअर का मांस मछली, जाम, जेली एवं ड्राई मिल्क इत्यादि। किन्तु जब से अंग्रेज लोग भारत को छोड़कर चले गये तो टीन के डिब्बों में बन्द माल विदेशों से आना कम हो गया। इन दिनों अमेरिका से ज्यादातर बड़े बड़े डिब्बों और पीपों में Dry milk बराबर आता रहता है। हमारे भारतवर्ष को इस दूध से यहाँ की जनता को बहुत लाभ है। इससे बच्चों के स्वास्थ्य पर बहुत अच्छा प्रभाव पड़ता है। इस तरह के दूध सारे भारतवर्ष में मुफ्त बाँटे जाते हैं। इसके अलावे हमारे भारतवर्ष में Dry milk अब बहुत तैयार होने लगा है। टीन के डिब्बों में बन्द कर यह सारे भारतवर्ष में भेजा जाता है। मुरब्बे इत्यादि भी भारतवर्ष में तैयार कर इसके भिन्न-भिन्न भागों में भेजे जाते हैं।

शुष्क दूध (Dry milk).—के पोषक तत्व अधिकांश-नष्ट नहीं होते। Dry milk बहुत दिनों तक नहीं बिगड़ता।

आजकल बच्चों को लैक्टोजन, ग्लैक्सो, हार्लिक्स, नेशल्स मौलटेड मिल्क पिलाया जाता है। चूँकि बाजार में दूध अच्छे नहीं मिलते। हमारे देश में चाय के शौक़ीन लोग मौलटेड मिल्क या Dry milk चाय में मिलाकर बड़े चाव से पीते हैं। दक्षिण भारत से ओम्लटीन कोको सारे भारत में बन्द डिब्बों में भेजे जाते हैं। इन चीजों को हमारे देशवासी तन्दुरुस्ती के लिए काम में लाते हैं। यदि टीन के डिब्बे खोलने पर चीज बढ़िया और अच्छा मिले तो उसी को काम में लाना चाहिए। जिस डिब्बे में सूखा दूध बन्द हो उसको खोल देने पर दूध को जल्द समाप्त कर देना चाहिए। जाड़े और गर्मी में १५ दिनों तक और बरसात में ७ दिनों तक डिब्बा चल सकता है।

(1960 S)

प्रश्न—७२. निबन्ध लिखें—

(अ) टमाटर (आ) अंकुरित बीज।

उत्तर- पहले यह इंगलैंड और अमेरिका में बाग की खूबसूरती के लिए बोया जाता था। यह खेत में पैदा होता और सस्ता बिकता है। इसलिए तो यह तरकारी है। परन्तु यह संतरा सेव और अंगूर बल्कि इससे बढ़कर गुण रखता है। इसीलिए यह फल है। इसमें वह समस्त अम्ल होते हैं जो सेव, सन्तरा और अंगूर तीनों में मिलकर होते हैं। इसमें फास्फोरस, चूना, लोहा, गन्धक आदि लवण होते हैं जो सिवा पालक आदि शाकों के किसी भी एक फल में एक साथ नहीं पाये जाते।

इसमें विटामिन ए और बी सभी फलों से ज्यादा होते हैं और विटामिन सी संतरे से कम। वास्तव में पका हुआ टमाटर गरीबों का सेव, संतरा अंगूर, अनार सब हैं। छोटे बच्चों को दूध पिलाने के तीस मिनट पहले टमाटर का रस पिलाना चाहिए नहीं तो उनके पेट में पीये हुए दूध के थक्के जम जाते हैं।

अंकुरित बीज :—इसमें विटामिन 'सी' होता है। अतः स्कर्वी के मरीजों के लिए आवश्यक होता है। सबसे पहले चने को १२ घंटे तक जल में भिगोया जाता है। इसके बाद पानी से निकालकर एक साफ कपड़े में बांधकर एक खूँटी से लटका दिया जाता है। कुछ ही घंटों में उसमें अंकुर निकल आते हैं। तब उसमें नमक या मिसरी मिलाकर खाया जाता है। अंकुरित बीज वाले अन्न प्रत्येक व्यक्तियों को खाना चाहिए। इससे कब्ज दूर होती है और शरीर में ताकत होती है।

प्रश्न ७३ पशु तथा वनस्पति से पैदा हुई चर्बी में क्या अन्तर है विस्तार पूर्वक लिखें ?

उत्तर—पशु वसा—(१) घी, चर्बी, मछली का तेल है। (२) वनस्पति वसा—तेल, कोकोजेम डालडा है। ईंधन पदार्थों में वसा का विशेष स्थान है। क्योंकि इसमें सबसे अधिक ताप होता है। पशु वसा—यह शरीर के भीतर इकट्ठा होकर कोमल अंगों जैसे- आंत गुर्दे आदि को सर्दी, गर्मी से बचाता है। क्योंकि

इन सब अंगों के ऊपर इसके तह जम जाने के कारण सर्दी, गर्मी का प्रभाव पहले इसी पर पड़ता है।

पशु वसा में विटामिन 'ए' पर्याप्त मात्रा में होता है। जैसे—घी, मछली के तेल में विटामिन डी भी होता है जो भोजन से चूना और फास्फोरस खींचकर और उनका अनुपात ठीक करके हड्डी और दांत बनाने में सहायक होता है। अगर वसा की कमी हुई तो आहार का चूना अनपचा ही निकल जाता है। इसी के कारण आंतों में किसी भी तेज पदार्थों से हानि नहीं पहुँचती। यदि भोजन में काफी वसा न हो तो अधिक मीठा श्वेतसार पदार्थ पेट में अम्ल बनकर आंतों में खराश आदि रोग पैदा कर देते हैं। इसी कारण तेज चीजों का प्रभाव घी खा लेने से हल्का हो जाता है।

पशु वसा की कमी के कारण बहुधा हाथों-पैरों में पानी उतर आता है। और उसमें सूजन आ जाता है। बच्चे इसी कमी के कारण बहुधा दुर्बल और औसत तौल से कम होते हैं। साधारण आवश्यकता से अधिक चिकनई चर्वी के रूप में शरीर में इकट्ठी हो जाती है। परन्तु यदि अधिक हुई तो अन-पची निकल जाती है और अपने साथ सोडा, पोटाश और कैलसियम भी ले जाती है। इससे पाचन विगड़ जाता है। पशु वसा विटामिनों की उपस्थिति के कारण वनस्पति वसा अर्थात् तेल से श्रेष्ठ होता है।

वनस्पति वसा तेल में विटामिन करीब-करीब बिलकुल नहीं होती इसलिए गर्मी पहुँचाने के लिए तेल काफी है फिर भी,

विटामिनों के ख्याल से यह लाभदायक नहीं है। आहार में कम से कम कुछ तेल जो वनस्पति वसा है, होना चाहिए। किन्तु वह बिलकुल शुद्ध होना चाहिए। आजकल जो तेल बाजार में मिलते हैं उसमें तरह-तरह की मिलावट है, जैसे— सरसो में, राई में, खरबूजा, करैलो के बीज आदि तेल के व्यापार में अत्यधिक मिला दिया करते है। जिससे शरीर में सूजन आ जाता है और स्वास्थ्य खराब हो जाता है। बाजार में डालडा या कोकोजेम बहुत प्रकार के मिलते हैं जो हर तरह से स्वास्थ्य के लिए बहुत हानिकारक है।

प्रश्न–७४. प्रतिदिन के शारीरिक शक्ति की आवश्यकतायें पर कसरत, भोजन, जलवायु तथा कपड़े का क्या प्रभाव पड़ता है।

(1958 A)

उत्तर—कसरत :—स्वास्थ्य को उत्तम दशा में रखने के लिए व्यायाम बहुत उत्तम है। व्यायाम या कसरत करने से शरीर की सब पेशियाँ कायम रहती है। उसमें संकोचन और प्रसारण होता है। इससे उनको क्रिया करने की आदत हो जाती है। उनमें रक्त का संचारण अधिक होता है और शरीर बलवान हो जाता है। उसमें अधिक परिश्रम करने की शक्ति आ जाती है। व्यायाम से शरीर के सभी अंगों को फायदा पहुँचता है।

भोजन :—भोजन वह वस्तु है जो शरीर की क्षति को पूर्ण करे और ताक़त या शक्ति उत्पन्न करे। भोजन का उत्तम प्रकार का होना हर मनुष्य के लिए जरूरी है। इसमें प्रोटीन,

कार्बोहाइड्रेट, वसा, विटामिन, खनिज, लवण और जल-हीना अत्यन्त आवश्यक है। मनुष्य को काम के अनुसार भोजन मिलना चाहिए; अच्छे भोजन पर ही शरीर स्वस्थ्य रह सकता है।

जलवायु —मनुष्य का स्वास्थ्य जलवायु पर ही निर्भर करता है। अतः हर मनुष्य को शुद्ध जल और शुद्ध हवा मिलना जरूरी है। आजकल शहर की गन्दगी और घनी आबादी सील और कारखाने की अधिकता के कारण शुद्ध जलवायु का सर्वदा अभाव रहता है। पूर्व समय में लोग वहीं पर जाकर बसते थे। जहाँ की जलवायु स्वास्थ्य प्रद होती थी। अशुद्ध जल और गन्दी हवा से बहुत से रोग ऐसे हो जाते हैं। जिससे थोड़ी देर में मृत्यु हो सकती है।

कपड़ा :—कपड़े पहनने के दो प्रयोजन हैं। (१) शरीर को सर्दी, गर्मी से बचाना और (२) शरीर के सौन्दर्य को बढ़ाना। वस्त्र ऐसा होना चाहिए जो कि दोनों आवश्यकताओं की पूर्ति करें। गर्मी के वस्त्र इस प्रकार के होने चाहिए। जिसके द्वारा ताप का पूर्ण विसर्जनहो जाये अर्थात ताप निकलता रहे और स्वयं ताप का शोषण न करें। जिनके द्वारा पसीना भी बराबर सूखता रहे। जाड़े में ऐसे पोशाक की आवश्यकता है जिनके द्वारा शरीर के ताप का विसर्जन न होने पावे और बाहर से ठंड भी उनके द्वारा शरीर तक न पहुँच सके। इसी कारण लोग जाड़े में ऊनी कपड़ा पहनते हैं।

प्रश्न—७५. एक पन्द्रह दिन के शिशु की मां मर गई है उसके खिलाने पिलाने का क्या प्रबन्ध करोगी ? (1958 A)

उत्तर:- ऐसे बच्चों को जिसकी माँ मर गई है और जिसकी उम्र केवल १५ दिनों की है उसे गाय और बकरी का दूध पिलाना लाभदायक होगा। इनके अभाव में सुखाए दूध जैसे ग्लैक्सो, नेशल्स मौलटेड मिल्क, ऐलेन ब्रीज फुड या हॉर्लिक्स देना चाहिए। गाय का दूध अगर मिल सके तो ताजा होना चाहिए। गाय के दूध में जितना गाय का दूध हो उतना ही जल मिलाकर इतना औंटना चाहिए ताकि उसके कीड़े मर जाये। उसमें थोड़ी चीनी डालकर दो-दो घंटे बाद १५ दिन के शिशु को पिलाना चाहिए। रात को जब बच्चा सो जाय तब उसे जगाकर दूध न पिलाना चाहिए। जब-जब दूध पिलाना हो तो दूध को थोड़ा गर्म कर लेना चाहिए। एकबार में बच्चे को तीन औंस दूध पिलाना चाहिए। दूध पिलाने की शीशी १५ दिन के बच्चे को शीशी से दूध पिलाना चाहिए। बच्चों को दूध पिलाने की शीशी खास तरह की होती है। दूध पिलाने की शीशी का मुँह दोनों तरफ होना चाहिए। एक मुँह पर बल्ब और एक पर निपुल लगा रहता है। निपुल में एक छोटा सा छेद रहता है जिससे दूध निकलकर बच्चे के मुँह में जाता है। शीशी की सफाई— दिन में चार बार कम से कम करना चाहिए। इसमें सोडा और गर्म पानी डालकर साफ करना चाहिए। यदि गाय या बकरी का दूध न मिले तो

विलायती दूध बनाकर गर्म कर बच्चे को पिलाना चाहिए और उसमें थोड़ी चीनी डाल कर देनी चाहिए।

प्रश्न—७६. पनीर (Cheese) अथवा खोआ के पोषक तत्वों की विवेचना कीजिए। (1959 A)

उत्तर—पनीर—इसका प्रयोग यूरोग में बहुत अधिक होता है। यह दूध से तैयार की जाती है। इसमें केसिन, वसा और लवण होते हैं। किन्तु एक विशेष प्रकार के गन्ध के कारण केवल वही लोग इसका प्रयोग करते हैं जो कि अभयस्त हैं इसमें पर्याप्त पोषक शक्ति होता है। हमारे भारतवर्ष में इसका प्रयोग नहीं के बराबर है।

खोआ—दूध को कड़ाही में रखकर खूब औंटते हैं। गाढ़ा होते-होते खूब औंटते-औंटते हलुआ की तरह हो जाता है जिसे खोआ कहते हैं। यह पुष्टिकारक, मस्तिष्क एवं आंखों को बल देने वाला है। यह स्वादिष्ट और वीर्यवर्द्धक होता है। किन्तु यह देर में पचता है। दुर्बल मेदे वालें को अधिक प्रयोग नहीं करना चाहिए। खोआ में चीनी मिलाकर पेड़ा बनाया जाता है। पेड़ा खाने में बड़ा मजेदार होता है। मथुरा, गया और बैद्यनाथ धाम का पेड़ा अधिक प्रसिद्ध है। यदि इन पेड़ों को एक बार चख लिया जाय तो बिना खाये नीन्द नहीं आयेगी।

प्रश्न—७७. लवण से शरीर को क्या लाभ है ? ये कितने प्रकार के होते हैं। मुख्य लवण का नाम बताइये। ये किन किन खाद्य पदार्थों में पाये जाते हैं। (1958 A)

उत्तर :—यों तो हमारे शरीर में कुल ३२ लवण उत्पादक मौलिक हैं। परन्तु उनमें से कुछ ही मुख्य हैं।

१ क्षार उत्पादक :-कैलशियम, पोटाशियम, सोडियम, लोहा, ताँवा, मैंगनीसियम।

२ अम्लोत्पादक:-फास्फोरस, गन्धक, क्लोरिन और आयोड़ित। दाँत और हड्डियाँ खासकर लवण से बनते हैं। इन्हीं के रहने के कारण मांस पेशियाँ मजबूत होती हैं और दिल की गति होती है। फेफड़ा, आंत, जिगर, प्लीहा और गुर्दा अपना काम अच्छी तरह कर सकते हैं और खून में दौरान भी हो सकती है। लवण के कमी से वहुत से रोग हो जाते हैं, जिनमें से दाँत और हड्डियों के रोग, खून की बीमारी, खून की कमी, गठिया अनपच, कब्ज, खट्टी ढ़ेकार का आना मचली हृदय की कमजोरी और घेघा मुख्य हैं। मांस. दाल तथा अन्य अनाज में अम्ल रस बहुत होती है परन्तु गरीदार मेवे जैसे—बादाम, हरे शाकों और धरती के ऊपर की तरकारियाँ और फलों में क्षार अधिक होता है। आलू, गाजर, में क्षार प्रधान होता है नींबू का रस भी क्षार बन जाता है।

कैलशियम (चूना)-चूने से दांत और हड्डियाँ बनती हैं। संक्रामक रोग से बचाव होती है। बच्चों के भोजन में चूना अधिक होना चाहिए। यह दूध, द्विदल अनाज, फल, हरे शाक, अन्डा, अन्डे के पीले भाग में चूना पाया जाता है।

फास्फोरस :—इससे हड्डियाँ बनती हैं और मज़बूत होती है। यह चूने का साथी है। इसकी कमी से शरीर बढ़ना बन्द हो जाता है। यह पालक, गाजर, लौकी, मूली, खीरा, फूलगोभी, जौ, गेहूँ, दाल, मांस, मछली और अन्डे में पाये जाते हैं।

१ लोहा—यह तीसरा लवण है। रक्त में लाल रंग उसमें रक्त कण के उपस्थित के कारण है जोर लोहा से बनता है। रक्त के इन कण का कार्य है—सांस द्वारा अन्दर गई हुई वायु से आक्सीजन खींचकर शरीर के सेलों में पहुँचाना और उनके विकारों के जलने में सहायक बनकर उनके स्वास्थ्य और वृद्धि में सहायता देना। आँतों में पच कर रक्त में गये हुए खाद्य पदार्थों के जलने में सहायता देना। रक्त के यह लाल कण लोहे से बनते हैं। शरीर में रक्त की कमी से साधारणतः आहार में लोहे की कमी समझना चाहिए। लोहा निम्न-लिखित चीजों में पाये जाते हैं: हरी पत्तियों वाले साग, पालक का साग, करम कल्ला, मेथी का साग, बथुआ का साग, तरबूज, खीरा, मटर टमाटर, मूली, प्याज, दाल, गाजर, मछली, अन्डा, कलेजी कच्चा मांस।

नमक—इससे खून की सफाई होती है और नसों में पानी का दौरा ठीक होता है। पेट में नमक का तेजाव बनता है। नमक न खाने से पाचन दुर्बल हो जाता है। शरीर में झुर्रियाँ पड़ जाती हैं। खाल के फटने का रोग हो जाता है। शाकाहारों को, मांस खाने वालों से नमक अधिक खाना चाहिए। ज्यादा

नमक खाना भी हानिकारक है। गुर्दे के मरीज को जिन्हें बहुत पेशाब होता है, गठिया, जलन्धर आदि रोगों वालों को अधिक नमक नहीं खाना चाहिए।

आयोडीन :—यह भी शरीर के लिए जरूरी लवण है। इसकी कमी के कारण गले में घेघा निकल आता है। शरीर की बाढ़ रुक जाती है। इसकी कमी से खून की कमी हो जाती है। तालाबों या उसके निकट कि धरती में पैदा होने वाले शाकों और फलों में भी आयोडिन काफी होता है। प्याज, नींबू में अधिक आयोडिन होता है।

गन्धक :—गन्धक शरीर के प्रत्येक अंग का एक जरूरी हिस्सा है। दिमाग और नाखून की बनावट में इसका स्थान है। बाल, नाखून गन्धक की कमी से टूटने लगता है। पाचन में भी सहायता होती है। अन्डा, सेम, दाल, मूली, प्याज, कोभी, पालक और सलाद में गन्धक बहुत है।

तांबा और मैंगनीज —लोहे से खून बनता है परन्तु लोहे में तांबा या मैंगनीज जरूर होना चाहिए नहीं तो लोहा अन-पचा अन्न के साथ निकल जाता है। मैंगनीज की कमी से मनुष्य में नपुँसकता आ जाती है। स्त्रियों में बच्चों के प्रति घृणा हो जाती है। तांबा निम्नलिखित चीजों में पाया जाता है :—

मूली, शलजम, खीरा, प्याज, गाजर, फूलगोभी, टमाटर, आलू, पालक, अंगूर, सेव इत्यादि।

मैंगनीज नीचे लिखे चीजों में भी पाया जाता है :—

अनाज के ऊपरी हिस्से में जैसे—गेहूँ के चोकर में, चावल के कण में, बादाम, दाल, गोभी, सलाद इत्यादि।

प्रश्न—७८. बैक्टीरिया (जीवाणु) के विषय में वर्णन करें।

उत्तर – यह एक साधारण अनुभव है कि रोटी, भात, कटे फल तथा अन्य ऐसी गीली चीजों में शीघ्र भोड़ी या फफूंद लग जाती है बल्कि सील स्थान में रक्खे हुए सूखे पदार्थों में भी भोड़ी लग जाती है, लेकिन आग में गर्माने या घाम में रखने से यह दूर हो जाती है।

यदि इस भुकड़ी या फफूँद को सूक्ष्मदर्शी से देखा जाय तो यह अति सूक्ष्म पौधों जैसे सजीव पदार्थों का समूह मिलेगा। इन पदार्थों पर हजारों आ जाते हैं और नंगी आँखों को दिखाई नहीं पड़ते। यह हर समय हवा में उड़ा करते हैं और जहाँ-जहाँ खाने में, पानी में, वर्त्तनों में वायु के साथ पहुँचते हैं यह अत्यन्त वेग से बढ़ने लगते हैं। मिनटों में ये एक से अनेक हो जाते हैं, और २४ घन्टे में ३ पद्म से भी अधिक हो जाते हैं। जब ये आहार-पदार्थ में लग जाते हैं तो उसके कार्बोहाइड्रेट आदि का रूप बदल देते हैं। इन्हीं जीवाणुओं ही के कारण गोबर आदि चीज सड़ गलकर खाद बनती हैं जिसके कारण खेती में अनाज हो सकता है। खाने और पहनने के समस्त पदार्थ किसी न किसी रूप में इन्हीं के

कारण पैदा होते हैं। ये जीवाणु अनेक प्रकार के होते हैं। कुछ मनुष्य के लिए उपयोगी और कुछ हानिकारक। इनमें उपयोगी जीवाणुओं में खमीर के कीटाणु तथा दही के कीटाणु मुख्य है। फफूँद हितकर नहीं होती और हानिकारक भी नहीं होती, परन्तु इससे चीज का स्वाद बिगड़ जाता है और कुछ समय में वह पदार्थ विकृत हो जाता है। यदि शीघ्र ही यह रोक दी जाय तो वह पदार्थ फिर उपयोग में लाया जा सकता है। हानिकारक बैक्टीरियों में सड़न और रोग के बैक्टीरियाँ आते हैं। पौधे जैसे यह भी होते हैं परन्तु खमीर से भी छोटे होते हैं। खमीर के कीटाणु वायु में उड़ते हुए अति सूक्ष्म पौधे जैसे होते हैं जो गीले कार्बोहाइड्रेट तथा शर्करा पदार्थों में प्रविष्ट होकर इनके कणों में परिवर्त्तन शुरू कर देते हैं पहले यह कार्बोहाइड्रेट को शर्करा के रूप में बदल देते हैं। फिर शर्करा को एलकोहल और कार्बोनिक अम्ल में बदल देते हैं। पाव रोटी इसी कारण स्पंज जैसी फूल जाती है। यह कीटाणु १० से ३० डिग्री से० तापमान तक भलीभांति बढ़ते हैं परन्तु तेज आंच में ये मर जाते हैं। ठंठक में ये बेकार हो जाते हैं। सना आटा कुछ समय तक वायु में रहने से खमीर के जीवाणु वायु से ले लेता है। परन्तु अधिक समय में उसमें भी सड़न आ जाती है। गुड़, चीनी आदि से सि[illegible] का आसव या शराव बनाने में यही जीवाणु योग दे[illegible]। द[illegible] [illegible]णु पाचन के लिए बड़े उपयोगी होते हैं। परन्तु य[illegible] [illegible]यु में उड़नेवाली श्रेणी से पृथक्क होते हैं। ये पेट में

पहुँच कर समस्त रोगों के वैक्टीरियों को मार देते हैं। इसी लिए दही पाचन रोग में अति उपयोगी पाया जाता है। परन्तु दही शुद्ध पात्र का और ताजा होना चाहिए। अधिक बासी होने पर इसमें भी सड़न आ जाती है।

प्रश्न—६६. टिप्पणियाँ लिखे :—

सन्तरा, नींबू, आम, मूँगफली।

उत्तर—सन्तरा—इसमें विटामिन ए, बी, सी तीनों होते हैं। इसमें विटामिन अनार से अधिक होते हैं। कलरी भी अनार से अधिक होती है। विटामिन 'सी' सबसे अधिक होता है। यह रक्त और पाचन के लिए बड़ा उपयोगी होता है। सन्तरे की जाति के सब फल रक्त से यूरिक अम्ल निकालते हैं। इसलिए गठिया के रोगियों के लिए विशेष उपयोगी होते हैं।

नींबू—यह सन्तरे की ही जाति का फल है। यह हीं अकेला ऐसा फल है कि जिसकी खटाई रक्त में अम्ल की जगत क्षार पैदा करती है। इसमें विटामिन सन्तरे से कम होते हैं। परन्तु लवण और साइट्रिक अम्ल सन्तरे से अधिक होते हैं जो पाचन के लिए बड़े उपयोगी होते हैं। बासी मुँह नीं[illegible] रस खाली या पानी और नमक के साथ, आंतों को [illegible] जित [illegible]र कब्ज दूर करता है। भोजन के पश्चात [illegible] मुँह साफ हो जाता है और दांत के रोग नहीं है[illegible] स्वास्थ्य की दृष्टि से नींबू का रिवाज बहुत बढ़ना चाहिए।

आम—यह शरीर के लिए उपयोगी फल है। पका आम पतले रस का गुणकारी होता है। कलमी आम देर से पचता है। अच्छे आम में विटामिन 'ए' और 'सी' होता है। आम खाकर दूध पीने से स्वास्थ्य को लाभ होता है। कच्चे आम की चटनी, अचार बनाया जाता है, जो भोजन को रुचिकर बना देता है। लू लगने पर आम को पका कर शर्बत बना कर पीने से बहुत लाभ होता है। आम के रस से अमावट बनाया जाता है।

मूँगफली :—इसमें विटामिन डी' होता है। यह पौष्टिक मेवा है। यह देर में पचता है। मूँगफली को छिलके से निकालकर खा सकते हैं। इसको भूनकर भी खाया जाता है। मूँगफली को चीनी में पागकार भी लोग खाते हैं। इससे पाखाना साफ होता है यह देर में पचता है अतः अधिक खाना लाभदायक नहीं।

❀ ❀